दयानन्द छल कपट दर्पण.

MOTI RAM LIBRARY, BIKANER

प्रथम भाग.

जिसको—

श्रीमान् सभाशृङ्गार पूज्यवर चौधरी श्री मणिकचन्द्र जी तत्पुत्र परमप्रतापी चौधरी सुमेरचन्द्र जी तत्तात्मज जगद्विख्यात परम विद्वान् सुज्ञविज्ञ ज्योतिषरत्न दिवाकर श्रीमान् चौधरी मुन्शी पण्डित जैनी जीयालाल जी मैनेजर दफ्तर जैन प्रकाश और म्युनिसिपल कमिश्नर फर्रुखनगर जिला गुड़गाव ने लिखा।

प्रकाशक—

पण्डित कामताप्रसाद दीक्षित

मु० पो० अमरोधा जिला कानपुर।

मुद्रक—

चौ० छोटेलाल शर्मा

"श्री कृष्ण प्रेस" अमरोधा (कानपुर)।

द्वितीय वृत्ति २००० | सम्वत् १९८६ | मूल्य ३) रुपया

* सविनय निवेदन *



इस पुस्तक के छपजाने पश्चात हमारे अनेक निर्पक्ष समाजी भाइयों ने देखा और आद्योपांत पढ़ कर यही सम्मति प्रकट की कि आपने यह पुस्तक रौचिक भयानक दोनों से बचा केवल यथार्थ ही लेखों से भरी है इसमें जहाँ जैसा चाहिये था वहाँ वैसा ही लिखा गया है परन्तु पुस्तक के नाम में जो शब्द 'छल कपट' सम्मिलित देख हम लोगों को भ्रम उत्पन्न होता है कि शायद इस पुस्तक में स्वामी दयानन्दकी अथवा हमारी निंदा भरी हो इस का कुछ परिवर्तन हो सके तो कर दो यद्यपि जो कुछ नाम पुस्तक का प्रथम ही लिखा गया वह बदला नहीं जासकता परन्तु हमको इस पुस्तक द्वारा सत्यासत्य का निर्णय कराना है व्यर्थ किसी का दिल दुखाना अभीष्ट नहीं इसलिये आर्य्य भाइयों के मनो-रंजनार्थ इस पुस्तक का नाम आदि पृष्ठ पर 'दया-नन्द चरित दर्पण' लिखा गया है ॥

(जीया लाल)

श्रीभूमिहार-ब्राह्मणवंश-भूषण, धर्मप्राण

❀ श्री १०५ रामनन्दनप्रसादनारायणसिंहजी ❀

सेहड़ा-नरेश।



मरचेंट प्रेस, कानपुर।

धन्यवाद

जिन महाशयों ने इस पुस्तक के संग्रह करते समय विषय लेखादिक के पढाने वा शोधनादि कार्यों में सहायता की उनके नाम धन्यवाद सहित नीचे प्रकाशित करते हैं।

(१) श्रीमान् परम गुणवान् जगद्विख्यात विद्यासागर न्यायरत्न श्री मुनि शान्ति विजयजी।

(२) श्रीमहामान्य मित्रवर पण्डित सत्यानन्द जी अग्निहोत्री देव धर्म्म प्रवर्तक लाहौर।

(३) श्रीयुत प्रियवर चिरजीव लाला चन्द्रभानुभाई वद्रीदास जी के पुत्र स्थान मेरठ।

(४) श्रीमान् वैद्यराज पण्डित गौरीशंकर शर्म्मा सम्पादक पीयूषवर्षिणी धर्म्म सभा फर्रुखाबाद।

(५) श्रीमान् पण्डित रामचन्द्र जी शर्म्मा सम्पादक अद्वैतामृत धर्मवर्द्धिनी धर्म्म सभा देहली।

(६) श्रीमान् प्रियमित्र लाला धनीरामजी सत्य हितैषी स्थान फर्रुखनगर।

फर्रुखनगर
२४-५-१९९५

भवदीय—
धन्यवाद कर्ता जीयालाल

सूचना

इस पुस्तक में जो लेख संग्रह कर्ता ने अपनी तरफ से लिखा है, उसके शुद्धाशुद्ध का उत्तरदाता तो संग्रहकर्ता ही है परन्तु जो जो अशुद्धियां अन्य महाशयों के लेखों में थां जैसी थी तैसी लिख दी गई हैं, उनका जिम्मेवार उस लेख का लिखने वाला ही है।



भूमिका

॥ दोहा ॥

दयानन्द छल कपट अरु जीवन चरित अनीत ॥
यथा शक्ति अति खोज कर दिखलाऊं धर प्रीत ॥ १ ॥

प्रस्तावना ॥

आज कल बहुधा मनुष्यों को यह कहते हुये देखा और सुना है कि नवीन मत मतान्तरों का प्रचार थोडे ही दिनों से है" परन्तु यह समझ उनकी यथार्थ नहीं है इतिहास विद्या के ज्ञाता जानते हैं कि कालचक्रकी सदा सर्वदा से यही चाल है जो एक धर्म्म की प्रबलता और दूसरे की न्यूनता होती रही है, जैन धर्म्म के ग्रन्थों में लिखा है कि पहिले इस सम्पूर्ण पृथ्वी पर जैन धर्म्म ही था* जिस के कठिन नियमों को देख शिथिलाचारियों ने प्रतिकूलता ग्रहण कर समय २ पर स्वकपोल कल्पित नवीन मत प्रचलित कर दिये और इसको तो सम्पूर्ण हिन्दू गण मुक्तकठ से स्वीकार करते हैं कि वैदिक मत सबसे पुराना है परन्तु यह कथा कहानी तो बाल वृद्ध सब ही के याद है कि क्षत्रियों से विमुख हो परशुराम ने अनेक बार उनका वध किया वैदिक लोगों ने उत्तर से लेकर दक्षिण तक बौद्धों को नष्ट किया अग्नि पूजक [आतिशपरस्त] और यहूदी ईसाईयों में घोर संग्राम और प्रजा का नाश हुआ, मुहम्मदी तुर्कों ने भी इस भारत वर्ष को अटक से कटक तक लूटा, कन्या कुमारी से हिमालय पर्वत उजाड किया सोम नाथ से विश्वनाथ के मन्दिर तक को तोड़ डाला दुग्धपायी बालक से लेकर गर्भिणी अबला तक को वध [कतलआम] किया भारतवर्ष से गजनी तक गुलामों को धर मारा, रामानुज व वल्लभाचार्य के समय वैष्णव कुल की वृद्धि- नानक साहिब के समय उनपर हिंदू मुसलमान दोनों का विश्वास और गुरू गोविन्दसिंह के समय बादशाही फौज से शिष्यों का बिगाड, इत्यादिक प्रथम ही से क्या २ न हुआ जो अब हम किसी बात को नवीन समझें, हा! यह अवश्य मान लिया जायगा कि जैसे छोटा बालक श्वान वाराह गर्दभादिक सब ही का

* इस विषय में मेरा छपा हुआ वह व्याख्यान देखो जो मैंने सुनिपत के मेले में दिया था।

अच्छा और प्यारा मालूम होता है नवीन आधुनिक धर्म्म की एक बारतो विशेष उन्नति हो जाती है परन्तु "सभी घास जल जायगी दूब रहेगी खूब" इस वाक्या नुसार सदा सर्वदा से जो सनातनधर्म्म चला आया है, उस पर कितने ही उपद्रव क्यों न हों नाना प्रकार के विघ्न सह कर भी सदा प्रकाशमान रहेगा, आज कल जैसी ब्रह्मसमाजी आर्य्यसमाजी ईसाई लोगों की अधिकता और प्रबल चर्चा है, थोड़े दिन पहिले कबीर गोरख गरीब दादू आदिक पन्थियों की थी [जो अब दिनो दिन घटतो पर ही है,] और नानक की घसीटा, सत्यनामी आदिक अनेक नवीन पन्थ अब वर्तमान काल में भी प्रचलित हैं, और सब से अधिक आर्य्यसमाजियों की धूम है इसलिये हमको यह प्रकट करने की परमावश्यकता है कि "आर्य्यसमाज क्या वस्तु है ? इस का प्रचारक स्वामी दयानन्द सरस्वती कौन था ? इस की जाति कुल गोत्र तथा जन्म के नगर का नाम क्या था ? जन्म दिन से लेकर अन्त समय तक चलन व्यवहार कैसा रहा ? किस धर्म्म पर यह चलता और दृढ विश्वास रखता था ?" यद्यपि इस विषय में अनेक समाचार पत्र तथा पुस्तकों में प्रकाशित लेख विद्यमान हैं, और दन्त कथा में जितने मुख उतनी ही जाति स्वामीजी को सुनते हैं परन्तु यह सर्वथा ही दन्त कथा द्वेष भावसे भरी और प्रमाण योग्य नहीं हैं, जो जिसके मन में आता है अट्ट सट्ट बक देता है, और जितने लेख इस विषय में विद्यमान हैं उन सब के लिखने वाले भी बहुधा ऐसे ही मनुष्य हैं, जिन्हाने पक्षपात रूपी धूल से निर्मल जल गदला (मलीन) कर दिया है कि जिससे वह विद्वान पुरुषों में सराहनीय नहीं रहा ।

इस विषय में हमने जो कुछ लिखने का साहस किया है उस का एक एक अक्षर नानाप्रकार के प्रमाण सहित बड़े परिश्रम से एकत्रित और अनेक साक्षी द्वारा सिद्ध किया तब लिखा है, और इतना ही नहीं किंतु इसके लिये हमको बम्बई, गुजरात, काठियावाड़, मालवा आदिक देशों में भी घूमना पड़ा है, और इस ग्रन्थ से पहिले यह विषय भारत के अनेक हिन्दी, उर्दू अंग्रेजी समाचार पत्रों में प्रकाशित हो चुका है, परन्तु हमने तो इसका विशेष भाग स्वामी दयानन्द सरस्वती के स्वहस्तलिखित जीवन चरित्र से लिया है और यह चरित्र नवीन रचना वा कल्पना नहीं है, जो कुछ इसमें लिखा गया है वह स्वामी

दयानन्द सरस्वती के समय ही मे प्रकाशमान है और अनेक आर्य्यसमाजियों का देखा भाला तथा सुना हुआ है, यद्यपि यह जीवन चरित्र कुछ बड़ा पुस्तक अथवा कोई धर्म्म ग्रन्थ तो नहीं है, परन्तु हमको इसके संग्रह करने मे स्वामी दयानन्द सरस्वती रचित ३८ पुस्तक और एक सौ से अधिक अन्य महाशयों के रचे पुस्तक व समाचार पत्रों से सहायता लेनी पड़ी जिनके नाम इस पुस्तक के अन्त मे दिये गये हैं और इस हमारे लेख का विशेष भाग तो समय समय पर आर्य्य पत्रिका मे भी प्रकाशित होता रहा है, परन्तु पक्षपात का भयंकर उक्त सम्पादक जी की लेखनी यथार्थ न लिख सकी इसलिये यथार्थ लिखने का परिश्रम हमको ही उठाना पड़ा। यहां कोई यह तर्क करे कि जब आप दयानन्द के मत में ही नहीं फिर आपको उनके जीवन चरित्र लिखने का क्या अधिकार है? उसका उत्तर यह है कि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने "सत्यार्थ प्रकाश" के द्वादश समुल्लास में जैनी लोगों पर झूठा दोषारोपण कर अपनी योग्यता दिखलाई तो हमको ऐसा करने की अत्यतावश्यकता हुई कि स्वामी दयानन्द सरस्वती का यथार्थ हाल लिखकर भारत मे प्रकाशित कर सत्यासत्य का न्याय विद्वान

---

१ स्वामी दयानन्द सरस्वती प्रथम बार जब लाहौर में आये और डाक्टर रहे मगर साहित्य की कोठी में उतरे थे तो अपना जीवन चरित्र व्याख्यान की रीति पर वर्णन किया था और उनके शिष्यवियों ने उसको पुस्तकाकार लिखा था और जब करनल अलकोट (Colonel Alcott) और (H P Madam Blavatski) योग विद्या के खोजने को भारत वर्ष में आये और उन्होंने स्वामी दयानन्द सरस्वती को संस्कृत का अच्छा पंडित और योगी समझ कर अपना गुरु मान लिया था तब स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने योगी होने की प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिये निज जीवन चरित्र लिखाकर मादम ब्लवट्स्की सम्पादक रिसाला थियोफिस्ट (Editor of theosophical) को पठाया और वह रिसाला मास नवम्बर दिसम्बर, सन् १८७६ व रिसाला मास नवम्बर सन् १८८० में छपा था जिस में स्पष्ट रूप से यह प्रकाश किया गया था कि यह जीवन चरित्र स्वामीजी का स्वहस्त लिखित है, तथा उक्त रिसाला संख्या ७ मास अप्रैल सन् १८८० ई० में स्वामीजी का यह लेख छपा है, "यद्यपि मुझको अत्यंत हर्ष और उमङ्ग है कि मेरा स्वहस्त लिखित जीवन चरित्र जिसको आप छापकर प्रकाशित कर रहे हैं शीघ्र समाप्त हो

मनुष्यों पर छोड़ दें, और निज बुद्धिविभानुसार अपना मन्तव्य भी लिख दें, ।

इस पुस्तक के प्रकाशित होने पर जो जो कोलाहल मचैगा उसको हम खूब समझे हुए हैं, परन्तु यह पुस्तक हमारे हजारहा भोले भाले भाईयों को अज्ञान कूप मे पडने से बचावेगा, इसलिये देशोपकार करते हमको कोई बुरा भी कहे, या किसी प्रकार की हानि पहुँचावे तो उसका हमको कुछ भय नहीं है ।

और यह भी हम भली प्रकार जानते हैं कि असत्य की जड नहीं होती जब असत्य वादी मनुष्य को सत्यवक्ता रूपी भास्कर का सामना होता है तो अमावस्या के चन्द्रमा की समान अदृश्य होना पडता है, और सत्य की जय असत्य का क्षय यह जगत्प्रसिद्ध कहनावत है, फिर हमारे साच को भी आँच न होगी ।

अन्त मे हम यह लिखना भी परमावश्यक समझते हैं कि यदि हमारे इस ग्रन्थ का कोई भाग किसी समाजी भाई को असभव दीख पडे और वे प्रमाण सहित इस के प्रतिकूल कुछ लिखने का बल रखते हों तो हमारे पास पत्रद्वारा लिख भेजें, हम धन्यवाद सहित स्वीकार कर दूसरी बार छपने के समय इसका संशोधन करेंगे, क्योंकि हम स्वामी दयानन्द सरस्वती के समान कह मुकरने वाले नहीं * जैसा कि उन्होने कई स्थानो पर कहमुकर ने का वर्ताव किया है हम यह भी नहीं चाहते कि जो पत्र व्यवहार लाला ठाकुरदास भामडे गुजरान्वाला निवासी का और स्वामी दयानन्द सरस्वती का होकर "दयानन्द मुख चपेटिका" पुस्तक छपी, हमारे इस "दयानन्द छल कपट दर्पण" नाम ग्रन्थ को देख हमारा और किसी समाजी पुरुष का भी छप कर व्यर्थ समय व्यतीत हो, ।

परन्तु क्या करिये मुझ को यथार्थ अवकाश नहीं मिलता जो इस तरफ ध्यान दूं । तब भी जहां तक होगा अब मैं शीघ्र अपना इतिहास आप के निकट लिख पठाऊंगा" ।

हाल में एक लाला दलपतराय ने उन रिसालों से लेख संग्रह कर एक पुस्तक छपाई है, और उसके ऊपर मोटे २ अक्षरों से यह लिखा है कि यह जीवन चरित्र स्वामीजी का हाथ का लिखा (खुदनविस्त) है, इसके अतिरिक्त यह कथा सम्पूर्ण आर्य्यसमाजों में प्रसिद्ध भी हो रही है, और दयानददिग्विजय तथा गोरक्ष अजमेर, फर्रुखाबाद, लाहोर के आर्य्य समाचार पत्रो से लेकर अनेक मनुष्यों ने पुस्तकाकार जीवन चरित्र भी लिखे हैं ।

* देखो पुस्तक दयानद मुख चपेटिका ।

आज कल के लोगो ने यह चाल ग्रहण करली है कि जब वह किसी पुस्तक अथवा लेख के खंडन का उद्यम करना चाहें और बुद्धि की मन्दता अथवा दूसरे की पुस्तक तथा लेख की सत्यता के कारण उसका खंडन न बन पड़े तो उस पुस्तक वा लेख लिखने वाले को गालियां देने लगते हैं और इतना करने पर ही अपना परिश्रम सफल मानते हैं, जैन भाई जवाहरसिंह लाहौरी ने एक पुस्तक समाजियों के प्रतिकूल तो लिखी राधाकृष्ण महता एक समाजी पुरुष ने एक "ग्रंथीफोविया" नामक पुस्तक रच गुरु नानक साहिब आदिके अनेक शिक्षकों के गुरु लोगो को भला बुरा लिख मारा, तथा साधु आत्माराम (आनन्द विजय) जी ने जो पुस्तक "अज्ञानतिमिरभास्कर" लिखा उसको देख प्रयाग नगर से प्रकाशित होने वाले "आर्य्यसिद्धान्त" पत्र के सम्पादक ने उक्त साधु जी को ही अनेक अनुचित शब्द लिख दिये * हम ऐसे उत्तर दाताओं की कुछ प्रशंसा नहीं करते, सराहनीय पुरुष तो वही होगे जो लिखे लेख का सर्वमान्य उत्तर देने की शक्ति रखते हो।

इस लिखने से हमारा यह अभिप्राय नहीं है कि हमारी लिखी इस पुस्तक का कोई उत्तर न लिखे, परन्तु जो लिखने का परिश्रम करे उसको उचित है कि हमारे लिखे प्रमाणों का खंडन करे, और मंडन करना छोड़ आज कलकी भेडिया धसान में पड़ कर हमको या हमारे इष्ट देव को कुवचन कहना ही अपनी विद्वत्ता समझेगा उसको हम क्या सब कोई मूर्ख और बुरा कहेंगे।

यह पुस्तक २५ मार्च सन् १८८९ ई० को बिलकुल तैयार होगई थी, परंतु छपने का समागम न हुआ इस लिये २५ मई सन् १८९० ई० को पुन बढ़ा बढ़ा कर शुद्ध किया और अब मुद्रित कराया जाता है।

इस पुस्तक में जो जो लेख हम स्वामी दयानंद सरस्वती की स्वहस्तलिखित पुस्तक से लेवेंगे उस की आदिमे (द) और जो अन्य पुस्तक वा समाचार पत्र से लिया जायगा उसकी आदि में (स) और जहाँ हम अपनी युक्ति प्रमाण से कोई लेख लिखेंगे वहा (क) ऐसा चिन्ह कर देवेंगे सो पाठक गण इस पुस्तक के पढते समय उक्त सूचना चिन्ह को अवश्य ध्यानमें लावें, किं बहुना।

(लीयालाल) { फर्रुखनगर जिला गुड़गाँव.
तारीख २५ मई सन् १८९० ई०

* देखो आर्य्य सिद्धान्त पत्र पत्र ३ संख्या १ पृष्ठ ३।

धर्मवीर कलाकौशल-राजयशोरतस

८ श्री १०५ कुवर छत्रपतिसिंहजी ७



मरचेंट प्रेस, कानपुर ।

दर्श पूर्णमास प्रभृति इष्टियों का और पुरुषमेध, अश्वमेध, श्रोत्रामणि, सर्वमेध, महारुद्रयाग प्रभृति समस्त यज्ञों का ऐसा सफाया किया कि मानो वेद में यज्ञों का विधान ही नहीं और भारतवर्ष मे या तो यज्ञें हुई नहीं और यदि कहीं हुई भी हों तो वे कुरान बाइबिल के आधार पर हुई होंगी क्योंकि यजुर्वेद मे यज्ञों का कहीं पता ही नहीं, इस प्रकार से वेद के नये, झूठे, कपोल कल्पित अर्थ बनाने से स्वामी जी की आस्तिकता मे स्पष्ट बट्टा लग जाता है।

किसी किसी जीवन चरित्र में लिखा है कि स्वामीजी सत्यवादी धर्मात्मा थे किंतु जिस समय हम 'सत्यार्थप्रकाश' और ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में यह लिखा देखते हैं कि ब्राह्मण मंथ वेद नहीं हैं किन्तु पुराण हैं। ब्राह्मण भाग और मन्त्र भाग, वेद इन दो भागों में बटा है एक भाग तो वेद है और दूसरा भाग पुराण है यह लेख सिद्ध करता है कि पूज्य स्वामीजी चाल बाजी की उच्च कक्षा में पहुँच चुके स्वामी जी ने वेद की ११३१ शाखाओं में से ११२७ को तो छोड़ दिया केवल चार शाखाओं को वेद माना इस चाल से स्वामी जी की चालाकी का यही अभिप्राय था कि हमको समस्त वेद भी नमानना पड़े।

स्वामी जी ने वेदों के नाम से झूठे वेद मन्त्र भी बना लिये देखो हमारा बनाया "जाली वेद मन्त्र"। सध्या के आरम्भ में "ओं वाक् वाक्" एवं 'भू पुनातु शिरसि' इनको स्वामी दयानन्द जी ने वेद मन्त्रों के नाम से लिखा है किन्तु ये वेद मन्त्र नहीं हैं। इसके अलावा 'सत्यार्थप्रकाश' में वेदों की आज्ञा के नाम से कई एक झूठे लेख लिखे हैं जिनको देखना हो वे 'बनावटी वेद' नामक हमारी बनाई पुस्तक देखलें। स्वामी जी के इन आचारणों मे और जीवन चरित्रों में बहुत अंतर है किन्तु इस 'दयानन्द छल कपट दर्पण' में हमारे मित्र स्वर्गवासी प० जीयालाल जी जैनी ने स्वामी जी का सत्य चरित्र प्रमाण देकर लिखा है हमारी समझ में और और जीवन चरित्र सत्य घटनाओं को दबाकर स्वामी जी की प्रशंसा करने के लिये ही बने हैं और यह 'दयानन्द छल कपट दर्पण' स्वामी जी के सच्चे हाल को ससार पर विदित कर रहा है, सत्य जान कर ही इस जीवन चरित्र को प० कामताप्रसाद जी दीक्षितने स्वर्गवासी प० जीयालाल जी के सुपुत्र माननीय शिखरचन्द जी जैन से इसका रजिस्ट्री हक लेकर इसको प्रकाशित किया। हमे विश्वास है कि दयानन्दजी के जीवन चरित्र जाननेकी इच्छा

श्रीकृष्णचरणानुरागी

श्री १०५ राव साहब सेठ पं० हरिशङ्करजी ताल्लुकेदार,

हरदा (मध्यभारत)।



मरचेंट प्रेस, कानपुर।

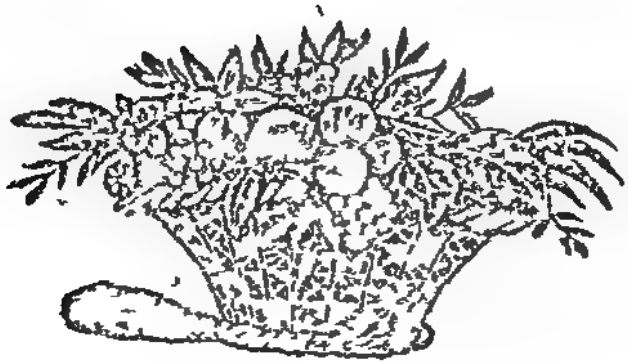
* प्रार्थनायें *

आज हमको यह अवसर मिला है कि 'दयानन्द छल कपट दर्पण' के विषय में हम जनता से दो प्रार्थनायें करें (१) प्रार्थना तो यह है कि इस ग्रन्थ के द्वितीयवार छपने मे जो अशुद्धियां रह गई हों उनको पाठक क्षमा करें।

(२) हमने यह ग्रंथ स्वर्गवासी पं० जीयालाल जी जैनी के विद्वान् पुत्र पं० शिखरचन्द जैन से खरीद लिया है अब इस ग्रन्थ पर हमारा स्वत्व है हमारी आज्ञा विना कोई भी इस ग्रंथ को न छापे।

कामताप्रसाद दीक्षित

अमरौधा (कानपुर)



सनातनधर्म-संरक्षक

ॐ पं० श्यामलालात्मज श्री १०५ पं० भगवानदीनजी शुक्ल ॐ

तालुकेदार गाहपुर (मध्यभाग)।



मरचेंट प्रेस कानपुर ।

॥ श्री जिनधर्म्मो जयति ॥

श्री दयानन्दछलकपटदर्पण ।

॥ दोहा ॥

प्रथम नमेहु आदीश जिन, आदिधर्म्म रवि मान ।
जिन मुख किरण प्रकाश में, लखा यथारथ ज्ञान ॥ १ ॥
अब दिखलाऊं जगत् को, दयानन्द का भेद ।
न्यायबात निर्णय करें, सठ मानें मन खेद ॥ २ ॥

नवीन जाति की उत्पत्ति ।

किसी समय दक्षिण के देशों में यह रिवाज था कि बहुधा भोले भाले मनुष्य धर्म्म समझ अपनी लघु अवस्था की कन्या को देवमंदिर में चढ़ाकर देवदासी बना देते थे, और जिस दिन से वह कन्या देवदासी बनाके मंदिर में चढ़ाई जाती थी मातापिता से उसी दिन से उसका सम्बन्ध बिलकुल छूट जाताथा, और मंदिरका पुजारीही उसका लालन पालन करता रहता था, बाल अवस्था में उसको गीत नृत्य आदि संगीत विद्या सिखलाई जाती थी और तरुण होने पर वह मंदिर की नृत्यकारिणी कहलातीथी, जब नृत्य करनेका समय होताथा, तबवह नानाप्रकारके पट, आभूषणोंसे अलंकृत हो सोलह शृंगार कर कज्जल, बिन्दी, बैना लगा निर्लज्ज भाव बता, नगर, परिवार, और मातापिता, भ्रातृ, भगिनी आदि सबके सन्मुख नृत्यकारिणी बनी मंदिर के देवता की मूर्ति को अपना स्वामी समझ नृत्य करती थी, और जब वह यौवन अवस्था में काम चेष्टा से व्याकुल होती और मैथुन कर्म्म की उसको आवश्यकता होती तो रजस्वला होने के पश्चात स्नान कर जिस किसी पुरुष का हाथ पकड़ निज स्थान पर लेजाती, वह पुरुष उसके सं। विषयभोग करता था, परंतु एक दिन से अधिक ऐसा करने का अधिकार उसको नहीं था, यदि एक दिनसे अधिक ऐसा

प्रजा के मनुष्य दोनोंका वध-(कत्ल) करदेते थे * जब ये नृत्यकारिणी जिनं दूसरा नाम भक्तिनी भी है जार (यार) पुरुष को लेकर देशांतर को भागने लगीं तो यह देवदासी का प्रचार क्रमशः बहुत स्थानों में बन्द होगया, उस समं पर कुछ जाति पतित उदीच्य गोत्री अनेक ब्राह्मणों में से बहुधा मनुष्यों ने अपने छो छोटे लडकों को गीत नृत्य विद्या में प्रवीण कर उनको मंदिरों के नृत्यकारक नाया, जब ये लड़के स्त्रियों के समान पट आभूषणों से शृंगार कर भाव व कल्पित कुच लगा नृत्य करते थे तो देखने वालों को उन लडकों में और नृत्यकारिणं स्त्रियों में बहुतही कम अंतर मालूम होता था, क्योंकि ये लडके शिर पर केश भ स्त्रियों के सदृश लम्बे २ रखते थे ॥

अब ये लोग सब देशों में पाये जाते हैं (!) और परावज, ढोलकी सारंगी, भेर, तबला, आदि बजाना लडके नचाना भिक्षामाँगना कपडे सीना रहस्य लीला करना आदि इनके मुख्य काम हैं और ये लोग तपस्वी, भोजगी, जाजगं बडुआ या बरुआ, भोजपुरहा, राय, कापडी, इटु, भट, पारिप आदिक नामों से प्रसिद्ध और विख्यात हैं ॥

हमारे फर्रुखनगर में भी इनके दस बारह घर हैं इन लोगों की यह कहा वत प्रसिद्ध है कि हम सब प्रकार के काम करसकते हैं, किसी भी कार्य्य को करं लज्जा नहीं मानते, और कहते हैं कि हमारे पुरुषाओं ने परमेश्वर से यह प्रार्थना की थी कि हे भगवन् "इकबार बनादो कापड़ी फिर तुम्हें हमारी क्या पडी" बस हम ईश्वर भरोसे पर नहीं हैं अपने परिश्रम द्वारा जो कुछ कमाते हैं उसी पर संतुष्ट रहते हैं।

अब ये लोग अन्यजातीय शूद्रा स्त्रियों से करावं भी करने लगे हैं, और राह चली वर्णत्रय के घर की रोटी कपडे पहिने हुए खालेते हैं ॥

दयानन्दोत्पत्ति।

स्वामी दयानन्द सरस्वती का जीवन चरित्र भी इन्द्रजाल का ख्याल है

---

* न्यूनाधिक अबभी यह रिवाज उस देशमें पाया जाता है देखो मद्रास हाईकोर्ट रिपोर्ट जिल्द३ोयम अप्रैल सन् १८७७ ई०

(!) पहाडों में रहने वाली रामजनी इस में से ही निकली हैं

(!) दक्षिणदेशके रहने वालों के अतिरिक्त हम यह नहीं कहसक्ते किसब एक ही वंशके लोग हैं,

जिसमें नाना प्रकार के गुप्त भेद और गूढ़ार्थ प्रकट होते हैं, कि जिनका समझना भी किसी विद्वान पुरुष का ही काम है परंतु यह कहावत प्रसिद्ध है कि "जिनढूढा तिन पाइयाँ,, तथा (जोयन्द —यानन्द) (جویندہ یابندہ) बस ऐसे मनुष्य भी संसार में विद्यमान हैं जो अपनी बुद्धिमानी और ढूंढ द्वारा ऐसे ऐसे गूढ मार्गों में पैठ कर उनका यथार्थ भेद खोजलेते हैं और यही उनकी बुद्धिमानी और दीर्घदर्शिता का अनुपम चिन्ह है ॥

स्वामी दयानन्द सरस्वती कौन थे ? किस नगर कुल गोत्र में उनका जन्म हुआ ? यह स्पष्ट रूप से आज तक इस भारतवर्ष में किसी ने भी नहीं जाना और न उक्तमहाशय ने अपने मुखसे ही किसी को बतलाया किन्तु पूछने पर भी यही उत्तर दिया कि मैं जो आजकल दयानन्द सरस्वती के नाम से पुकारा जाता हूं सम्वत् १८८१ वैक्रमी में काठियावाड प्रान्त की राजधानी मोरवी के इलाके में एक उदिच ब्राह्मणके घर जन्मा और प्रथम दिनसही से जो मैंने अपने पिताका नाम और कुटुम्बियोंका पता नहीं बतलाया उसका यही कारण है कि यदि उनको मेरे समाचार मिल जावेंगे तो वे मुझको उठा कर घर पर लेजाकर इस सांसारिक झगडे में फेंसा देंगे जिससे मेरा मन घृणा कर रहा है, और मुझको यह भी सम्भव होता है कि घर पर जाऊँगा तो फिर रुदन करना पडेगा इसी कारण में उनका ठीक २ पता नहीं देता हूं ॥

स्वामी जी के इस कहने पर हमारी अनेक शंकायें ।

(प्रथम) जिस समय स्वामी जी ने अपना जीवनचरित्र वर्णन किया उस की ५० वर्ष की अवस्था थी क्या उस समय तक माता पिता विद्यमान थे ? जो खबर पाकर उक्त स्वामी जी को पकड़कर घर पर ले जाते ॥

(द्वितीय) यदि यह मान भी लिया जाय कि उस समय तक माता पिता विद्यमान भी थे तो स्वामी जी ऐसे छोटे बालक नहीं थे जो माता पिता गोद में उठा कर ले जाते किन्तु हिन्दू लोगों में तो यह मर्य्यादा है कि जिनका पुत्र सन्यासी हो जाता है वे माता पिता कुछ नहीं कह सकते और हमको बहुत बड़ा आश्चर्य्य तो इस बात का है कि स्वामी जी को उन के माता पिता के समाचार क्योंकर मिलते रहते थे ? क्या कोई गुप्त दूत अथवा तार लगा हुआ था ? हम कहने से तो यही सिद्ध होता है कि स्वामी जी को अपने माता पिता का जीवित रहना भी

दुःख का कारण था और वे रात दिन परमेश्वर से यही प्रार्थना करतेहोंगे कि हमारे माता पिता और कुटुम्बी शीघ्र मर जाय जिसमे हमारा सदैव का खटका मिट जाय बस जब तक यह नहीं मानलिया जायगा जैसा हमारा पूर्वोक्त विश्वासहै तब तक यह सिद्धनहीं हो सकेगा कि पचास वर्ष की अवस्था में भी स्वामी दयानन्द सरस्वती को अपने कुटुम्बियों के हाथ से पकड़ा जाकर घर घर ले जाने का भय लगा हुआ है ॥

(तृतीय) स्वामी जी कहते हैं कि घर घर जाकर द्रव्य छूना पड़ता सो क्या छापाखाना खोलने, पुस्तक बेचने, चन्दा इकट्ठा करने में जो द्रव्य आपको छूना पड़ा वह किसी गणनामें नहीं था ? अथवा निज घर छोड़ पराये अनेक घरों से मांगा द्रव्य छूने में नवीन वेद भाष्य के लेखानुसार कोई लोप व प्रतिज्ञा भंग नहीं थी ? हां ! किसी कवि ने सत्य कहा है ॥

पर उपदेश कुशल बहुतेरे। आप करैं ते नर न घनेरे ॥

स्वामी जी निज माता पिता को तो अपने समाचार तक देने से रुके और "सत्यार्थप्रकाश" में निम्न लिखित उपदेश लिखते हैं ॥

मानोवधी. पितरंमोतमातरम् १ यजुः०

"प्रथम माता मूर्तिमती पूजनीय देवता,, अर्थात् संतानों को तन मन धन से सेवा करके माताको प्रसन्नरखना हिंसा अर्थात् ताडना कभी न करनी, दूसरा पिता सत्कर्तव्य देव उसकी भी माता के समान सेवा करनी ॥

मातृदेवो भव पितृदेवो भव आचार्यदेवो भव अतिथि देवो भव। ६। तैतिरीयनि०

यह पाँच मूर्तिमान देव जिनके सग से मनुष्य देह की उत्पत्ति, पालन, सत्य शिक्षा, विद्या और सत्योपदेश की प्राप्ति होती है येही परमेश्वर को प्राप्तिहोने की सीढियाँ हैं। इन की सेवा न करके जो पाषाणादि मूर्ति पूजते हैं, वे अतीव वेद विरोधी हैं, *

धन्य महाराज धन्य, अजी स्वामी जी महाराज यदि आपके माता पिता को इस

* तृतीय बार के छपे हुये स०प्रकाश के समु० ११ पृष्ठ ३१७। ३१८ को देखो।

समय के ठीक समाचार मिल जाते तो वे फूले अंगों न समाते और आप का उच्च कुल गोत्र में जन्म लेना सर्वसाधारण पर विदित भी होजाता ॥

(चतुर्थ) संसार प्रचलित मर्य्यादा यह है कि पिता अपने पुत्र की उन्नति का अभिलाषी रहता और सदैव यही चाहता है कि मेरा पुत्र मेरे नाम को बढावे परन्तु स्वामी दयानन्द सरस्वती ने इस के विरुद्ध निज पिता के नाम को उलटा छिपाया इसका कोई गुप्त भेद है, इधर ये माता पिता के वियोग में ध्रुव के समान दुखी थे तो सुनीती और उत्तानपाद से न्यून दशा इन के माता पिता की भी न होगी यदि स्वामीजी की आज कल की प्रतिष्ठा प्राप्त करने के समाचार उन के माता पिता को मिलते तो वे अत्यन्त हर्षमान ईश्वर का धन्यवाद करते, परन्तु इन का पता न लगने पर अपने मनमें यह विचारते रहते होंगे तो आश्चर्य्य ही क्या है कि हमारा पुत्र कहीं डूब कर मर गया अथवा मुसल्मान, ईशाई, या साधु होगया, हा ! न मालूम अब उसकी क्या दशा है ? और उसपर क्या २ गुजरती है ?

(पाँचवे) यदि स्वामीजी के कुटुम्बीजन विद्यमान थे (जैसाकि स्वामी जी का विश्वास दृष्टि पडताथा) और उनको अपने पढे लिखे पुत्र की अत्यन्त दूढ (तलाश) थी (जैसी कि लौकिक रीत्यानुसार होनी भी चाहिये) तो जब स्वामी जी ने अपना बहुत कुछ पता ठिकाना, जन्म का सम्वत् राजगोरवी का इलाका, जाति ब्राह्मण, उदिच गोत्र, इत्यादिक ठीक ठीक बतला दिया था तब घर वालों को पता मिलना कठिन नहीं था, आज पुलिस प्रबन्ध ऐसा प्रबल मजबूत है कि नाम मात्र के सहारे पर ही अपने चोर को पृथिवी पर से खोज लेता है जब स्वामी जी कहते हैं, मेरा पिता बडा धनाढ्य, जमींदार था मेरे भागने पर उसने फौज के सिपाही ढूढने (तलाश) को भेजे थे, तो विश्वास होता है कि पुलिसमें तो अवश्य खबर दी गई होगी, परन्तु यह बडे आश्चर्य्य की बात है कि यदि आज लाट साहब का बेटा खोया जाय तो फौज नहीं चढै, और किसी की चार आने की अंगूठी लेकर कोई भाग जाय तो पुलिस मारी मारी फिरे, लेकिन स्वामी जी के ढूढने को पुलिस नहीं गई फौज चढी ॥

यह बनावट स्वामी जी महाराज को ठीक नहीं बन पडी किंतु उलटा उनके वचनों का विश्वास नष्ट करती है ॥

(छठवें) यदि स्वामी जी के माता पिता वास्तव में कगाजी थे तो उनका यथार्थ हाल कह देने में स्वामीजी का कुछ बिगाड़ नहीं था वरन यश, कीर्ति की उन्नति थी सब यही कहते कि स्वामी जी ने निज पुरुषार्थ से भारतवर्ष में प्रसिद्धता पाकर भी पिछली हीन दशा को नहीं छिपाया और जो स्वामी जी के पिता यथार्थ में धनाढ्य थे तो फिर उसके गुप्त करने में क्या लाभ था ?

(सातवें) स्वामीजी ने अपने जीवनचरित्रको निज मुखसे कहने में जो कुछ त्रुटि रख छोड़ी है उससे यही सिद्ध होता है कि अवश्य कुछ दालमें काला है नहीं तो थोड़ासा पता देना और थोड़ासा छिपाना इसमें क्या चतुराई थी ? यह प्रसिद्ध है कि आर्य्य समाजी मनुष्यों ने स्वामीजी का यथार्थ जीवनचरित्र संग्रह कर मुद्रित कराने का प्रण किया है और उस काम के लिये एक "पण्डित लेखराम" नामी समाजी पुरुष नियत किये गये हैं, हम आशा करते हैं कि उक्त लेखराम महाशय स्वामी जी के गुप्त समाचारों के ढूंढने में त्रुटि नहीं करेंगे, और हमको यह भी विश्वास होता है कि जब वे ढूंढेंगे तो वह गुप्त भेद भी उनका अवश्य खुल जायगा जिस को हम जान बूझकर भी छिपाना नहीं चाहते * और जो उन्हों ने ढूंढने में प्रमाद किया अथवा समाचार मिलने पर उनको छिपाया तो यह जीवन चरित्र अधूरा रह जायगा ।

(क) अब न्यायशील स्वतः विचारलें कि स्वामी दयानन्द सरस्वतीका कथन कहाँ तक सत्य है, जो मनुष्य अपना जन्म कुल गोत्र बताकर उसका कुछ भाग छिपाता है, चाहे वह उच्च कुल गोत्र का ही क्यों नहो सर्वसाधारण के सन्मुख विश्वास करने योग्य अथवा प्रामाणिक नहीं है ॥

स्वामी दयानन्द सरस्वती का जन्म सम्वत् १८८१ वैक्रम शाक १७४६ सन् १८२४ ईस्वी में तिथी भाद्रपद शुक्ल ०९ गुरु वार को दिन के मध्यान में हुआ था इस का ब्योरा हमको उनकी जन्म पत्री ‡ द्वारा (जो हमारे एक पुराने मित्र ने कुछ दिन हुये चिट्ठी द्वारा भेजी थी) निश्चय हुआ था.

* यह समाचार प्रकट रूपसे तो नहीं परन्तु निम्बदती (अफवाह) केतौर पर जो कुछ हमने सुने है वे दूसरे भागके अंतमें लिखेंगे ॥

‡ यह जन्मपत्रिका गुजराती अक्षरों में उस देशके लेखानुसार थी जिसको हमने स्वदेश रीतिके अनुसार करलिया है,

॥ स्वामी दयानन्द सरस्वती की जन्मपत्रिका ॥

सम्वत् १८८१ शाक १७४६ तत्र भाद्रपद शुक्ला ०९ गुरुवासरे कलादि ०१। ३६ मूल नाम नक्षत्रे कलादि ३६। ४६ प्रीति नाम योगे कलादि १४। ०३ कौलव नाम कर्णे कलादि ०१। ३६ उपरान्त तैत्तिले, चन्द्र तारीख ०६ पर्व तिथि पञ्चाग शुद्धौ तत्र दिन प्रमाण ३१। ३२ रात्रिमान २८। २८ अहोरात्रिमान ६०। ०० तत्र सिंहार्क गतांशा १७। ५४। २५ तत्र श्री सूर्य्योदयादिष्टम् १५। १० तदा ०७। ०७। ४०। ५८। ५४ लग्नोदये जन्म मूल नक्षत्रे तृतीय चरणे राशि धन, स्वामी गुरु, गण राक्षस, वर्ण क्षत्री, इत्यादि।

घर	तन	धन	सहज	जाया	सुत	अरि	मार्या	मृत्यु	धर्म्म	कर्म्म	आय	व्यय
लग्न	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७
गृह	०	च रा	०	०	०	०	श०	के	बृ०	सू शु	बु०	म०

देश काठियावाड़ राजधानी महाराज मोरवी में रामपुरा नाम एक छोटा सा ग्राम है, उस ग्राम में भजनहरि नाम कायटी रहता था, उसके केवल एक कन्या के अतिरिक्त कोई पुत्र नहीं था, इस लिये रात्रि दिवस उसको पुत्र का मुख देखने की प्रचुर लालशा लगी रहती थी। एक दिन किसी महात्मा ने उसको उपदेश दिया कि यदि तू एक सौ एक (१०१) दिन महादेव जी के मन्दिर में गोघृत का दीपक जलाया करे तो शिवजी की कृपा से तेरे भी कुलका दीपक पुत्र उत्पन्न होवे।

भजनहरि की वृद्धावस्था होगई थी, पुत्रोत्पत्ति की उमग में मदोन्मत्त था इस के एक छोटा भाई सीताराभहरि नाम और था, उसके भी कोई पुत्र नहीं था, धर्म्मकार्य्य में भजनहरि की बुद्धि सदा सर्वदा से उत्तम थी, महात्मा जी का उपदेश मान हर्ष सहित शिव मन्दिर में दीपक धरने लगा, और थोड़े ही दिनों में शिवजी की कृपा से तथा होनहार कर्म्मकाण्ड के योग से भजनहरि की स्त्री को गर्भ रहा, सम्वत् १८८१ भाद्रपद शुक्ला ०९ गुरुवार के दिन पुत्र का जन्म हुआ *

* तिथि वार महीना जन्मपत्री के अनुसार लिखा गया है, और जन्मपत्री का फल दूसरे भाग के अन्त में लिखा जायगा, तथा देखो उर्दू धर्म जीवनपत्र लाहौर, तारीख १७ जून सन् १८८८ ई०।

भजनहरि के सकल परिवार में प्रचुर आनन्द भया, शिवभजन इसका नाम धरा * दशवें दिन बालक को उसी शिव मन्दिर में लेगये जहाँ भजनहरि दीपक जलाया करता था । और भजनहरि हाथ जोड़ शिर नवाय शिव जी की मूर्ति [पिण्डी] के सम्मुख खड़ा हो कहनेलगा, हे बाबा भोलेनाथ मैं तो महामन्द भागी हूं यह जो कुछ है आपही का अनुग्रह और प्रताप है मैं आज ही से इस बालक को आपका नृत्यकार समझ कर प्रथम इसको यही विद्या पढ़ाऊंगा । आप कृपा कर इसके जीव को सब प्रकार के कष्टों से निर्भय रखना, मेरे बुढ़ापे की टेक आपही के हाथ है, तथा मेरी आपसे बारम्बार यही प्रार्थना है, इत्यादिक शिव जी की भक्ति कर बालक को घर पर लाया, और लालन पालन करने लगा, ज्योतिषियों से ग्रह पूछे गये, तो उन्हों ने उत्तर दिया कि बालक होनहार है, परन्तु इसका जीवित रहना कुछ कठिन भी है, क्योंकि इसके ऐसे उत्तम ग्रह तुम्हारे घर योग्य नहीं हैं, और यदि यह बालक जीता भी रहा (जैसा एक दो ग्रहों के फल से दृष्टि भी आता है) तो सुन, लो भाई यह लड़का बड़ा ही प्रतापवान् और प्रसिद्ध पुरुष होगा यह सुन भजनहरि बहुत खुश हुआ, बल सहित बालक का पालन पोषण करने लगा शनैः शनैः शिवभजन पांच वर्ष का हुआ, पिता ने विद्यारम्भ कराया, बालकपन से ही बुद्धि इसकी उत्तम थी, ईश्वर गुरु जी का अनुग्रह भी अधिक हुआ तो थोड़े ही दिनों में बहुत कुछ विद्या पढ़ ली, जब पाठशाला से कुछ समय बचता था तो भजनहरि इसको गीत नृत्य आदि अपने पुरखाओं का कार भी सिखलाया करता था, जब शिवभजन आठ वर्ष का हुआ उचित रीति से उपनयन (यज्ञोपवीत) कराया गया* तेरह चौदह वर्ष की अवस्था में इसने अक्षर शब्द विद्या और गीत नृत्य विद्या दोनों में अच्छा अभ्यास कर लिया था, और रंग रूप उज्वल होने के अतिरिक्त इसने नृत्य कला में तो ऐसा कमाल पैदा किया और यह ऐसा विख्यात हुआ कि दूर दूर के मनुष्य इसका नृत्य देखने आते थे ।

---

* स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपना जन्म का नाम मूलशंकर बतलाया था, जैसा कि इस श्लोक से पाया जाता है (श्लोक) क्षीणिमाहीन्दुभिराभयुतेवैक्रमे वत्सरेय । प्रादुर्भूतो द्विजवरकुले वशिगे देशवर्य्ये ॥ मूलेनासौजननविषये शंकरेणापरेणाख्यति प्रापत्प्रथमवयसिप्रीतिदासज्ञानानाम् ॥ १ ॥ देखो दिलफूशायन फतहगढ़ की छपी दिनचर्या का अतिम पृष्ठ ।

* काफ़ी लोगों में भी उपनयन कराया जाता है ।

एक इसके रामपुरा ग्राम से निकट के "धांकागीर" नाम उत्तम ग्राम का रहने वाला जमीदार का लडका तो इसके नृत्य पर मोहित हो निज घर त्याग रात्रि दिन इसी के घर पड़ा रहने लगा। एक दिन शीत काल में शिवरात्रि का व्रत आया भजनहरि अपनी सम्पूर्ण मण्डली और साज बाज ले कर शिवभजन सहित शिवालय में गया, यह वही शिवालय है कि जहाँ भजनहरि ने घृत के दीपक जलाये थे, शिवभजन को नृत्य कारी बना कर नाचने के लिये खडा किया, तब शिव भजन बोला, हे पिता जब हम किसी और मन्दिर में जाते हैं तो पुजारी आदिक बहुधा मनुष्य हमको मान, धन, देते हैं? परन्तु यह जगल शून्य स्थान है, यहा केवल उन मनुष्यों के अतिरिक्त जो राह, बाट चलते हमारा तमाशा देखने को खड़े होगये हैं, और कोई दातार पुरुष तो है ही नहीं फिर किस आशा पर यहा जागरण करते हो? तब भजनहरि बोला हे पुत्र यह शिवजी महाराज सब की आशा पूर्ण करते हैं, और मैं तो इनका उपकार जन्मातर भी नही भूलूँगा। शिव भजन ने निज पिता के मुख से जब महादेव जी की इतनी बडाई सुनी बड़ा हर्ष माना, और मन में विचार किया, जिस शिवजी की पिता इतनी बड़ाई करते हैं, उससे कुछ मैं भी तो मागूँ। यह विचार मन ही मनमें प्रार्थना करने लगा, हे शिवजी मैं तेरे द्वार पर आज उस भावना से नृत्य करूगा जो शास्त्र में इन्द्र की अप्सराओं ने भगवान के सन्मुख किया लिखा है। और अपने मन और वाणी की शुद्धता से आपके वे गुणानुवाद गाऊगा जो नारद, देव, किन्नर वा गन्धर्वादि ने भी न गाये हों। इस सेवा का मुझको यथार्थ फल देना तेरे ही हाथ है। इतना विचार कर मन खोलकर ऐसा नृत्य किया जैसा पार्वती जी के आगे महादेव जी ने स्वत भी नहीं किया होगा। अर्द्ध रात्रि तक जागरण होता रहा, और महादेव जी ने भी जो कुछ वर देना था दे दिया * परन्तु शिवभजन उस समय इसी आशा में जागता रहा

| आजकल भी अनेक रूप रसिक मनुष्य रासधारियों के उज्वल वर्ण लडकों पर रागी हो जाते हैं।

* हमारे सिवाय कोई क्या जाने महादेव जी ने शिवभजन के नृत्य से प्रसन्न होकर यह वरदिया कि हे बालक तू प्रसिद्ध पुरुष होगा, परन्तु तेरे पिता ने अपने वचन का यथार्थ पालन नहीं किया, अपनी आजीविका के आधीन हो आज से पहिले तेरा नृत्य अनेक स्थानों पर कराके टके कमाये इस लिये उसको तेरा सुख न होगा,।

कि शिवजी महाराज मेरी सेवा का फल प्रकट होकर देवेंगे । और सब मनुष्य सो गये तब तो शिवजी की मूर्ति पर चढ़ी हुई वस्तु फल फूल मिठाई आदि को मूसे (चूहे) उठा २ कर ले जाने लगे । और कितनोंही ने तो शिवलिंग अर्थात् मूर्ति पर मींगन (वीट) भी कर दई, तब तो शिवभजन को अत्यन्त ही आश्चर्य हुआ मन में विचारने लगा कि जिस शिव ने अपने द्रव्य की ही रक्षा नहीं की वह मेरी क्या आशा पूरेगा यह विचार निराश हो आप भी सो गया । प्रात काल के समय जब सब मनुष्य सोतेसे उठे भजनहरि ने शिवभजनको जगाया और कहा उठ बेटा महादेवजीको नमस्कारकर अपने घर चलें । तब शिवभजन बोला हम नहीं जाते दूरसे नमस्ते है, कि यह शिव भी कोई पदार्थ है जो अपने द्रव्य को चूहोंसे न बचा सका हमारा क्या उपकार कर सक्ता है ।

"भजनहरि बोला हे पुत्र"

"मायांतुप्रकृतिंविद्यान्मायिनन्तुमहेश्वरम्"

अर्थात् प्रकृति का नाम माया है, और प्रकृत्यऽवच्छिन्न जो चेतन्य है उसी का नाम महेश्वर है, (यह श्वेताश्वर उपनिषद् की श्रुति है)

"और देखो"

"तंयथायथोपासतेतदेवभवति" तद्वैनान्भूत्वाऽव तितस्मादेनमेवेतिसर्वंरेवै तैरुप्यासीत्सर्वं ह्यैत द्भवतिसर्वं ह्यैनमेतद्भूत्वाऽवतिः श०मं०ब्रा०२० ⊛

इसका अर्थ यह है कि उस परमेश्वर की जो जैसे रूप से उपासना करता है, वह तद्रूपही होजाता है, और उसी रूप से अपने उपासक का सरक्षण करता है, इस लिये जो लोग एव विधि गुण सम्पन्न ईश्वर को जानते हैं उनको चाहिये कि वे उक्त सभी रूपों से उसकी उपासना करें । वह सर्व स्वरूप हो जाता है और तद्रूपहो के इन सभी का रक्षण करता है । इसी प्रकार महादेव जी भी हैं ॥

। आगे चलकर स्वामी दयानन्द सरस्वती (शिवभजन) को महादेव जी स्वप्नमें दर्शन देंगे ।

⊛ कोई यह शका न करे कि कापडी को इतनाज्ञान सभव नहीं ? गुजरात देश के अनेक शूद्र लोग भी अच्छे व्याकरणी होते हैं और भजनहरि तो अच्छा जानकार पुरुष था ।

शिवभजन बोला मैं अब आपकी एक बात भी नहीं मानूँगा ‡ मेरा विश्वास धातु पाषाण की प्रतिमाओं पर नहीं रहा, इनसे कोई फल की प्राप्ति नहीं। इनका पूजना सर्वथा व्यर्थ है, मैं आपकी और सब बात मानूँगा परन्तु मूर्ति पूजा तो मैं बिलकुल नहीं करूंगा, यह सुन भजनहरि को बड़ा कष्ट हुआ, क्रोध में आकर पुत्र को बुरा भला कहने लगा, इस समय शिवभजन का मित्र जिमीदार का लड़का भी उपस्थित था, भजनहरि शिवालय से अपने घर आया, पुत्र से ऐसा अप्रसन्न हुआ कि मुख से बोलना भी छोड़दिया अब शिवभजन का गीत नृत्य तो बिलकुल ही छूट गया केवल दादी, माता, भगिनी, चाचा, चाची, के सहारे से यह व्याकरण विद्याही पढता रहा, जब इसकी अवस्था पन्द्रह सोलह वर्षकी हुई तब इसकी प्यारी भगिनी और प्यारे चाचा का परलोकवास होगया।

स्वामी दयानन्द सरस्वती आप कहते हैं कि एक रात्रि को मैं अपने किसी मित्र के स्थान पर बैठा हुआ नाच देख रहा था, कि मेरे घर से एक मनुष्य ने आकर कहा तुम्हारी भगिनी अत्यन्त बीमार मरणान्त को पहुँची है, यद्यपि उसकी चिकित्सा और बचनेके अनेक उपाय किये गये परन्तु वह हमारे निज गृह पहुँचने के दो घंटे के भीतर भीतर ही मृत्यु को प्राप्त होगई।

'इस पर' भाई जवाहरसिंह जी अपनी सप्रह क्ष में लिखते हैं कि यह लिखना स्वामी जी का असम्भव जान पड़ता है कि घर में प्यारी भगिनी को प्राणान्त छोड़ कर भाई नाच, तमाशा देखने चलाजाय। हाँ यह विश्वास होसक्ता है कि कापड़ी लोग जो नाचने, गानेका काम करते हैं, लालच में आकर या किसी देवमंदिर में बुलाये जाने पर निज आजीविका भंग होने का भय मान। घर के रोगी को छोड़ मंडली ले बहुधा चले जाते हैं॥

भगनी और चाचा के मर जाने पर शिवभजन को बहुत कष्ट हुआ, जो कुछ

‡ इससमय तो यहकहदिया कि नहींजाते नमस्तेहै-परन्तु जब कुछदिनों बाद ज्ञानहुआ तो पश्चाताप किया और सम्पूर्ण समाजियों को नमस्ते ही कहने का उपदेश किया। तथा कुछ पीछे जब सम्वत् १९३८ में पुस्तक आर्योद्देश्य रत्नमाला बनाकर छपाई तो उसमेंभी नमस्ते शब्दको मानरखा इसका अर्थयह लिखाहै कि मैं तुम्हारा मान्य न करता हूं देखो सख्या १००

नाम मात्र घर में मीठा बोलने का सहारा था तो दादी माता के अतिरिक्त बिल्कुल नहीं रहा। इधर पिताने विचारा कि जब तक इस का विवाह न करूंगा यह मेरे काम का हर्गिज न होगा बस, इसका पिता विवाह की तैयारी करने लगा यह देख शिवभजन के मित्र ने इससे कहा क्यों मित्र अब क्या करोगे? हमारा तुम्हारा बहुत दिनों से यह वचनालाप हो चुका है कि विवाह के बखेड़े में नहीं पड़ेंगे। अब यही विचार उत्तम दीख पड़ता है कि किसी बहाने से भाग चलें इसको शिवभजन ने स्वीकार कर निज माता पिता से कहा मैं राजकोट पाठशालामें मित्र सहित पढने जाऊंगा परन्तु मातापिता ने आज्ञा नहीं दी इधर इसके मित्र का विवाह आगया तब तो इस का मित्र जमींदार का लडका बाईस (२२) वर्ष की और शिवभजन सोलह (सोलह) वर्ष की अवस्था में गुप्तरूप गृह, ग्राम, परिवार, त्याग देशांतर को चल दिये।

(क) एक मनुष्य से मित्रता का होना (जिसका स्थान इनके गृह से छ: मील था) स्वामीजी ने स्वत: स्वीकार किया है, और यह भी निश्चय होता है कि * यह स्वामी दयानन्द की उर्दूसवान उमरी इस्लामी प्रेस लाहौर में स० १८८९ ई० की छपी देखो पृष्ठ २४।

कि उसके साथ भागने का हाल भी बहुधा अपने विश्वासी समाजियों को स्वामी जी ने गुप्त रूप से अवश्य कह दिया है, अब ये अपनी निन्दा के भय से नहीं कहते तो उनकी इच्छा, परन्तु सत्य बात अधिक दिन गुप्त नहीं रहती, पुस्तक "ग्रन्थी फोकिया" में जिसने यह लिखा कि अपनी जाति, पैदायश, जिलेका नाम बतलाने मे स्वामी साहिब पकड़े नहीं जा सकते थे। क्योंकि इस बात का किसी को यक़ीन नहीं कि सिवाय उसके बेटे या किसी और रिश्तेदार के उस जिले से जहा उसकी रहायश है, और कोई शख्स नहीं भागा होगा, व नीज दयानन्द सरस्वती नाम स्वामी साहिब का वालदैन का रक्खा हुआ नहीं है। और असल उर्दू में भी देखो।

अपनी जाये पैदाइश के ज़िले का नाम बताने से स्वामी साहब बचते रहे जा सकते थे क्योंकि इस बात का किसी को यक़ीन नहीं कि स्वामी उसके बेटे या और रिश्तेदार के उस ज़िले से जहां उसकी सकूनत है और कोई शख्स नहीं भागा होगा व नीज दयानन्द सरस्वती नाम स्वामी साहिब का वालदैन का रक्खा हुआ नहीं है। और असल उर्दू में भी देखो।

* यह लेख उर्दू की किताब ग्रन्थी फोकिया-अरोडवश प्रेस लाहौर की छपी हुई पृष्ठ १५ पंक्ति ९ से और रद्दबुतलान पृष्ठ ७६ से लिया गया है।

उपरोक्त प्रमाण से स्पष्ट है कि जो मनुष्य दयानन्द सरस्वती के साथ घर से भागा उसको बहुधा समाजी मनुष्य जान बूझ कर निज निन्दा के भय से प्रकट नहीं करते उलटा उसको गुप्त करते अर्थात् छिपाया चाहते हैं।

शिवभजन ने माता पिता को अपने वियोग का महान कष्ट देकर अपना जन्म कृतार्थ किया तब घर से निकलने का एक सच्चा और छोटा सा बहाना यह किया कि मैं अपने मित्र से मिलने जाता हूँ वहा से शीघ्र चला आऊंगा। परन्तु यह केवल माता पिता से झूठा बहाना ही था मन में तो मित्र के सग भागने की थी।

(८) स्वामी दयानन्द सरस्वती जी लिखते हैं कि जब मैं अपने घर से चला सन्ध्या समय सम्वत् १९०३ वैक्रमी था, पहिली रात आठ कोश के अन्तर पहुँच कर एक नगर के निकट जा रहा। और दूसरे दिन ३० मीलके अतन्र पहुँचा, तीसरे दिन मैंने एक सरकारी नौकर की जुबानी यह सुना कि कुछ घोडों के सवारों सहित फौज के मनुष्य मेरे नगर के किसी तरुण पुरुष को ढूँढते फिर रहे हैं और कहते हैं कि उक्त मनुष्य निज गृह त्याग कर भाग गया है, मैं यह समाचार पाकर शीघ्र आगे बढा ही था कि कुछ मगते भिक्षुक मनुष्यों ने मेरे बहु मूल्य पट, आभूषण, कठ, अगूठी, इत्यादिक सब छीनलिये। और मैं स्योही नामक ग्राम मे पंडित लाला भक्त के पास पहुचा, वहाँ मुझको एक ब्रह्मचारी मिला जिसने मुझ को ब्रह्मचारी बनाकर मेरा नाम "शुद्धचेतन" रखलिया, और मैं रगदार कपड़े बदल कर अहमदाबाद के निकट एक कोट का गढ़ नाम नगर में आया, यहा मुझको एक बैरागी मिला जो मेरे कुटुम्बियों को भले प्रकार जानताथा। मैंने अपने घर से निकल जाने का सारा वृतात उसको कह सुनाया, तब उसने मुझ को बुरा भला कह कर पूछा अबतू कहा और किधर जायगा, तब मैंने शीघ्रतासे कहदिया कि इस वर्ष जो सिद्धपुर का मेला कार्तिक में होने वाला है उसमे जाना हूँ, और इतना कहकर मैं सिद्धपुर में जाकर नीलकठ महादेव के मन्दिर में ठहरा, उस बैरागीने यह बड़ा छल किया कि मेरे पिता को समाचार देदिये, और मेरा पिता मुझको पकड़ने के लिये बहुतसी फौज लेकर सिद्धपुर के मेले ही में चला आया था,

(क) यह कथन स्वामी का ठीक नहीं है, सत्य समाचार नीचेसंख्या में देखो।

(स) आ स्वामी जी और उनके मित्र घर से चले सम्वत् १८९७ वै० था और यह कहना भी स्वामी जी का झूठ है कि भागने के समय मेरी उमर २०-वर्ष की थी, * क्यों कि यदि यह इतनी अवस्था के होते तो भगते भिखारियों के हाथ से लूटे नहीं जाते, और एक वैरागी से बुरा भला सुन अपना गुप्त भेद नहीं देते, जो पट, आभूषण दोनों के पास थे भी नहीं ने छीन लिये और शिव भजन का मित्र भी इसने जन्मांतर के लिये जुदा होगया ‡ और यह बिचारा अकेला ही रह गया और इसने योगी सन्यासियों के महीने दो तीन महीने व्यतीत किये और उनके साथ साथ ही एक स्याही नामक नगर में पहुँचा और विद्योपार्जन का यत्न वा भोजन का प्रबन्ध न हुआ तो आगे बढ सीतापुर पहुंचा यहां भी योगियों के साथ ही गें कुछ दिन रहकर फिर आगे बढा, इधर इसके मित्र के पिता के चार मनुष्य भी ढूढते फिर रहे थे एक साधु के पत्रद्वारा समाचार पाकर यहां आये और सिद्धपुर में योगियों समेत इसको घेर लिया, तब शिवभजन ने डर के मारे यह कहा कि मुझ को यह साधु बहकाकर ले आये और अब कोई मुझको मेरेपिता के घर पहुँचादे तो मैं घर जाने को तैयार हूँ । इधर योगी कहने लगे महाराज इसको हम नहीं लाये स्याही ग्राम में मांगता फिरता था हमारे संग हो लिया हम नहीं जानते यह कहां का रहने वाला कौन है । उन चार मनुष्यों ने शिवभजन से पूछा कि अमुक तुम्हारा मित्र कहां है, तब कहा मित्र का हाल मुझे मालूम नहीं । वे मनुष्य शिवभजन को पकड कर ले चले और मार्ग में अनेक प्रकार की धमकिया दे कर भी पूछा परन्तु इसने अपने मित्र का कोई पता नहीं दिया, इसका पिता बुलाया गया, और उसको भी समझाया गया परन्तु कुछ कार्य्य सिद्ध न हुआ तब यह दोनों पिता पुत्र छोड दिये गये भजनहरि शिवभजन को लेकर निज घर पर गया, बहुत कुछ बुरा भला कहा विश्वास बिल्कुल जाता रहा, शिवभजन अपने भागने की घात में लगा रहा कि ऐसा न हो जो गुप्त भेद खुलजाय । भजनहरि को भी इसके भागने

* आर्य्यावर्त पत्र कलकत्ता खंड १ संख्या ४९ में स्वामी जी को भागने के समय १६ वर्ष की ही अवस्था लिखी है,

‡ यह कुछ गुप्त भेद है जिसको हम बिना दूसरे प्रमाण के नहीं लिखते ॥

। असल में इसका मित्र प्रथम दिन से ही इसके साथ नहीं गया दो चार दिन पीछे घर से चला था ।

का भय हुआ, इसको कई आदमीयों के पहरेमें रखने लगा, एक दिन शिवभजन ने कल्पित निद्रा से घर्राटे लगा लगा कर पहरेदारों को यह विश्वास दिलाया कि शिवभजन अवश्य सोगया, जब पहरेदारों ने इसको सोया जाना आप भी सब सोगये, इस समय रात्रि के ३ बजे थे, तबसो शिवभजन भी चुपके चुपके उठकर चला और एक पीतल का तूम्बा,इसलिये हाथ में लेलिया कि यदि किसी ने चलते हुए टोक लिया तो कह दूगा कि पखाने जाता हू ॥

[क] पाया जाता है कि इस समय तक इसको विद्या और बोध उत्तम न था क्योंकि जो मनुष्य अपने माता पिता को ऐसा दुःख देवे जिसका नाम पुत्र वियोग है, उससे बढकर और दुराचारी कौन होगा, तुलसीदासजी ने सत्य कहा है।

दोहा-तुलसी या संसार में। बड़ें दुःख यह चार ॥
भूमि छुटन या कृण बँधन। मरे पुत्र या नार ॥१॥

तथा।देखो।

श्लो०-परंक्षिपतिदोषेण वर्तमानः स्वयंतथा।
यश्चक्रुध्यत्यनीशानः सचमूढतमोनरः ॥१॥

(श्लोक का अर्थ) आप तो दोष रूपी सिन्धु में निमग्न हो परन्तु औरों को दोष लगाकर।दूषित करता है, तथा जो दुर्मति और निष्पौरुष होकर अत्यन्त क्रोध करता है, वह पुरुष तम अर्थात अतीव मूढ है ॥

(द)स्वामी जी लिखते हैं कि जब मैं एक मील तक चला गया तो लोगों को मेरे चले जाने का हाल मालूम हुआ, मैंने मार्ग में एक बहुत बडा वृक्ष देखा जिसकी शाखा चारों ओर दूर दूर फैली हुई थी, और एक देव मन्दिर (शिवालय) उन शाखओं से ढका हुआ था, मैं उस वृक्ष पर चढ गया और उसकी शाखाओं में जो मन्दिर के ऊपर छाई हुई थी छिप गया, एक घन्टे का समय भी व्यतीत न हुआ था कि मैं क्या देखता हूँ कि कितने ही सिपाही मुझे ढूढते फिर रहे हैं, मैं उनको देखकर पाषाणवत् स्थिर हो गया, तब वे सिपाही देख भाल कर चले गये और मैं सम्पूर्ण दिवस वृक्ष में छिपा रहकर रात्रि होते ही निकल भागा, न किसी से मिला और न मार्ग पूछा सीधा अहमदाबाद पहुँचकर बडोदा को होलिया, यहां वेदानि-

यों से मिला और मेरा निश्चय वेदांतपर होगया, और मैंने समझा कि ब्रह्म मैं हीहूं इस बखेड़े मे मुझ को एक काशी की रहने वाली स्त्री मिली जिसने बतलाया कि कि अमुक स्थान पर विद्वान पंडित का समारोह होने वाला है, मैं उसी ओर चला गया, वहा पर सच्चिदानन्द नामी एक परमहस मिले, उन्होंने कहा चालुक्याणी में बहुत से साधु रहते हैं तब मैं उधर चला गया, और एक सत्यशीलधान दीक्षित ब्राह्मण से मिला जिससे कुछ वादानुवाद हुआ, फिर मैंने परमहंस परमानन्द जी से विद्योपार्जन आरम्भ कर थोड़ेही समय में वेदान्त परभाष्य और कई पुस्तक देख ली, मैं उस समयब्रह्मचारी बना हुआ था, और अपनेहाथ की बनाई हुई रसोई खाता था, सो इससे छुटकारा पाने के लिये मैंने चतुर्थ श्रेणी के संन्यासी होने का विचार किया, और एक ऐसा विचार करने की अधिकता इसलिये थी कि ब्रह्मचारी रहने से ऐसा न हो पकड़ा जाऊं, क्योंकि मेरे कुटुम्बियों की प्रसिद्धता से मुझे पूरापूरा भय था * और अभीतक मेरा नाम वही प्रसिद्ध था जो घर में माता पिता और परिवार के मनुष्य बोला करते थे † इसलिये मैंने यही विचार उत्तम समझा कि सन्यासी होकर निडर और स्वतन्त्रहो जाऊंगा, सो मैंने अपने एक मित्र दक्षिणी पंडित से प्रार्थना करी कि आप मेरे सन्यासी होने के लिये सब से विद्वान दीक्षित से कहदें, उस समय मेरे मित्र ने तो मेरे विषय में बहुत कुछ कहा परन्तु दीक्षित जी ने मुझे सन्यासी नहीं किया ॥

[क] ऊपर के लेखपर पाठकगण ध्यान देवेंकि ३ बजे प्रात काल के समय स्वामी जी सोतेसे उठ पीतल का तूम्बा लेकर भाग पड़े और जब मन्दिर पर चढ़बुद्ध में छिपे हुये देख रहे थे कि सिपाही ढूंढते फिर रहे हैं तो एक घंटा भी न हुआ था भावार्थ यहकि चारभी नहींबजेथे, क्या खूब ! एक घंटेही मे सब कुछ होगया, और खैर जो कुछ उसका लिखा हुआ सत्य ही समझ लिया जाय तो उनकी बहुत बड़ी कृतघ्नता है कि घरसे भागने पर मन्दिर का सहारा लिया और उसमें छिपकर छुटकारा पाया, फिर थोड़े दिनों पीछे मूर्तिपूजा और मन्दिर की बुराई करने लग गये काशी निवासनी स्त्री ने, जिस स्थान का पता दिया उसका नाम भी गुप्त रक्खा और

* क्यों नहीं कहते कि जो खोटे कर्म करके भागे थे उनका भय था ।
† अर्थात शिवभजन ।

अपने संन्यासी होने का कारण भी जैसा कुछ बतलाया पाठकवृन्द समझ सकेंगे। स्वामी जी की सचाई का यह हाल है कि कभी कहते है मेरा नाम बदल कर शुद्ध चेतन रक्खा गया, कभी कहते हैं जो नाम घर पर पुकारा जाता था वही था इस संन्यास लेना हुआ। पाठक गण जब तक स्वामी के माता पिता परिवार के मनुष्य तथा उनके (जो साथभागा था) माता पिता रहे इन्हों ने अपना वृतात गुप्त ही रक्खा, परन्तु जब सब के मर खप जाने के समाचार मिल गये तो निजमित्र के बदले आप ही जमीदार के पुत्र बन गये और भागने का साल सम्वत् भी झूठ सच मन माना सोही प्रसिद्ध किया, यह भेद किताब उर्दू "फसान अजायब" (जिसका नाम नागरी में मोहिनी चरित्र है) की बन्दर वाली कहानी से पूरा २ मिला हुआ है यथार्थ जो कुछ है आगे चल कर लिखेंगे। अभी तो स्वामीजी की स्वहस्त लिखित कहानी और हमारा शका समाधान ही बराबर देखते चले जाओ।

[द] स्वामी जी लिखते हैं जब सन्यासियों ने मुझको चेला न बनाया तो मैं अप्रसन्न न हुआ, किंतु थोड़े ही समय पश्चात दो महात्मा दक्षिण की ओर से आये, जिनमें एक स्वामी दूसरा ब्रह्मचारी था, और दोनों एक जंगल में जहा मेरी विश्राम कुटी थी दो मील के अन्तर पर ठहरे थे, मेरा मित्र दक्षिणी पडित जो बड़ा वेदान्ती और विद्वान पुरुष था उन से मिलने गया, मैं उनके साथ गया, उनके पास जाकर हमारा वादानुवाद शास्त्रार्थ हुआ। उन्होंने कहा हम दक्षिण देश के उस स्थान से आये हैं जहाँ शकराचार्य्य का तुंगी मठ है, और अब द्वारिका को जावेंगे जिनमें जो स्वामी था उसका नाम पूर्णानन्द सरस्वती था, मैंने अपनेमित्र दक्षिणी पडित से कहा, मुझको इनसे ही कहकर सन्यासी करादो? तब मेरे मित्रने पूर्णानन्द सरस्वती जी से कहा, वे जाति के महाराष्ट्रि ब्राह्मण थे, कहने लगे। हम नहीं करते, किसी गुजराती से जाकर मिलो तब मेरेमित्रने बहुत कुछ कह सुनकर मैं सन्यासी करा दिया और मेरा नाम "दयानन्द" हो गया, और गुरुने मुझको एक दण्ड देकर उसकी विधि बतला दी, परन्तु मेरे से नहीं बन पड़ी क्योंकि विद्यो पार्जन में विघ्न होता था वे मुझे सन्यासी बनाकर द्वारकाकी ओर चले गये।

(क) प्यारे पाठकगण प्रथम बारकेछपे पुस्तक "सत्यार्थप्रकाश" पृष्ट १६३ पक्ति ९ में स्वामीजी लिखते हैं कि जिस पुरुष को विद्या ज्ञान वैराग्य पूर्ण

जितेन्द्रियता हो और विषय भोग की इच्छा न हो उसी को सन्यास लेना उचितहै, अन्य को नहीं" बस इस लिखने में यह प्रकट होता है कि जिस समय आपने सन्यास लिया था यह ज्ञान नहीं था कि जिस पुरुष को विद्या ज्ञान वैराग्य पूर्ण जितेन्द्रियता हो और विषय भोगकी इच्छा न हो उसी को सन्यास लेना उचित है अन्य को नहीं. नहीं तो कदापि सन्यास न लेते, क्योंकि आप में अद्यपयत विद्या ज्ञान वैराग्य पूर्ण जितन्द्रियता नहीं थी, और विषय भोग की इच्छा पूर्ण थी, विद्या ज्ञान यथार्थ होता तो परस्पर विरुद्ध शास्त्र प्रतिकूल युक्ति-रहित लेख क्यो करते, वैराग्य के विरुद्ध वनादि पदार्थों में राग क्यों होता, पूर्ण जितेन्द्रियता का लक्षण जो आपने ही प्रथम बारके छपे "सत्यार्थप्रकाश" पृष्ठ ५८ पंक्ति २१ में लिखा है, उसका कुछ भी चिन्ह पाया जाता विषय, भोग की इच्छा न होती तो उत्तमोत्तम वस्त्रों और भोजनों से क्या प्रयोजन था, अच्छा किया जो आपने सन्यास का अन्त में त्याग कर दिया, क्योंकि पूर्ण जितेन्द्रियता होने और विषय कषाय भोगों की इच्छा घटने में आपके अन्त समय तक त्रुटि थी ।

(ङ) फिर कुछ दिन तक मैं उसी स्थान पर रहा परन्तु जब मैंने सुना कि व्यास आश्रम में स्वामी योगानन्द रहते हैं, उनके पास योगविद्या सीखने चला गया, और वहा जाकर बहुत कुछ योगाभ्यास सीखता रहा ।

(क) प्यारे पाठकवृन्द ! कहा तक लिखा जाय दयानन्द सरस्वती ने अपनी प्रतिष्ठा बढाने तथा दूसरे मनुष्यों को अपना सच्चा योगाभ्यासी विदित कराने के लिये निज जीवनचरित्र में मनमाना झूट सट्ट भर मारा, परन्तु खेद इस बात का है कि फिर भी कुछ लाभ न हुआ, हम संग्रह मे केवल वही समाचार लिखेंगे जिनकी आवश्यकता है, स्वामी जी ने अपने जीवनचरित्र में छोटी सी बात को भी इतना बढा कर लिखा है जिससे बहुधा व्यर्थ कागज काले हुए, अब हम केवल उनके जीवनचरित्र से भी सचेमरूप लेते हैं, क्योंकि विस्तार से हमारा क्या प्रयोजन है ।

(ट) स्वामी जी लिखते हैं कि मैं सन्यासी हो कर जब संस्कृत विद्या का पण्डित हो गया तो चित्तौड के आस पास कृष्ण शास्त्री रहता था वहाँ गया और उससे व्याकरण विद्या का और भी अभ्यास किया, फिर चालुडा कल्याणी में आया

तब ज्ञानानन्द शिवानन्द योगियों से मिलकर कुछ काल उनके संग रहा और उत्तम योगाभ्यास में निपुण होगया तब अहमदाबाद के निकट दूधेश्वर महादेव आबू पहाड़ी की चोटी पर इत्यादिक स्थानों में जो योगाभ्यासी मिले उनसे इसी विद्या को सीखता हुआ सम्वत् १९११ में प्रथम ही कुंभ के मेले पर हरिद्वार पहुंचा, वहां से हृषीकेश होकर टिहरी तथा टिहरी में आया राजपतियों से मिला योगमार्ग का भेद जान श्रीनगर केदारघाट रुद्रप्रयाग होता हुआ अगस्तमुनि की समाधिपर पहुँचा वर्षा ऋतु वहां ही पूरीकर केदारघाट तुंग नाथ ऋषी मठ, बद्री नारायण आदि स्थानों में घूमा अलकनन्दादी के तट २ रहिये किनारे २ फिरता सप्तश्रृंग तीर्थ में आया, मार्ग के कष्टों से खेदखिन्न होकर एक समय मैंने अत्यन्त ही पश्चाताप किया कि हा! मैंने घरपर रहकर ही विद्या क्यों न पढ़ी जो इस महान कष्ट में न पड़ता, फिर मैंने एक मनुष्य की जान बचाई, और लौटकर बद्री नारायण पहुंचा, रात्रि को रावलजीके स्थान पर भोजन कर सो रहा, प्रात समय चिनकिया घाटी में उतरकर रामपुर में आया सो एक महात्मा रामगिरी नामी के दर्शन हुये, यह रामगिरी कभी सोता नहीं था, मैं उससे आज्ञा ले काशीपुर और वहां से द्रोणसागर पहुँचा जहां शीतकाल काट मुरादाबाद सम्भल हो गढ़मुक्तेश्वर के पार पहुंचा उस समय मेरे पास "शिव साधन प्रदीपका" "योग बीज" "कबीरानन्द संहिता" यह तीन पुस्तक भी थीं, जिनको मैं कभी २ देखा भी करता था, इनमें "नाड़ीचक्रांति" और "नाड़ीचक्र" उत्तम विषय थे जिनसे मनुष्य के शरीर के भीतरी भाग का भेद खुलता था, परन्तु उसका जानना बड़ा कठिन था, एक समय मुझे यह भ्रम उत्पन्न हुआ कि कहीं यह पुस्तक अशुद्धों नहीं हैं, और इस भ्रम मिटाने के लिये मैंने अनेक यत्न किये एकवार गंगाजी में कोई मृतक शरीर बहा जाता था, उसको देख मैं जल में घुस (पैठ) किनारे पर पकड़ लाया, और तीक्ष्ण कर्द (तेज चाकू) से काट फाड़ का सूत्र ही देखा परन्तु कुछ दृष्टि नहीं पड़ा तब लाचित हो पुस्तकों सहित मुर्दा जल में पटक दिया, और आगे को चल दिया, कुछ दिन गंगा के तटपर रहकर फर्रुखाबाद आया * फिर कई स्थानों पर फिर कर कानपुर में गया, यह समय लोक

* प्रथम जब फर्रुखाबाद गये बिल्कुल नंगे थे जुबान संस्कृत ही बोलते थे॥

सम्वत् १९१२ वैक्रमीके व्यतीत होनेका था, कानपुरसे इलाहाबादतक के बहुधा बड़े २ स्थान देखता हुआ मैं भादोके महीने में मिर्जापुर पहुँचा, और वहां काकाराम राजाराम शास्त्रियोंसे मिला, फिर चाण्डालगढ़ में पहुँचकर दुर्गाखोह के मन्दिर मे दसदिन गुजारे, और चावलखाना छोडदिया पर यहाँ मुझको भंग पीने की बाँण [आदत] पडगईथी, चाडालगढ के बाहर एक शिवजी का मन्दिर था, एक दिन मैं उस मन्दिर में जा रहा तो एक पिछले समय का बिछडा मनुष्य मुझको मिला परतु मैं भग के नशे में अचेत होरहा था, शीघ्र सो गया, तब स्वप्न मे क्या देखता हू कि महादेव और पार्वतीजी आपस में वार्ता कर रहे हैं । पार्वती जी शिव जी से कहरहीथीं दयानन्द का विवाह होजाय तो बडी श्रेष्ठ बात है*परन्तु शिवजीने स्वीकार नहीं किया, उस समय जो मेरी आख खुलगई तो बड़ाहर्ष प्राप्त हुआ ‡ वृष्टि लगातार होरहीथी, मन्दिर में एक वृषभकी मूर्ति खड़ीथी, मैंने अपने कपडे और पुस्तक उसकी पिठपर धरदिये, और बैठगया तो क्या देखताहू कि एक मनुष्य उस वृषभके शरीर में घुस रहा है, मैंने अपना हाथ बढाकर पकडना चाहा तो वह निकल भागा, और मैं उसके स्थान मूर्ति में घुसकर सोगया । प्रात काल एक स्त्रीने आनकर वृषभकी पूजा करी, और मुझको देवता समझके गुड और दही दिया और कहा महाराज भोजनकरलो, मैंने उसका कहनामान भोजन करलिया जिससे भगका नशा उतर गया, और मैं आगे को चलपड़ा, परन्तु मैंने कभी किसीसे मार्ग नहीं पूछा, मैं नर्मदा नदीके निकाश की ओर सघन वनों को अवगाहन करता हुआ एक ऐसे स्थान मे पहुँचा जहाँ अनेक बनचर दुष्ट जीव रहते थे, एक कालेरीच्छ (भालू) से मेरा सामना हुआ, परन्तु वह मेरे सोटेसे डरकर भागगया, मुझको नर्मदा नदीके निकाशके देखनेकी बड़ी उत्कंठा लगरहीथी, इसलिये निर्भय हुआ मैं आगे ही को बढ़ाचलागया, कुछ मार्ग मुझको वृक्षों की सघनताके कारण सर्पके समान पेटके बल चलकर काटना पड़ा था, बस इसी प्रकार के अनेक कष्ट सहन करता हुआ चला २ मैं एक ग्राम के निकट पहुँचा, यहा के सरदारने मुझे दुग्धपिलाया, परतु उसकाभो-

* पार्वती जी का कहना महादेवजी स्वीकार करलेते तो स्वामीजी बड़े प्रसन्न होते,
‡ ईश्वर क्यों नहो जिस शिवजी को बालकपन में स्त्री बनकर नृत्य दिखलाया उसने ब्याह की नाहीं करदी, यदि शिवजी इस समय विवाह की नाहीं नकरते तो सत्यार्थप्रकाश में स्वामी जी एक स्त्री को ११ पति की आज्ञा न देते,

जन मैंने इसलिये स्वीकार नहिया कि वह प्रतिमा पूजनेवाताथा। इत्यादि०

[क] प्यारे पाठकवृन्द विचार करना चाहिये स्वामी जी का स्वहस्त लिखित जीवन चरित्र कहांतक विश्वास करन योग्य है, इसमे जोकुछ लिखा है उसमे स्वामी जीने अपने योगाभ्यासी होने का सिद्धान्त लिखलाया है, परन्तु हम कहते हैं कि स्वामी जी को योगाभ्यास का नामतक यादनहीं था, योगीपुरुष दुबले पतले निर्बल शरीर के होते है, स्वामी जी तो हृष्टपुष्ट माट ताजे थे। उनके शरीर पर योगाभ्यास का कोई भीचिन्ह नहीं था, समाधिका लगाना गुफा, गढे आदिक में बैठकर कुछ समय तक स्थिर होजाना दुनियाँ दिखलाव और केवल भानमतथा, इससे कुछ फलकी प्राप्तिवा योगविद्याका सम्बन्ध नहीं था, और यह स्वामीजी का लिखना और भी उनके मिथ्याभाषण का पता देता है कि आत्मानन्द से आत्म विद्या और योगानन्द से योगाभ्यास सीखा, तथा रामपुर में रामगिरि आदिक साधुओंसे कार्य्य सिद्ध किया।

प्यारे पाठकवृन्द देखो तो सही क्या २ तुक मिलाई हैं, अनेक स्थानों का भ्रमण लिखाकर स्वामीजी यह सिद्धकिया चाहते है कि उनका यहश्रम केवल योगियों के ढूँढने ही का था। आपलिखते हैं कि मैंने एक मनुष्य की जानबचाई, परन्तु पूरा पता लिखते लज्जा उत्पन्नहुई जो नहीं लिखा, जानपडता है यहा भी कोई गुप्तभेद अवश्य है। आहा! यह कितने आश्चर्य्य की बात है आपको जा मिला महात्माही मिला, स्वामीजी लिखते हैं किसी स्थान में मेरे पास कपडे तक नहीं थे कहीं लिखते हैं रंगे हुये कपडे और पोथी पुस्तक भी मेरे पास थे उनकी परीक्षाके लिये मैंने एक मुर्दा नदी मे से निकालकर चीरडाला और तीक्ष्ण कर्द [तेज चाकू] भी मिलगया, और बिना गुरोपदेश उनपुस्तकोंके शुद्धाशुद्ध का ज्ञानभी स्वमेवही होगया, और सर्व पुस्तकें मुर्दे सहित जलमें डालदीं फिर आगेचले, महादेव के मन्दिर में जोवृषभथा, उसकी पिष्टपर धरनेको अन्य पुस्तक कहा से आई? वृषभके शरीर में स्वामीजी मुखमे धसे या गुदास? यह स्पष्ट नहीं लिखा? क्योंकि मूर्तिमें केवल दोनों ही मार्ग खुले होगे, और जिस मूर्ति के उक्त दोनों मार्ग ऐसे बड़े हों कि जिसमें मनुष्य घुस सक्ता है यह मूर्ति न मालूम कितनी बडी होगी? और जिस शिवालयमें यह मूर्ति होगी उसके विस्तार का तो क्या ठिकाना है *

* यह सब भगके नशेकी लीला और मनकल्पना है,

सम्वत् १९१२ विक्रमीके व्यतीत होनेका था, कानपुरस इलाहाबादतक के बहुधा बड़े २ स्थान देखता हुआ मैं भादोके महीने में मिर्जापुर पहुँचा, और वहा काकाराम राजाराम शास्त्रियोंसे मिला, फिर चाण्डालगढ़ में पहुँचकर दुर्गाखोह के मन्दिर में दसदिन गुजारे, और चावलखाना छोड़दिया पर यहाँ मुझको भग पीने की बाँण [आदत] पड़गईथी, चाडालगढ के बाहर एक शिवजी का लन्दिर था, एक दिन मैं उस मन्दिर में जा रहा तो एक पिछले समय का बिछड़ा मनुष्य मुझको मिला धरतु मैं भग के नशे में अचेत होरहा था, शीघ्र सो गया, तब स्वप्न में क्या देखता हूं कि महादेव और पार्वतीजी आपस में वार्ता कर रहे हैं । पार्वती जी शिव जी से कहरहीथीं दयानन्द का विवाह होजाय तो बडी श्रेष्ट बात है*परन्तु शिवजीने स्वीकार नहीं किया, उस समय जो मेरी आख खुलगई तो बड़ाक्लेश प्राप्त हुआ ‡ वृष्टि लगातार होरहीथी, मन्दिर में एक वृषभकी मूर्ति खड़ीथी, मैंने अपने कपडे और पुस्तक उसकी पिण्डपर धरदिये, और बैठगया तो क्या देखताहूं कि एक मनुष्य उस वृषभके शरीर में घुस रहा है, मैंने अपना हाथ बढाकर पकड़ना चाहा तो वह निकल भागा, और मैं उसके स्थान मूर्ति में घुसकर सोगया । प्रात काल एक स्त्रीने आनकर वृषभकी पूजा करी और मुझको देवता समझके गुड और दही दिया और कहा महाराज भोजनकरलो, मैंने उसका कहनामान भोजन करलिया जिससे भगका नशा उतर गया, और मैं आगे को चलपड़ा, परन्तु मैंने कभी किसीसे मार्ग नही पूछा, मैं नर्मदा नदीके निकाश की ओर सघन वनों को अवगाहन करता हुआ एक ऐसे स्थान में पहुँचा जहाँ अनेक वनचर दुष्ट जीव रहते थे, एक कालेरीच्छ (भाल्ल) से मेरा सामना हुआ, परन्तु वह मेरे सोटेसे डरकर भागगया, मुझको नर्मदा नदीके निकाशके देखनेकी बड़ी उत्कंठा लगरहीथी, इसलिये निर्भय हुआ मैं आगे ही को बढ़ाचलागया, कुछ मार्ग मुझको वृक्षो की सघनताके कारण सर्पके समान पेटके बल चलकर काटना पड़ा था, बस इसी प्रकार के अनेक कष्ट सहन करता हुआ चला २ मैं एक ग्राम के निकट पहुँचा, यहा के सरदारने मुझे दुग्धपिलाया, परन्तु उसकासो-

* पार्वती जी का कहना महादेवजी स्वीकार करलेते तो स्वामीजी बड़े प्रसन्न होते, ‡ क्लेश क्यों नहो जिस शिवजी को बालकपन में स्त्री बनकर नृत्य दिखलाया उसने ब्याह की नाहीं करदी, यदि शिवजी इस समय विवाह की नाहीं नकरते तो, सत्यार्थप्रकाश में स्वामी जी एक स्त्री को ११ पति की आज्ञा न देते, -

जन मैंने इसलिये स्वीकार नकिया कि वह प्रतिमा पूजनेवालाथा। इत्यादि०

[क] प्यारे पाठकवृन्द विचार करना चाहिये स्वामी जी का स्वहस्त लिखित जीवन चरित्र कहांतक विश्वास करने योग्य है, इसमे जोकुछ लिखा है उसमें स्वामी जीने अपने योगाभ्यासी होने का सिद्धान्त दिखलाया है, परन्तु हम कहते हैं कि स्वामी जी को योगाभ्यास का नामतक यादनहीं था, योगीपुरुष दुबले पतले निर्बल शरीर के होते हैं, स्वामी जी तो हृष्टपुष्ट मोटे ताजे थे। उनके शरीर पर योगाभ्यास का कोई भीचिन्ह नहीं था, समाधिका लगाना गुफा, गढे आदिक में बैठकर कुछ समय तक स्थिर होजाना दुनियाँ दिखलाव और केवल भानगतथा, इससे कुछ फलकी प्राप्ति या योगविद्याका सम्बन्ध नहीं था, और यह स्वामीजी का लिखना और भी उनके मिथ्याभाषण का पता देता है कि आत्मानन्द से आत्म विद्या और योगानन्द से योगाभ्यास सीखा, तथा रामपुर में रामगिरि आदिक साधुओंसे कार्य्य सिद्ध किया।

प्यारे पाठकवृन्द देखो तो सही क्या २ तुक मिलाई हैं, अनेक स्थानों का भ्रमण लिखाकर स्वामीजी यह सिद्ध किया चाहते हैं कि उनका यहश्रम केवल योगियों के ढूँढने ही का था। आपलिखते हैं कि मैंने एक मनुष्य की जानबचाई, परन्तु पूरा पता लिखते लज्जा उत्पन्नहुई जो नहीं लिखा, जानपडता है यहा भी कोई गुप्तभेद अवश्य है। आहा! यह कितने आश्चर्य्य की बात है आपको जा मिला महाभाडी मिला, स्वामीजी लिखते हैं किसी स्थान में मेरे पास कपडे तक नहीं थे कहीं लिखते हैं रंगे हुये कपडे और पोथी पुस्तक भी मेरे पास थे उनकी परीक्षाके लिये मैंने एक मुर्दा नदी मे से निकालकर चीरडाला और तीक्ष्ण कर्द [तेज चाकू] भी मिलगया, और विना गुरोपदेश उनपुस्तकोके शुद्धाशुद्ध का ज्ञानभी स्वमेवही होगया, और सर्व पुस्तकें मुर्दे सहित जलमें डालदीं फिर आगेचले, महादेव के मन्दिर में जोवृषभथा, उसकी पिट्टपर धरनेको अन्य पुस्तक कहा से आई? वृषभके शरीर में स्वामीजी मुखमे घसे या गुदासे? यह स्पष्ट नहीं लिखा? क्योंकि मूर्तिमें केवल दोनो ही मार्ग खुले होंगे, और जिस मूर्ति के उक्त दोनो मार्ग ऐसे बड़े हों कि जिसमें मनुष्य घुस सक्ता है वह मूर्ति न मालूम कितनी बडी होगी? और जिस शिवालयमें यह मूर्ति होगी उसके विस्तार का तो क्या ठिकाना है *

* यह सब भगके नशेकी लीला और मनकल्पना है,

सम्वत् १९१२ वैक्रमीके व्यतीत होनेका था, कानपुरसे इलाहाबादतक के बहुधा बड़े २ स्थान देखता हुआ मैं भादोके महीने में मिर्जापुर पहुँचा, और वहा काकाराम राजाराम शास्त्रियोंसे मिला, फिर चाण्डालगढ़ मे पहुँचकर दुर्गाखोह के मन्दिर मे दसदिन गुजारे, और चावलखाना छोडदिया पर यहाँ मुझको भग पीने की बाँण [आदत] पड़गईथी, चांडालगढ के बाहर एक शिवजी का मन्दिर था, एक दिन मैं उस मन्दिर में जा रहा तो एक पिछले समय का बिछडा मनुष्य मुझको मिला धुरंतु मे भग के नशे में अचेत होरहा था, शीघ्र सो गया, तब स्वप्न मे क्या देखता हूं कि महादेव और पार्वतीजी आपस में वार्ता कर रहे हैं । पार्वती जी शिव जी से कहरहीथीं दयानन्द का विवाह होजाय तो बड़ी श्रेष्ठ बात है*परन्तु शिवजीने स्वीकार नहीं किया, इस समय जो मेरी आख खुलगई तो बड़ाहर्ष प्राप्त हुआ ‡ वृष्टि लगातार होरहीथी, मन्दिर में एक वृषभकी मूर्ति खडीथी, मैंने अपने कपडे और पुस्तक उसकी पिछपर धरदिये, और बैठगया तो क्या देखताहूं कि एक मनुष्य उस वृषभके शरीर में घुस रहा है, मैंने अपना हाथ बढाकर पकडना चाहा तो वह निकल भागा, और मैं उसके स्थान मूर्ति में घुसकर सोगयाप्रात काल एक स्त्रीने आनकर वृषभकी पूजा करी और मुझको देवता समझके गुड और दही दिया और कहा महाराज भोजनकरलो, मैंने उसका कहनामान भोजन करलिया जिससे भगका नशा उतर गया, और मैं आगे को चलपड़ा, परन्तु मैंने कभी किसीसे मार्ग नही पूछा, मैं नर्मदा नदीके निकाश की ओर संघन वनों को प्रवगाहन करता हुआ एक ऐसे स्थान मे पहुँचा जहाँ अनेक वनचर दुष्ट जीव रहते थे, एक कालेरीछ्छ (भालू) से मेरा सामना हुआ, परन्तु वह मेरे सोटेसे डरकर भागगया, मुझको नर्मदा नदीके निकाशके देखनेकी बड़ी उत्कण्ठा लगरहीथी, इसलिये निर्भय हुआ मैं आगे ही को बढाचलागया, कुछ मार्ग मुझको वृक्षो की सघनताके कारण सर्पके समान पेटके बल चलकर काटना पड़ा था, बस इसी प्रकार के अनेक कष्ट सहन करता हुआ चला २ मैं एक ग्राम के निकट पहुँचा, यहां के सरदारने मुझे दुग्धपिलाया, परन्तु उसकाभी

* पार्वती जी का कहना महादेवजी स्वीकार करलेते तो स्वामीजी बड़े प्रसन्न होते, ‡ ऐसा क्यों नहो जिस शिवजी को बालकपन में स्त्री बनकर नृत्य दिखलाया उसने ब्याह की नाहीं करदी, यदि शिवजी इस समय विवाह की नाहीं नकरते तो सत्यार्थप्रकाश में स्वामी जी एक स्त्री को ११ पति की आज्ञा न देते,

के साथ गया मातापिताका दिया पिछलाशिवभजन* नाम छोड दयानन्द सरस्वती नया नाम पाया, यह पूर्णानन्द सरस्वती कोयी पुरुष था, जब स्वामी दयानन्द सरस्वती की गुरु से नहीं बनी तो फिर वहां से इनके देशाटनका आरम्भ हुआ, और देश देश नगर ग्राम घूमते यह पूर्वको चले यह समय ठीक २ इनकी २९ वर्षकी अवस्था का है उस समय सम्वत् १९१० था, जब यह पूर्णानन्द के पास से चले किसी भी धर्म पर विश्वास नहीं रखते थे, किंतु इनके चित्त की चचलता दिना दिन नये २ विश्वासो म डाल भ्रम उपजा रही थी, यद्यपि इनको सस्कृत विद्या का अच्छा बोध होगया था, परन्तु इस समय इनका चित जो किसी धर्म का अनुरागी नहीं था, इस लिये यह चारो वेदो को भी भ्रम दृष्टि से ही देखते थे। इनके इस चित्त की चचलताने घरघर की भिक्षा से गुजरान करा, इनका सम्वत् १९११ के कुम्भ के मेले ने हरिद्वार पर पहुचाया जहा देश देशान्तर के आये हुये साधु सत और गृहस्थी लोग कई लक्ष्य एकत्रित थे। स्वामी जी ने गुप्त रूप से भेद पाया कि इस मेले में कुछ मनुष्य ऐसे भी आए हैं जो मेरे पिछले कार्य्य से भेटू है, बस तत्काल भयमान जङ्गलका मार्ग लिया और हृषीकेश, बद्रिकाश्रम, केदारघाट आदि अनेक विकट और भयानक मार्गोंको देखते विचरते राजधानी टिहरी में आये और यहा अच्छे २ कर्मेष्टी विद्वानो की अधिकता देख प्रसन्नता सहित कुछ दिन रहकर उनसे मन बढाया, परन्तु जब अनेक पण्डितो से अधिक प्रीति होगई तो यह भी स्पष्टरूप से सिद्ध हो गया कि यह सब वाममार्गीहैं, जो माता, भगिनी, पुत्री प्रमुखो से विषय सेवने मासखाने मदिरापीने आदि नीचकार्य्यों हीमे धर्म्म समझते हैं। जब स्वामीजीको वाममार्गियोंकी पोलखुली तबतो इनसे अत्यन्त घृणाहुई, तत्पश्चात् स्वामी जीने उत्तराखड की विषमभूमि का अवगाहनकर जोशीमठपहुच कुछ दिन के लिये आसनजमाया इस परि भ्रमण के समय यह वैरागी, योगी दण्डी, सन्यासी, ब्रह्मचारी, आदि अनेक महात्माओ से मिले, और उनके सग अपने सस्कृत विद्या सीखने के उमग मे और उद्यमको पूराकरने में रहे परन्तु किसी धर्मसे इनको शान्ति नहीं मिली जिस वद में यह परमेश्वरके व्यतिरिक्त दूसरे की पूजा करनेकी आज्ञानहीं बतलाते

* गुजरात देश में पिता के नाम को मिलाकर बोला जाता है असल नाम शिव था और पिता का नाम भजन था दादा का नाम हरि था इस लिये भजनहरि का पुत्र शिवभजन पुकारा गया और पिताही का नाम मूल शकर है।

प्यारे पाठक गण सवाल करने की बात है यह गप्प नहीं तो और क्या है ? फिर देखो महादेव पार्वती जी का वार्तालाप भी स्वामी जी ही ने सुना, और उनका आने हुए स्वामी जी ने ही देखा, और जो मनुष्य वहां थे सब सोये थे अथवा अन्धे थे। मालूम होता है कि जब महादेव और पार्वती जी सगुणरूप सवार में विद्यमान थे स्वामी जी ने अवश्य देखे होंगे जो शीघ्रता से पहचान लिये नहीं तो स्वप्ने में देखी वस्तु बिना पूर्व ज्ञान के पहचानी नहीं जा सकती। और जो यह मान लिया जाय कि स्वामी जी ने महादेव पार्वती जी को उनकी मूर्ति के सहारे पर सदृश होने से पहचाना था तो उसमें मूर्ति पूजा सिद्ध हो गई फिर स्वामी जी उसका खंडन करते लज्जित नहीं होते यह प्रत्यक्ष प्रमाण है। और यह भी असम्भव है कि बड़े भयानक और सघन वनों में जहां पेट के बल भी चलना पड़ा आपको एक चूहा का बच्चा भी न मिला, किन्तु बस्ती के निकट एक भालू (रीछ) ने घेर लिया। हां ! ऐसी २ झूठी गप्प लिखकर सत्यवक्ता अथवा "सत्यार्थप्रकाश" कर्ता बनना स्वामी जी को ही आता था। जो स्त्री पूजा का सामान लेकर आई उसको आप भूखे मरते खा गये जो महादरिद्र गरीब लोगों का भाग है और वह भी केवल गुड़ और दही था, कोई उत्तम भोजन नहीं था परन्तु जिस मनुष्य ने दुग्ध पिलाया उसका भोजन इस लिये नहीं खाया कि वह मूर्तिपूजक था, कितना आश्चर्य की बात है। अब हम स्वामी जी की स्वहस्त लिखित व्यर्थ बातों को छोड़के जो कुछ यथार्थ है वही लिखेंगे आगे चलकर इस पुस्तक में हमारी युक्ति प्रमाण अन्य ग्रन्थ लेखादिक का संग्रह यही होगा विशेष और कुछ न होगा।

(ख) जब पिछली बार भी शिवभजन छल कपट ही से भागा तो माता पिता ने भी संतोषपूर्वक कुछ पीछा नहीं किया, इधर यह महात्मा जी दूधत छुपते साधुओं के संग में नाना प्रकार के कष्ट सहन करते अनेक स्थानों में घूमे। जहां किसी प्रकार का सहारा मिला उसी सहारे पर स्थिति के दिन काटे। जिसको विद्वान देखा उसी की सेवा चाकरी कर विद्या का लाभ उठाया, जहां किसी महात्मा का पता लगा उसी की दृढ़मुख्य समझी, निदान इस देशाटन के समय ही में एक पूर्णानन्द सरस्वती (जिसका पूर्वाश्रम नाम आनन्दगिरी भी है) नाम सन्यासी मिला कुछ दिन उसके पास रहकर त्रिपाठी तब "सरस्वती" इतना पुछल्ला अपने नाम

के साथलगा मातापिताका दिया पिछलाशिवभजन* नाम छोड दयानन्द सरस्वती नया नाम पाया, यह पूर्णानन्द सरस्वती कोवी पुरुष था, जब स्वामी दयानन्द सरस्वती को गुरु से नहीं बनी तो फिर वहाँ से इनके देशाटनका आरम्भ हुआ, और देश देश नगर ग्राम घूमते यह पूर्वको चले यह समय ठीक २ इनकी २९ वर्षकी अवस्था का है उस समय सम्वत १९१० था, जब यह पूर्णानन्द के नाम से चले किसी भी धर्म पर विश्वास नहीं रखते थे, किंतु इनके चित्त का चचलता दिनों दिन नये २ विश्वासों में डाल भ्रम उपजा रही थी, यद्यपि इनको संस्कृत विद्या का अच्छा बोध होगया था, परन्तु इस समय इनका चित जो किसी धर्म का अनुरागी नहीं था, इस लिये यह चारो वेदों को भी भ्रम दृष्टि से ही देखते थे। इनका इस चित्त की चचलताने घर घर की भिक्षा से गुजरान करा, इनको सम्वत् १९११ के कुम्भ के मेले पर हरिद्वार पर पहुचाया जहा देश देशान्तर के आये हुये साधु मत और गृहस्थी लोग कई लक्ष्य एकत्रित थे। स्वामी जी ने गुप्त रूप से भेद पाया कि इस मेले में कुछ मनुष्य ऐसे भी आए हैं जो मेरे पिछले कार्य्य से भेंट है, बस तत्काल भयमान जङ्गलका मार्ग लिया और हृषीकेश, बद्रिकाश्रम, केदारघाट आदि अनेक विकट और भयानक मार्गोंको लंघते विचरते राजधानी टिहरी में आये और यहा अच्छे २ कर्मेष्टी विद्वानो की अधिकता देख प्रसन्नता सहित कुछ दिन रहकर उनसे मेल बढाया, परन्तु जब अनेक पण्डितों से अधिक प्रीति होगई तो यह भी स्पष्टरूप से सिद्ध हो गया कि यह सब वाममार्गी हैं, जो माता, भगिनी, पुत्री प्रमुखों से विषय सेवने मासखाने मदिरापीने आदि नीचकार्य्यों हीमे धर्म्म समझते हैं। जब स्वामीजीको वाममार्गियोंकी पोलखुली तबतो इनसे अत्यन्त घृणाहुई, तत्पश्चात् स्वामी जीने उत्तराखड की विषमभूमि का अवगाहनकर जोशीमठपहुंच कुछ दिन के लिये आसनजमाया इस परि भ्रमण के समय यह वैरागी, योगी दण्डी, सन्यासी, ब्रह्मचारी, आदि अनेक महात्माओं से मिले, और उनके सग अपन संस्कृत विद्या सीखने के उमग म और उद्यमको पूराकरने में रहे परन्तु किसी धर्मसे इनको शांति नहीं मिली जिस वेद में यह परमेश्वरके व्यतिरिक्त दूसरे की पूजा करनेकी आज्ञानहीं बतलाते

* गुजरात देश मे पिता के नाम को मिलाकर बोला जाता है असल नाम शिव था और पिता का नाम भजन था दादा का नाम हरि था इस लिये भजनहरि का पुत्र शिवभजन पुकारा गया और शिवही का नाम मूल शंकर है।

उस वेदको यह उससमय पढतो चुकेथे, परन्तु फिर भी उसके लेखसे अविश्वासी होकर कभी शैवी, कभीवैष्णव कभी वेदान्ती, कभीकुछ कभीकुछ गुप्तभावसे रहतेरहे, इससे यहभी सिद्धहोताहै कि जब मतमतान्तरके वेग भाल और व्यर्थ झगडेमें पडकर इनको कल्याणकारी मार्ग नहीं मिला और संस्कृत विद्याने इनकीबुद्धिमें अपना चमत्कार फैलाया तो यह विशेष विद्याप्राप्तिके अभिलाषीहुये पुन देशाटनमें हो प्रवर्ते, और सम्वत १९१६ व १९१७में जब कुछ दुर्भिक्ष सम्भव हुआ यह मथुराजीमें आये और जोशीबाबा के धर्मक्षेत्रमें डेराजमाया, और इसीक्षेत्र मे रसोई खाते और अपने आपको गुजराती ब्राह्मण प्रसिद्ध करते थे, यहा स्वामी जो ने बृजानन्द नामी अन्वेसाधु से (जिसने इनको पुत्र बना लिया था) पिछला पढा लौटा कर बहुत समय तक और भी पढा, क्योंकि यह बृजानन्द जी अच्छे विद्वान् पुरुष थे । जब दुर्भिक्ष काल हटा और साधारण समय हुआ तब पुन कुंभके मेले का आगमन हुआ यह मथुरा जी* से चलकर आगरे मे आये बाबू सुन्दरलाल डाकनिभाग के मकान पर कुछ दिन आराम किया, क्योंकि उक्त बाबू जी को योगाभ्यासका अत्यन्त प्रेम था, और स्वामीजी को वह योगाभ्यासी समझे हुये थे । फिर स्वामी जी, भरतपुर, करौली, अलवर, जयपुर आदिक रजवाडोंमें घूमते फिरते रहे, परन्तु इस देशाटनमें कुछ विशेष लाभ नहीं हुआ, हा यह लाभ तो अवश्यहुआ कि जिस भयसे यह अबतक गुमरहे उस का अब नाम मात्र ही खटका रह गया था, और यही इनको निश्चय भी हो गया था, सम्वत् १९२३ के चैत्र कृष्णपक्ष में एक संन्यासियों की मगत रजवाडे से आनकर फर्रुखनगर के पास एक बाग में ठहरी । इनमें स्वामी दयानन्द सरस्वती भी थे, नगर में घूमते विद्वानों को ढूढते स्वामी दयानन्द ‡ जैन ढूढियापंथी के मकान पर आये, वादानुवाद करके चले गए, स्वामी दयाचन्द ढूंढिये की जितनी प्रसिद्धता थी उतनी विद्या नहीं थी, इस लिए स्वामी दयानन्द सरस्वती को इनसे

* मथुरा जी में रह कर स्वामी जी वल्लभकुल के गोस्वामियों को देखते थे तो उन की विचित्र लीला पर मन ही मन में अनेक कुतर्क विचारे परतु द्रव्य की सहायता बिना कुछ न हुआ ।

। यह सब सन्यासी हरिद्वार को जाते थे ।

‡ फर्रुखनगर के ढूढिये जैनियों में स्वामी दयाचन्द नामी और प्रतिष्ठित पुरुष थे जो मार्गशीर्ष सम्वत १९२९ में मर गए ।

मिलकर विशेष आनन्द नहीं हुआ, और अगले दिन सब सन्यासीगण देहली को चले गए, ॐ और सम्वत् १९२४ के हरिद्वारकुम्भ के मेले में जामिले, कर्म्मयोगसे इस मेले में विशूचिकारोग ऐसा प्रचण्ड हुआ कि असख्य मनुष्य, स्त्री, बाल, वृद्ध, मृत्यु को पागए, उस समय उक्त स्वामी जी भी शीघ्रतापूर्वक जान बचा कर उत्तराखड को चले गए, तथा तन पर जो वस्त्रादिक थे, वे त्यागकर केवल कोपीनधारी विचरने लगे, और पहाडो में रह कर कुछ समय व्यतीत किया, परतु फिर मन में विचार आया कि एक स्थान पर रहना उचित नहीं, अभी तो बहुत कुछ करना है, जो विद्या पढी है उससे भी तो कुछ लाभ उठाऊ, यह विचार अलीगढ, अनूपशहर होते हुए कानपुर पहुँचे। वहा के पण्डित लोगों में लक्ष्मण शास्त्री और हलधर ओझा से शास्त्रार्थ हुआ जिसके मध्यस्थ 'डबल्यूथेअर्स' असिस्टेट कलक्टर हुए थे। सो यद्यपि कानपुर के पण्डित लोगो को स्वामी जी के कहने पर सतोष और विश्वास तो न हुआ, लेकिन मध्यस्थ महाशय ने अपनी निम्न लिखित अग्रेजी चिट्ठी मे स्पष्ट रूप से स्वामी दयानद सरस्वती की जीत दिखलाई है *

TRUE COPY

GENTLEMEN CAWNPORE,

At the time in question I decided in favour of Dayanand Saraswati, Fakir, and I believed his arguments in accordance with the Vedas I think here on the day If you wish it I will give you my reasons for my decision in a few days,

Yours Obediently,

(Sd) W Thare.

ॐ यहा दयानद सरस्वती सन्यासी बने हुए थे परतु जब हमने इनको सन १८७७ ई० में दिल्लीदरबार के अवसर पर देखा तो पूरे अमीर बने हुए थे।

* अनूपशहर में एक वैरागी ने स्वामी जी को गाली दी तो इनके शिष्यों ने इनकी आज्ञा बिना उसे अदालत फौजदारी से कैद करा दिया था जो अपीलमें बरी हुआ

अंगेजी चिट्ठी का अनुवाद (तरजुमा) ।

मैंने इस समय दयानंद सरस्वती फकीर की जीत का निश्चय किया, मेरे यकीन मे उसका सब कहना वेदानुकूल है, इस लिए मैं कहता हूँ कि अवश्य उसकी जीत हुई, यदि किसी को मेरे किए निर्णय को प्रमाण अपेक्षित हो तो मैं थोडे दिनों में अपनी सब वे दलीलें लिख दूंगा जिनसे मैंने स्वामीजी की जीत प्रसिद्ध की है ।

स्थान कानपुर खास । ता० १७-८-१८६६ ई० ।

द० आपका सेवक—"उवल्यू थेमर्स," असिस्टेंट कलक्टर कानपुर ।

जब स्वामी जी को असिस्टेंट कलक्टर कानपुर ने सराहा तो आपने मन में आप बडे खुश हुये अत्यन्त हर्षमाना और तब तो आप अष्टादश पुराणोंको उच्चस्वर से मिथ्या और कल्पित स्त्रीयों पण्डितों के बनाये कहने लगे, और केवल इक्कीस २१ शास्त्रों ही को ईश्वरकारचा मानने लगे । जिन २१ शास्त्रों को उन्होंने सत्य और ईश्वरका रचा माना उनका संस्कृत विज्ञापन निज अपनी लेखनी से लिखकर स्वामी जी ने कानपुर के "शोलेतर छापे खाने में छपवाया था, सो ज्यों का त्यों नीचे लिखा जाता है *

श्रीरस्तु ॥ ऋग्वेदः १ यजुर्वेदः २ सामवेदः ३ अथर्ववेदः ४ एतेषुः चतुषु वेदेषुः कर्म्मोपासना ज्ञानकाण्डा वानिश्चयोमि ॥ तत्र सन्ध्या वन्दनादिरश्वमेधान्तः कर्म्म काण्डो वेदितव्यः यमादिः समाध्यन्त उपासना काण्डश्च बोधव्यः । निष्कर्म्मादिः परब्रह्म साक्षात्कारान्तो ज्ञान काण्डो ज्ञातव्यः ॥ आयुर्वेदः ५ तत्रचिकित्सा विद्यास्ति ॥ तत्र चर्कसुश्रुतौद्वौ ग्रन्थौ सत्यौ विज्ञातव्यौ ॥ धनुर्वेदः ६ तत्र शस्त्रास्त्र विद्यास्ति ॥ गंधर्ववेदः ७ तत्र गान विद्यास्ति ॥ अथर्ववेदः ८ तत्र शिल्प विद्यास्ति ॥ एतेचत्वारोवेदानामुपवेदा यथा

१ देखो दयानंद दिग्विजय भाग दूसरा पृष्ठ १४० ।

* एक पोष्टकार्ड हमारे पास डंपतर देवधर्म विधान आफिस लाहौर से आया जिसमें लिखाहै कि उक्त संस्कृत नोटिस सन् १८७० ई०का छपाहुआ मालूम पडता है क्योंकि उन्हो दिनो में हमको मिला था,

संख्यंवेदितव्य. ॥ शिक्षावेदस्था ६ तत्र वर्णोच्चारण विधिरस्ति ॥ कल्पः १० तत्रवेद मंत्राणामनुष्टान विधिरस्ति ॥ व्याकरणम् ११ तत्र शब्दार्थ सम्बन्धानां निश्चयोस्ति तत्र द्वौग्रन्थावष्टाध्यायी व्याकरण महाभाष्याख्यौ सत्यौवेदितव्यौ नैरुक्तम् १२ तत्रवेदमन्त्राणां निरुक्त यः संति ॥ छन्दः १३ तत्र गायत्र्यादिछन्दसां लक्षणानिसंति ज्यौतिषम् १४ तत्रभूतभविष्यद्वर्तमानानां ज्ञानमस्ति ॥ तत्रैकाभृगुसंहिता सत्यावेदितव्या ॥ एतानि षटवेदाङ्गानि वेदितव्यानि ॥ इमाश्चतुर्दशविद्याश्च ॥ ईश केन कठ प्रश्न मुण्ड माण्डुक्य तैतय्यैतरी छान्दोग्य बृहदारण्यक श्वेतास्वतकैवल्योपनिषदो द्वादश १५ अत्र ब्रह्मविद्यैवास्ति ॥ शारीरकसूत्राणि १६ तत्रोपनिषन्मन्त्राणां व्याख्यानमस्ति कात्यायनादीनिसूत्राणि १७ तत्र निषेकादिस्मसानान्तानां संस्काराणांव्याख्यानमस्ति ॥ योगभाष्यम् १८ तत्रोपासनाया ज्ञानस्यच साधनानिसंति ॥ वाको वाक्य मेको ग्रन्थ १६ तत्रवेदानुकूला तर्कविद्यास्ति ॥ मनुस्मृतिः २० तत्रवर्णाश्रम धर्माणांव्याख्यान मस्ति ॥ वर्णसंकर धर्माणाञ्च महाभारतम् २१ तत्र शिष्टानां जनानां लक्षणानिसंति ॥ दुष्टानांजनानाञ्चएतन्येकविंशति. शास्त्राणि सत्यानिवेदितव्यानि ॥ एतेष्वेकविंशतौशास्त्रेष्वपिव्याकर्ण वेद शिष्टाचार विरुद्धम् यद्वचनं तदप्यशत् तेभ्य. एकविंशतिशास्त्रेभ्योसे भिन्नाग्रन्थाः संति ते सर्वे गप्पाष्टकाख्यावेदितव्या. गप् मिथ्या परिभाषणे ॥ तस्मात् पःप्रत्यः गपयन्नेयतद्रूपम् ॥ अष्टौगप्यानियत्रास्युर्गप्पाष्टकं तद्विदुर्बुधाः अष्टौ सत्यानि यत्रैवतत्सत्याष्टकमुच्यते कानिपष्टौगप्पानीत्यत्राह मनुष्य कृता. सर्वे ब्रह्म

वैवर्त पुराणादियेग्रन्थाः प्रथमं गप्पम् १ पाशाणादिं पूजनं देववुद्ध्या द्वितीयं गप्पम् २ शैव शाक्त वैष्णव गणपत्यादय. संप्रदायो स्तृतीयं गप्पम् ३ तत्र ग्रन्थोक्तो वाममार्गश्चतुर्थं गप्पम् ४ भंगादि नशा करणं पञ्चमं गप्पम् ५ परस्त्री गमनं षष्टं गप्पम् ६ चौरीति सप्तमं गप्पम् ७ कपट छलाभिमानास्टतभाषणमष्टमं गप्पम् ८ एतान्यष्टौ गप्पानित्यक्तव्यानि ॥ कान्यष्टौ सत्यानीत्यत्राह । ऋग्वेदादीन्येक द्विंशति शास्त्राणि परमेश्वर रचितानि प्रथमं सत्यम् १ ब्रह्मचर्य्याश्रमेण गुरुसेवा स्वधर्म्मानुष्टान पूर्वक वेदानां पठनं द्वितीयं सत्यम् २ वेदोक्त वर्णाश्रम स्वधर्म्म संध्या वन्दनाग्निहोत्रानुष्टानं तृतीयं सत्यय् ३ यथोक्तदाराधिगमनं पंचमहायज्ञानुष्टान ऋतुकाल स्वदारोप गमनम् श्रौतस्मार्ताचाराद्यनुष्टानं चतुर्थं सत्यम् ४ शमदमतपश्चरण यमादि समाध्यन्तोपासना सत्संग पूर्वक वानप्रस्थाश्रमानुष्टानं पंचमं सत्यम् ५ विचार विवेक वैराग्य परा विद्याभ्यास संन्यास ग्रहण पूर्वकं सर्व कर्म फल त्यागाद्यनुष्टानंषष्टं सत्यम् ॥६॥ज्ञान विज्ञानाभ्यासर्वानर्थ जन्म, मरण हर्ष, शोक, काम, क्रोध, लोभ, मोह, संरादीदत्याागानुष्टानं सप्तमं सत्यम् ७ अविद्यास्मिता रागद्वेषभिनिवेश तमो रजः सत्व सर्व क्लेश निवृतिः पंचमहाभूतातीत मोक्ष स्वरूप स्वराज्य प्राप्तिः अष्टमं सत्यम् ८ एतान्यष्टोसत्यानि गृहीतव्यानि ॥ इति ॥

{ दयानन्दसरस्वत्याख्येनेदमपि रचितमृतदे- } { तत्तज्ज्ञैर्विदितव्यम् "शोलेतूर" मेछपा * }

* इस विज्ञापन के सम्बन्ध में जो अशुद्धियां हो गई हैं, इस नहीं कह सकते कि

(इसका भावार्थ) ऋग्वेद १ यजुर्वेद २ सामवेद ३ अथर्ववेद ४ इन चारों में कर्म उपासना और ज्ञान काण्ड का निश्चय है सन्ध्या उपासनासे लेकर के अश्वमेध यज्ञतक कर्मकाण्ड समझना चाहिये, और यमनियम से लेकर समाधितक उपासनाकाण्ड जानना चाहिये, निष्कामकर्म से लेकर मुक्ति के साधनतक ज्ञानकाण्ड जानना चाहिये, पान्चवें आयुर्वेद यह चिकित्सा विद्या है, इस विद्यामें चरक सुश्रुत दो सच्चे ग्रन्थ मानने चाहियें, छटा धनुर्वेद इसमें शस्त्र और अस्त्रविद्या है सातवां गन्धर्ववेद इसमें गानेकी विद्या है आठवां, अथर्ववेद इसमें शिल्प (कारीगरी) विद्याहै, यह चारों उपवेद समझने चाहियें, और नव (९) शिक्षाग्रन्थहैं जिनमें अक्षरों के पढ़ने की रीति वर्णितहै, दसवें कल्पशास्त्र इसमें वेद, मन्त्रों को किस किस कार्य में पढ़ना इसकी विधि लिखी है ग्यारहवें व्याकरण इस विद्या से शब्दों के अर्थों का सम्बन्ध निश्चयहोता है, इसमें दो ग्रन्थ हैं, अष्टाध्यायी, और महाभाष्य और यही सत्य हैं, बारहवें निरुक्त, इसमें वेदमन्त्रों की निरुक्तिया अर्थात वेद, मन्त्रोंके शब्दोंकी विवेचना है, तेरहवें, छन्द, इसमें गायत्र्यादि छन्दों का सविस्तार वर्णन है चौदहवें, ज्योतिष, इसमें भूत, भविष्य, वर्तमानतीनों काल का ज्ञान है, इसमें एक पुस्तक भृगुसंहिता सत्य है, यह छ वेदाङ्ग समझने चाहियें, और चौदह विद्या भी इन्हीं को कहते हैं, ईश १ केन २ कठ ३ प्रश्न ४ मुण्ड ५ माण्डूक्य ६ तैत्तिर्य ७ ऐतर्य ८ छान्दोग्य ९ बृहदारण्येक १० श्वेता ११ सर्व १२ केवल बारह उपनिषद् हैं, इनमें ब्रह्मविद्या ही है, सोलहवें शारीरिक सूत्राणि, इनमें उपनिषदों के मन्त्रों के भेदाभेद लिखे हुये है, सतरहवें कात्यायनादिसूत्र हैं, इसमें गर्भाधान से लेकर मरने तक के जो कुछ आचार व्यवहार हैं सो लिखे हैं, अट्ठारहवें, योगाभ्यास, इसमें उपासना और ज्ञान के साधन हैं, उन्नीसवें, वाक्यौक ग्रन्थ, इसमें वेदानुसार तर्क विद्या है, और तर्क करने की रीति है, बीसवें, मनुस्मृति, इसमें वर्णाश्रम धर्म का वर्णन और वर्णसंकरों का व्याख्यान है, इक्कीसवें, महाभारत इसमें भले बुरे मनुष्यों के लक्षणों का वर्णन है, यह इक्कीस शास्त्र + सत्य हैं, इन ग्रन्थों में भी व्याकरण वेद शिष्टाचारसे जो विरुद्ध है सोभी मिथ्या है, और इसके उपरांत

स्वामी जी की म्यात् यह छपा में हो गई हों ?

+ यहा स्वामी जी ने स्पष्टरूप से २१ शास्त्रों को परमेश्वर के रचे माना है, परन्तु आर्यसमाज स्थापित करते समय सत्त्व ६ (१७) को छोड केवल चार वेद और उनमें से भी केवल मन्त्र भाग ही को सत्य कहने लगे वाह ! क्या कहना है ?

और सब गप्पाष्टक है, गप्पृसी धातु वाक्यार्थ है, उससे, ए, प्रत्य होता है, तो गप्प पद आता है, अष्ट गप्प जिसमें हों उसको गप्पाष्टक कहते हैं, अष्टसत्य जिसमें हों उसको सत्याष्टक कहते हैं, अब आठों गप्पोंका वर्णन है, मनुष्यों के रचित ब्रह्म वैवर्त पुराणादि ग्रन्थ पहिलीगप्प १ देवता समझकर पाषाणादि प्रतिमाँ पूजना दूसरीगप्प २ शिव शक्ति विष्णु गणपत्यादि सम्प्रदाय तृतीयगप्प ३ इत्यन्थोंमें लिखा हुआ वाममार्ग चौथीगप्प ४ भगआदि नशा करना पांचवीं गप्प ५, परस्त्री गमन ६ छठी गप्प ६ चोरी सातवीं गप्प७ कपट छल अभिमान इत्यादि ॥ आठवीं गप्प ८ आठ सत्य यह हैं, पूर्वोक्त ऋग्वेदादि ईश्वोक्तशास्त्र परमेश्वर के रचेहुये हैं यह पहिला सत्यहै, १ ब्रह्मचर्य्याश्रम से गुरुसेवा और अपने धर्मपर चलकर वेदोंका पढना दूसरा सत्य है, २ वेदोक्त वर्णाश्रम धर्म सन्ध्योपासना अग्निहोत्रादि तीसरासत्य है, ३ विवाहिता स्त्री के पास ऋतु के समय गमन करना और पांच महायज्ञों का अनुष्ठान करना श्रुति स्मृति मे कहीहुई बातोंको करना यह चौथा सत्यहै, ४ शम, दम, तप, यम, और समाधिसक उपासना सत्सङ्ग वाणप्रस्थाश्रम अनुष्ठान यह पांचवां सत्यहै, ५ विवेक वैराग्य षडादिग्रन्थों को पढना और सन्यास ग्रहण करके सम्पूर्ण कर्मों के फल को छोडदेना यह छठासत्यहै, ६ ज्ञान और विज्ञानसे सारी बुराईजन्म, मरण, हर्ष, शोक, काम, क्रोध, लोभ मोह, सब दोषों को छोडदेना सातवां सत्य है, ७ अविद्या, अभिमान, रागद्वेष, अभिनवेश, तम, रज, सत, II आदि बाधाओं से बचना और पांच महाभूतों से परे मोक्षस्वरूप जो अपनाराज है उसको प्राप्तिकरना यह आठवांसत्यहै, ८ यह आठसत्य ग्रहण करने चाहियें ॥

(दयानन्द सरस्वतीने यह पक्षपातही सभ्यजनों के जानने के लायक)

यस स्वामीदयानन्द सरस्वती पूर्वोक्त २१ शास्त्रों केही सहारेपर देशदेशान्तर के पण्डितो से वादानुवाद करते और झगड़ते फिरे, परन्तु इनके सिद्धान्त और कुछ फलप्राप्त नहुआकि उनका नाम समाचारपत्रोंद्वारा भारतमें प्रसिद्ध होनेलगा, तथा अनेक सभाओं में इनकी चर्चाहोनेलगी । अबतो इनको यह खयाल पैदा हुआकि जबतक कोई ऐसा कार्य्यनहो जिसमें पावटेकनेका सहारा नहो मेरी गुप्त आशा

---

* यहांतो आपने परलोकका निषेधकियापरन्तु 'सत्यार्थप्रकाश' मे नियोग की भाज्ञादेदई ? क्या स्वामीदयानन्द सरस्वतीने चोरी छल कपट झूठ आदिक त्यागदियेथे ?

II यहा आपने सतोगुणभी कहदिया दा ! क्याबच्छोबुद्धि है जब सतोगुणही त्याग दिया फिर रहाक्या बिनागुणभी कोई पदार्थ होसक्ता है ?

मनोकामना फलितहोनी कठिन है, बस इसी ध्यानमें निमग्न होकर आपने सेठ,साहूकारों की सहायतासे पाठशालाओं के प्रचारका बीड़ा उठाकर प्रथम पटशाला संवत् १९२६ के वैशाखमें फर्रुखाबाद में स्थापितकरी, और कुछ दिन वहां ठहरे भी थे ॥

और उनको यह भी खयाल थी कि भारतवर्ष में काशीकी विद्वत्ता अधिक प्रसिद्ध है, सो जबतक मैं काशीके पंडितों से विजयपत्र लेकरलू मेरी प्रतिष्ठा नहीं बढ़ेगी बस इसी विचारमें लीन होकर काश पहुंचे, और कार्तिक शुदि १२ भौमवारसंवत् १९२६ को स्वामीविशुद्धानन्द या बालशास्त्री आदियनेक पंडितोंसे वादानुवाद किया परन्तु प्रकट में विजय किसी पक्षकी भी नहीं हुई, दोनोदल अपनी २ विजय मानते रहे, इस विषयमें भारतेन्दु बाबूहरिश्चन्द्रजी ने अपनी बनाई "दूषणमालिका" नाम पुस्तककी भूमिका में प्रथमही यह लिखा है ॥

अथ दयानन्द नामी क्या जाने कौनजाति वा किस आश्रमके कोई नामपुरुष सब देशोंमें भ्रमणकरते हुए, सनातन धर्मरूपी सूर्य्यको राहुकी भांति ग्रास करते हुए, मूर्खों और आलस्यमें भरे हुए जीवों के हृदय वस्त्रको अपने रंगमें रंगते हुए, इसी बहाने से अपना नाम लोगों में विदितकरते हुए, और अपने वाक्य बानके आडम्बर से साधुलोगों का हृदय दहन करते हुए काशी में आये इत्यादि । इत्यादि० ॥ सन् १८७० ई० काशी] (हरिश्चन्द्र)

तथा मित्रविलास पत्र संख्या १७ खण्ड १२ तारीख १२ नवम्बर सन् १८८८ ई० पृष्ठ ५ पंक्ति ७२ में यह लिखा है कि"

पिशाचर में रहने वाले मुरलीधरने काशी नरेश की सभा में अस्सी संगमके ऊपर बनारस रामनगर में पौषके महीने में सम्वत् १९२६ में दयानन्द को परास्त किया था, और रात्रि के नौ (९) बजे महादुर्दशा कीनीथी* ॥

इत्यादिक लेखोंसे तथा स्वामीजीके स्वत छपाये हुये शास्त्रार्थ काशीसेयही सिद्धहोता है कि प्रथमवार काशी जाने में स्वामी दयानन्द सरस्वती को कुछ भी लाभ न हुआ, और यह घूमते हुये कलकत्ते पहुंचे, वहाँ बाबू केशवचन्द्र सेन † से इनकी मुलाकात हुई, और उक्त बाबू जीने स्वामी को समझाया कि यदि आप पंडित

* इन लेखों के अतिरिक्त काशी के पण्डितोंने अपनी विजयपताका उड़ान करने के लिये स्वामी दयानन्द सरस्वती के प्रतिकूल "दयानन्दपराभूति" "गुर्जन मतमर्दन" नामक दोपुस्तक संस्कृतमें,रचकर काशीनरेश के यन्त्रालय में छपवाई थी,

† बाबू केशवचन्द्र सेन कलकत्ते के रहने वाले ब्रह्मसमाजी प्रसिद्धपुरुष थे

लोगों से यथायोग्य बर्त्ताव करके उनका अभिप्राय लेकर (व्याख्यान) केवलपर किसी मुख्य स्थान पर बैठ कर वर्णन किया करो तो उत्तम है, श्रोतागण प्रीति सहित सुनने को आवें और किसी से द्वेष भी न होय, और न ऐसा करना जो किसी को बुरा लगे।

यह उपदेश स्वामी जी को अत्यन्त प्यारी लगा, और इसी के सहारे चल पड़े, फर्रुखाबाद से लौटकर आपने विल्हौर, छलेश्वर, कासगञ्ज में भी पाठशाला स्थापित की जिसमें मुख्य विद्या व्याकरण थी, और किसी अध्यापक का ३०) रुपया मासिक और किसी का २०) रुपया नियत कर दिया था, और एक एक दो दो मास में जाकर के आप भी इनकी सार सम्भाल खत करते फिरते रहते थे।

इसी प्रकार जब अधिक समय व्यतीत हो गया तो आपने फिर विचार किया कि केवल पाठशालाओं के स्थापित करने ही से प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकती, अब कुछ नवीन ग्रन्थ भी लिखे जावें तो ठीक हो, परन्तु ग्रन्थ लिखे भी जायँ और छपने के लिये द्रव्य की सहायता न मिले तो भी ठीक नहीं, बस इसी विचार में फिर देशाटन की उमंग हुये, और सम्वत् १९२८ ही से पुस्तक "सत्यार्थप्रकाश" का प्रारम्भ कर थोड़ा २ लिखते रहते थे। सो जब उसका पूर्वार्द्ध पूरा हो गया तो कानपुर के रईस राजा—जयकृष्णदास इसके सहायक बन गये, और अपनी चिट्ठी सहित स्वामी जी को काशी भेज पुस्तक छपने का प्रारम्भ करा दिया, इसमें द्रव्य राजा जयकृष्णदास जी का लगता था, और प्रूफसीट व संशोधन का काम स्वामी जी आप करते थे, इधर इसी कार्य्य के सहारे पर काशी के विद्वानों से वादानुवाद शास्त्रार्थ भी करते रहते थे।

यहाँ इतना और लिखा जाना उचित है कि जिन २१ शास्त्रों को स्वामी दयानन्द सरस्वती ईश्वर का रचा मान कर कानपुर में उसका छपा हुआ विज्ञापन बाट चुके थे, पुस्तक "सत्यार्थप्रकाश" लिखते समय उनका भी विश्वास त्याग चुके थे, क्यों कि उन्होंने विचार किया कि व्याकरण और महाभारत और मनुस्मृति आदि ग्रन्थों को ईश्वर रचित कहने से कोई नहीं चलता, और यह सत्य भी है कि जब महाभारत और मनुस्मृति और उपनिषदादि ग्रन्थ भी ईश्वररचित नहीं, तो अन्य शेष ईश्वररचित क्योंकर हो सकते हैं, परन्तु स्वामी जी ने विचारा कि जो हम सम्पूर्ण शास्त्रों का विश्वास त्याग देंगे तो ब्रह्मसमाजियों में गणना किये जावेंगे, और फिर उन लोगों को जो शास्त्रों के वचनों पर बिना विचारे अज्ञान हठ कर अड़ा रखते हैं, हम अपनी तरफ खैंच नहीं सकेंगे, अभिप्राय उनका स्वाधीन करना

* फाल्गुन में दयानन्द सरस्वती की पाठशाला जेष्ठ सं० १९२७ में स्थापित हुई थी

कठिन हो जायगा, इस ख्याल से अब स्वामी जी ने प्रगट रूप से वेदों की
संहिताओं ही को ईश्वरविद्या वर्णन किया, और पश्चिमोत्तरीय भारतवर्ष में घूम
व्याख्यान देने लगे, सम्वत् १९२६ में स्वामी जी पुन कलकत्ते पधारे, पंडित तार
चरण गाव भाटपाड़े के रहने वाले हैं, जो हुगली के पार है, परन्तु यह महाश
काशी नरेश के निकट बनारस में रहते हैं, आजकल अपने देश में आये थे, औ
कलकत्ते में राजा ज्योतिन्द्रमोहन ठाकुर के मकान पर ठहरे थे, यद्यपि इनसे स्वा
जी का शास्त्रार्थ कार्तिक शुक्ला १२ सम्वत् १९२६ में काशी के पण्डितों सहि
होता रहा लेकिन जब स्वामी जी ने सुना कि उक्त ताराचरण जी कलकत्ते में
आये हैं, तो इस प्रसिद्ध नगर में अपना नाम प्रसिद्ध करने की अभिलाषा से उन
मकान पर जाकर शास्त्रार्थ की ठहराई, परन्तु परिणाम व्यर्थही रहा, यहांभी दोन
दल अपनी २ विजय का डंका बजाते रहे, यथार्थ में हार जीत किसी की भी नह
हुई, कलकत्ते से लौट कर स्वामी जी फिर काशी में आये और "सत्यार्थप्रकाश"
का प्रूफशीट करने लगे।

मगलदेव पराजय के पृष्ठ ५ पंक्ति २५ में लिखा है कि—

"जिस दिन स्वामी जी घर से आए थे भोजन का सहारा और शरीर पर
वस्त्र तक भी न था, खण्डन मण्डन ही के द्वारा धनी बन गए और आनन्द भोगे।"

सम्वत् १९२६ व १९३० में यह काशी के निकट ही विचरते रहे, जब कुछ
द्रव्य की सहायता मिली और उच्चकुल मनुष्यों के पास बैठने उठने का समागम
हुआ, तो स्वामी जी ने लंगोटी बाघ नगा फिरना छोड़ कर अच्छे २ वस्त्र और
बहुमूल्य जूता पहिनना स्वीकार किया, और खानपान भी शनै शनै ऐसा बदल
गया कि खूब सरमाल खाने लगे, पिछले समय संन्यासधर्म में जो कुछ कालतक
उत्तम पदार्थों से वञ्चित रहे थे उसकी भी कसर निकालने लगे, और यह
कहलावत प्रकट सिद्ध कर दिखलाई,

"अब तो आराम से गुजरती है, आक़बतकी खबर खुदा जाने।"

[شعر] ابکو آرام سے گذرتی ہے عاقبت کی خبر خدا جانے۔

राजों के समान सुख भोगने लगे, सहस्रों मनुष्यों पर हुकूमत करने लगे,
लक्ष्मी की प्राप्ति और अधिकता दिनोंदिन होने लगी, निवाड़ के पलंग पर सोने
लगे बड़े बड़े तकिये लगाये जाने लगे, सैकड़ों मूर्ख चरण छूने लगे, रसोई में घट

रख भोजन बनने लगी, हाथपांव धुलवाने को कहार खड़ा रहने लगा, क्लैरक लोग लिखाई का काम करने लगे इत्यादि ।

जब सन् १८७५ ई० मुताबिक सम्वत् १९३२ में पुस्तक "सत्यार्थप्रकाश" छप कर तैयार हो गया तो स्वामी जी बड़े खुश हुये । *

इसपुस्तकमें प्रथमही प्रथम ६ पृष्ट तो शुद्धाशुद्ध पत्र के लगाये हैं ॥

फिर पृष्ट ७ से २६ तक प्रथम समुल्लास है इसमें ईश्वर के ओंकारादि नामोंकी मनोकल्पित अर्थ मंगलाचरण आदि लेख हैं ॥

पृष्ट २७ से पृष्ट ३६ तक द्वितीय समुल्लास है इसमें बालशिक्षाविधान तथा भूतप्रेतादि निषेध जन्मपत्र सूर्य्यादि ग्रहोंकी मनोकल्प समीक्षा करी है॥

पृष्ट ३७ से पृष्ट ६२ तक तृतीय समुल्लास है इसमें अध्ययनाध्यापन विधिकी स्वकपोलकल्पित आलोचनालिखी है, ॥

पृष्ट ६४ से पृष्ट १५३तक चतुर्थ समुल्लासहै, इसमें समावर्तन, विवाह, गृहाश्रमविधि के नामसें व्यर्थ झगडा भर दिया है ॥

पृष्ट १५४ से पृष्ट१७४तक पञ्चमसमुल्लासहै, इसमें वानप्रस्थ संन्यासविधिहै ।

पृ० १७५ से पृष्ठ २२० तक षष्ठ समुल्लास है, इसमें राजधर्म का वर्णन है सो यहां तक तो स्वकपोलकल्पना नाम मात्र थोडीसी ही है, परन्तु फिर,

पृ० २२१ से पृष्ठ२५२ तक सप्तम समुल्लासहै, इसमें ईश्वरविषय व्याख्या है ।

पृ० २५३ से पृ० २६६ तक अष्टम समुल्लासहै, इसमें सृष्योत्पादादिविषयहै ।

पृ० २६७ से पृ० २९७ तक नवम समुल्लास में विद्याअविद्या बन्धमोक्षविषय है ॥

पृ० २९८ से पृ० ३०६ तक दशम समुल्लासहै, इसमें आचाराऽनाचार भक्ष्याऽभक्ष्य का वर्णन है, और यहां तक इस पुस्तक का पूर्वार्द्ध समाप्त हुआ है ।

पृ० ३०७ से पृ० ३९६ तक एकादश समुल्लास है, इसमें आरतवर्ष के अनेक मतमतान्तर तथा धर्मगुरुओं का मनोकल्पित खण्डन मण्डन किया है ।

पृ० ३९७ से पृ० ४०७ तक द्वादश समुल्लास है, इसमें जैन तथा बौद्धधर्म

---

* सत्यार्थप्रकाश की कुछ समालोचना आगे चल कर मिलेगी, और यह पुस्तक पूर्ण रूप से छप कर तो सन १८७५ ई० में तैयार हुई थी परन्तु प्रफसीटआदि फार्मों को स्वामी जी ने सन् १८७८ ई० में पूराकर लिया था ।

पर कटाक्षकर खण्डन मण्डन किया है, और इतने पर ही ग्रन्थ समाप्त किया है।

इस पुस्तक के आरम्भ का प्रथम पृष्ठ निम्नलिखित लेख युक्त है।

"अथ सत्यार्थप्रकाश" श्री स्वामी दयानन्द रचित। श्री राजा जयकृष्णदास बहादुर सी० एस० आई०, की आज्ञानुसार, मुंशी हरिशंकर लाल के अधिकार से इन्दर प्रेस मुहल्ला रामपुर में छापी गई, सन् १८७५ ई० बनारस पहिली बार १००० पुस्तक सोल की पुस्तक ३)।

फिर टाइटिलपेज के अन्दर निम्नलिखित ३ विज्ञापन लिखे हैं।

निवेदन १, यह पुस्तक श्रीस्वामीदयानन्द सरस्वती ने मेरे व्ययसे रची है, * और मेरे द्रव्यसे मुद्रित हुई है उक्त स्वामी जीने इसकारचनाधिकार मुझको दे-दियाहै, और उसकामैं अधिष्ठाताहूं, और मेरी ओरसे इसपुस्तककी रजिष्ट्री कानून २० सन १८४० ई० के अनुसार हुई है, सिवाय मेरे वा मेरी आज्ञाके इस पुस्तकके छापनेका किसीको अधिकार नहीं है, ।(द० श्रीराजाजयकृष्णदास, बहादुर, सी० एस० आई०)

निवेदन २ ; जिस पुस्तक के आदि और अंतमें मेरे हस्ताक्षर और मोहरनहीं वह चोरीकी है, और उसका क्रयविक्रय नहीं होसकता, ।

(द० श्रीराजा जयकृष्णदास, बहादुर सी, एस, आई,)

निवेदन ३ ; इसपुस्तक के पाठकों से मेरी यह विनयपूर्वक प्रार्थना है कि इस ग्रन्थ को छपवानेसे मेरा अभिप्राय किसीविशेष मत के खंडन मंडन करने का नहीं किंतु इसका मुख्यप्रयोजन यह है, कि सज्जन और विद्वानलोग इसको पक्षपातरहित होकर पढ़ें, और विचारें, और जिनविषयों में उनको दयानन्द स्वामीके सिद्धांतों से सम्मति नहो उनविषयोंपर अपनी अनुमतिप्रमाणपूर्वक लिखें, जिससे धर्मका निर्णय और सत्यासत्य की विवेचनहो, मुखसे शास्त्रार्थ करने में किसी बातका निर्णय नहीं होता, परन्तु लिखनेसे दोनोंपक्षों के सिद्धांत ज्ञातहोजाते हैं, और सत्य विषयकानिर्णय होजाताहै, इसलियेआशा हैकिसब पंडित और महात्मापुरुष इसको यथावत समालोचना करेंगे, और यह समझेंगे किमुझकोकिसीविशेषमतकीनिन्दा अभिप्रेत हो, छपानेमें शीघ्रताकेकारण इसग्रन्थ में बहुत अशुद्धता रहगई हैं आशा है पाठकगण इस अपराधको क्षमा करेंगे।

* इस पुस्तकको स्वामीजीने राजा साहब से द्रव्यलेकर बनाया और अपना सत्य उनकोदेदिया।

(क) यद्यपिस्वामीजीने यह "सत्यार्थप्रकाश" चंडेश्वरमहादेव रचकर प्रचलित कराया है, परन्तु इसमें जोकुछ लिखा है यह सच्चाओ के विरुद्ध मनोकल्पित गीतगाया और स्वकपोलकल्पित ढोल बजाया है, प्रकृति, और जीवोंकीउत्पत्ति, आवागमन का प्रयोजन, कफपित्त की निवृत्ति, मार्जनकाफल, आलस्यदूरकरना, यज्ञोपवीतको विद्या, काविन्हजानना,पठनपाठन, और सध्योपासना, अग्निहोत्र, और अतिथिसेवाका आपही विधानकरना, और फिर यहकहनाकि, येसबकर्म्म अविद्वानपुरुषों के वास्ते हैं, स्त्री जातासेमिले बहासे लेलेनेकी आज्ञादेना; सृष्टिके आदिमें अग्नि, वायु, आदित्य, और अंगिरा के हृदय में वेदोंका प्रकाशहोना, और उनसे ब्रह्माजीका पढना कहना, मुक्तिसे पुनरावृत्तिमानना, और उसको कारागार और फांसीकेसमान जानना, दशपुरुषोंतक से नियोगकरनेकी आज्ञादेना, और गर्भवती स्त्रीसे भी नरहा जाय तो किसीसे नियोगकरके उसकेलिये पुत्रोत्पत्तिकरदे, येसा असमंजसलेख तथा मासादि पदार्थों से प्रातः साय दोनों काल होम करने की आज्ञा देना, मास भक्षण की पुष्टि करना, यज्ञ में बन्ध्या गाय और बैलनरआदि पशुओंके बधकी विधिकरना, स्वर्ग नर्क लोकों का न मानना, प्रथम "तिब्बत" में आर्य्यो को उत्पत्ति कहना, परमात्मा को विजातीय भेद शून्य लिखना, प्रत्यक्षादि आठ प्रमाण मानना, इत्यादि विद्वान् पुरुषों से कुछ गुप्त नहीं है।

"सत्यार्थप्रकाश" के प्रकाशित होने से ससार को लाभ के बदले जो कुछ हानि हुई यह तो हम दूसरे भाग में लिखेंगे, परन्तु स्वामी जी को रोटी कपडा खाने का उत्तम सहारा हो गया, इस पुस्तक के लिखे जाने पीछे स्वामी जी बम्बई पधारे, और मन में यह उमग उत्पन्न हुई कि विद्यमान चारो वेदों की मनमानी टीका और भाष्य बना कर संसार मे फैलाई जाय तब ही हमारी यथार्थ प्रसिद्धता होय।

बाबू नवीनचन्द्रराय लाहौर से प्रकाशित होने वाली अपनी "ज्ञानप्रदायिनी" मासिक पत्रिका सख्या ३१ । ३२ खण्ड ४ पृष्ठ २४ में लिखते हैं कि—

स्वामी दयानन्द सरस्वती जब बम्बई गए थे हमारे साथ भी उनकी मुलाकात हुई थी। हम लोगों से उन्होंने यह इच्छा प्रकाशकी, कि, वे वेदों की नई टीका करना चाहते हैं, जिसमें वे यह सिद्ध करेंगे कि अग्नि, वायु, इन्द्र प्रभृति शब्द ईश्वर

* सत्यार्थप्रकाश छपकर तैयारहुआ जब स्वामीजीकी अवस्था इक्यावन (५१) वर्षकीथी और इसकेछपकर आनेसे पहिले अर्थात् प्रूफसोट करके स्वामीजीबम्बई चले गये थे।

वाली हैं, और वेदों में केवल ईश्वर से ही प्रार्थना की है, और हम लोगों से भी इस प्रकार के अर्थ करने में सहायता चाही। हमने उत्तर दिया कि हमें यह बात ठीक नहीं प्रतीत होती, और ऐसा सम्भव भी प्रतीत नहीं होता कि वे इस प्रकार का अर्थ सर्वत्र लगा सकेंगे। इसके दृष्टांत में हमने उनसे कहा कि यजुर्वेद में एक स्थान में धान्य से प्रार्थना है, सब कोई जानता है कि धान्य खाने की वस्तु है, इसका अर्थ वे ईश्वर क्यों कर बनावेंगे? स्वामी जी ने उत्तर दिया कि 'धान्य' शब्द धा धातु से निकला है, धा धातु का धारण और पोषण अर्थ है सर्वत्र शुद्ध विशिष्टि चावल ही प्रसिद्ध है, ईश्वर अर्थ इस शब्द का किसी कोष में नहीं, इतने शास्त्रार्थ से ही हमने जान लिया था कि स्वामी जी किस प्रकारका अर्थ वेदोंका करना चाहते हैं।

बम्बई के बहुत से भाटिये लोग जो वैष्णव थे, अपने गुरु की बदचलनी से तथा उसकी बदचलनी राजदरबार तक पहुंचने की लज्जा से अपना सनातनधर्म छोड़ने को उद्यमी थे, और कुछ अंग्रेजी विद्या के नवशिक्षित विद्यार्थी जो मर्फटी (चपल बानरी) विद्या रूप मदिरा के नशे में मदोन्मत्त हुये अपनी चलन व्यवहार को बदलना चाहते थे, स्वामी जी के चिकने चुपड़े स्वार्थ भरे व्याख्यानों को सुन कर शीघ्र इस तरफ झुके, फिर तो स्वामी जी ने भी समय को विचार शीघ्रतासहित उक्त मनुष्यों की सहायता से अपना पहिला आर्यसमाज सन १८७४ ई० मुताबिक सम्वत् १९३१ में शहर बम्बई + में स्थापित किया। नवशिक्षित मनुष्य जो बहुधा समाचारपत्रों द्वारा इनके ऊपरी चमत्कार के नित नये नाटक सुन दर्शनाभिलाषी होने लगे थे, बल्कि बहुधा नास्तिक विश्वासी तथा ब्रह्मसमाज विश्वासी (अर्थात् जो ब्रह्मसमाज को अच्छा समझ जाति बिरादरी के भय से उसमें नहीं मिल सकते थे) ऐसे अनेक मनुष्य स्वामी जी के आधीन हो गए, और ऐसे मनुष्यों के आधीन होने से स्वामी जी की मनमानी होने लगी।*

+ सत्यार्थप्रकाश को स्वामी इस समय से पहिले बना शोध प्रूफसीटकर के देआये थे परन्तु वह पूर्णरूप से छपकर सन् १८७५ ई० में प्रकाशित हुआ था।

* केवल इतना ही नहीं किंतु जब स्वामी जी ने बहुत से भाटियों और वैष्णव लोगों को अपने गुरु बल्लभकुली गोस्वामियों से उदास देखा तो उनको अपना करने के लिये और सपक्षाम छोड़ प्रथम एक "वेदविरुद्धमतखण्डन" नाम पुस्तक बनाकर प्रकाशित किया जिसका कार्तिक सं० १९२१में लिखाजाना उसके अन्तके निम्नलिखित श्लोक से सिद्ध है श्लोक शशिरामाकचन्द्रेऽब्दे कार्तिकस्या सितेदले। अमायां

स्वामी जी ने यह भी समझा कि आजकल के नवशिक्षित मनुष्य जो बहुधा देशोन्नति २ पुकारा करते हैं, जब उनसे यह भी कह दिया जायगा कि आपका विचार ठीक ठीक वेद की आज्ञानुसार है, (और ब्राह्मणों को दान देना आदि पाषाणादि प्रतिमा पूजना स्वार्थी मनुष्यों ने स्वकपोलकल्पित मनघडन्त प्रचलित कर दिया है, और यह कर्म सर्वथा वेदविरुद्ध है, ज्ञानवान् मनुष्यों को भूल कर भी इस भ्रमजाल में पडना नहीं चाहिये) तो वे मनुष्य अवश्य हमारे पक्ष का ग्रहण करेंगे। क्योंकि प्रथम तो सरकारी पाठशालाओं का उपदेश ही उनको नास्तिक बना चुका है, रहासहा जब हमारे उपदेश से उनको प्रकट रूप से रुपये की भी बचत निकल आवेगी तो हमारे कार्य्य की सिद्धि में कोई भी विलम्ब न होगा।

ऐसे विचारों की सिद्धि होने पर स्वामी जी के समाज स्थापित होने में विशेष परिश्रम और किसी प्रकार का विघ्न न हुआ, और जब स्वामी जी का प्रथम आर्यसमाज बम्बई में स्थापित हो गया तो स्वामी जी ने निम्नलिखित दश नियम बनाए थे जो आज पर्यन्त आर्यसमाजों में प्रचलित हैं, और हम उनको अपनी शंकाओं सहित नीचे लिखते हैं।

आर्यसमाजों के दश नियम और उन पर हमारी शंका।

(१) सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सब का आदि मूल ईश्वर है।

(शंका) इस नियम पर हमारी यह शंका है कि "जब सब का आदि मूल ईश्वर है" तो प्रमाणु और जीवों को नित्य मानना क्या इस नियम के प्रतिकूल है ?

(२) ईश्वर जो सच्चिदानन्दस्वरूप, निर्विकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निराकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर सर्वव्यापक, अन्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र, और सृष्टि का कर्ता है, उसकी उपासना करनी योग्य है।

(शंका) यह ज्ञान ईश्वरस्वरूप का परोक्ष है, वा अपरोक्ष ? और परोक्ष ज्ञान से संशय की निवृत्ति होती है अथवा अपरोक्ष से ? परोक्ष ज्ञान से कदाचित् स-

---

भौमशारेव ग्रन्थो ऽयम्पूर्तिमागत ॥ १ ॥ और इस पुस्तक में केवल वल्लभकुलो गोस्वामियों का ही खण्डन है।

शय की निवृत्ति नहीं होती है।

इस कारण जब तक ईश्वरस्वरूप का यथार्थ ज्ञान नहीं होगा उपासक उपासना किसकी करे? यदि ईश्वरस्वरूप का साक्षात्कार नहीं होगा तो वे नाम ईश्वर के कैसे रक्खे गए?

(३) वेद सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्य्यों का परम धर्म है।

(शंका) वेद मन्त्र भाग माना है, उसी को ईश्वरोक्त कहा, ब्राह्मणभाग ईश्वरोक्त नहीं माना इसकी यथार्थ समीक्षा हम दूसरे भाग में लिखेंगे।

(४) सत्यके ग्रहण करने और असत्य को छोड़नेमें सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।

(शंका) इसका नाम विवेक है, परन्तु जब तक सत्य और असत्य का विवेक न होवे यह नियम कब पूरा हो सकता है? कहिये ईश्वर सत्य है, या जगत् सत्य है? जो ईश्वर सत्य है और जगत् भी सत्य है तो दो सत्य नहीं हो सकते, इस कारण ईश्वर सत्य है ऐसा कहना चाहिये। जब ईश्वर सत्य है तो जगत् स्वप्न समान मानना पड़ेगा, जब स्वप्न समान हुआ तो इन पदार्थों में से कहो किसका ग्रहण करें और किसका त्याग करें? ग्रहण और त्याग दूसरे पदार्थ का होता है, जब दूसरा पदार्थ असत्य ही है तो त्याग किसका? इस नियम में भी विचार करना चाहिये, यह नियम केवल व्यवहार शुद्धि के लिये है वा परमेश्वर प्राप्ति के लिये है, यदि व्यवहार शुद्धि के लिये है तो खैर और जो परमेश्वर प्राप्ति के लिए है तो जगत् स्वप्न समान ही मानना पड़ेगा। इसके मिथ्या पदार्थों का क्या ग्रहण और क्या त्याग करना चाहिये।

(५) सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचारके करना चाहिये

(शंका) यह नियम ऊपर के नियम से मिला हुआ है केवल 'सब काम धर्मानुसार' इतना पद और विशेष है सो इसमें धर्म पर दृष्टि करनी चाहिये, अर्थात् जिसका जो धर्म है उसी के अनुकूल सत्य और असत्य को विचार करके करना चाहिये। प्रथम तो यह देखना चाहिये कि शरीर का क्या धर्म है, और आत्मा का क्या? शरीर जड़ दृष्टि दृश्य रूप है, धर्म इसका उत्पन्न होना घटना, बढ़ना, नष्ट होना प्रत्यक्ष है। आत्मा द्रष्टा है, नित्यचैतन्य जन्म मरण से रहित आनन्दस्वरूप है, क्योंकि जो सत्य है सोई नित्य है जो नित्य है सोई जन्म मरण से रहित है, जो जन्म मरण से रहित है

सोई आनन्द है। अति आश्चर्य की बात है कि आत्मा में अनात्मा अभिम
और अनात्मा में आत्म अभिमान। फिर कैसा धर्म अनुसार और स
असत्य का विचार करके नियम का करना कहा है? और यहभी आश्चर्य
कि निरवयव चैतन्य आत्मा को माना और प्रमजन माना निरवयव आक
वा जड़ तो सर्वव्यापक, और निरवयव चैतन्य आत्मा प्रमजन, कहो ध
अनुसार यह सत्य का ग्रहण है या असत्य का त्याग है? जब निरवयव
तो तीन की गाथा १ ही स्वरूप में वैसे हो सकती है।

(६) संसार का उपकार करना इस समाजका मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरि
आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

(शंका) जब कर्ताहर्ता ईश्वर को ही माना गया तो मनुष्य कौन जो उसके कार्य
में हस्तक्षेप करे, उपासक को उपास्य की बराबरी उचित नहीं है।

(७) सब से प्रीति पूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिये।

(शंका) प्रीति अनुकूल पुरुषों में होती है, यदि धर्म अनुसारपर दृष्टि है, तो अ
विरोधी हठ करने वाले अभिमानी को शत्रु समझना चाहिये। फिर सब से
प्रीतिपूर्वक वर्तना चाहिये यथा योग्य ठीक है। प्रीतिपूर्वक अशुद्ध है, इन्द्रि
गण जो विषयों में आशक्त करें परम शत्रु हैं, इस लिये उसको शत्रु समझ
कर विषयानन्द की अभिलाषा नहीं करनी चाहिए अपने आनन्द में आनन
रहना चाहिये। यह धार्मदृष्टि है, जो सब से प्रीतिपूर्वक या यथायोग्य
वर्तने की शिक्षा है, जब तक सब से प्रीति वा यथायोग्य अर्थात् न्यूनाधिक
प्रीतिको छोडकर अन्य दृष्टि नहींहोती तबतक कदाचित् कल्याण नहींहोता,
विनाइसके यह नियम वृथा है

(८) अविद्याकानाश और विद्या की वृद्धि करनीचाहिये॥

(शङ्का) विद्या यथार्थज्ञान को कहते हैं, और परमेश्वरपूर्णसजाति विजाति, पशुगत
भेद रहित है, जगत् स्वप्न समान है, यदि जगत् में सत्यबुद्धि और परमेश्वर
पूर्णमें भेदबुद्धि हैसोई अविद्याहै, सो इसका नाशकरनाचाहिये, अर्थात् आत्मा
अभिमान हटाना चाहिये, क्या इसीकानाम विद्याकीवृद्धि है, जो वेदों के अर्थ
मनमाने बना दिये॥

(९) प्रत्येकको अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहनाचाहिये, किन्तु सबकी उन्नति
में अपनी उन्नति समझनी चाहिये॥

(शङ्का) जबतक भेदबुद्धि है तबतक यह बातभी कदाचित् नहीं होसकती, यह बात

केवल कहनेमात्रप्रतीत होती है। ऐसा कोई पुरुष भेदवादी दृष्टिमें नहीं आता कि जो अपनी अपेक्षा दूसरे की प्रशंसा को सहनकरे, ईश्वर आदि की तो क्यागाथा, भेदबुद्धि के अभावहुये ऐसा होगा॥

(१०) सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियमपालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियममें सयस्वतन्त्र रहें॥

(शङ्का) जो सबहितकारी नियम हैं सो प्रति २ को लेकर सर्वकहलाता है, आश्चर्य्य हैकि पृथक्हितकारी नियममें स्वतन्त्रता और सर्वहितकारी में परतन्त्रता कैसे होसक्ती है? स्वतन्त्रता और परतंत्रतामें परस्परविरोधहै, और सर्व हितकारी तथा पृथक्हितकारी एकहीबात है, क्योंकि प्रति २ को लेकर सर्व होते हैं। ऐसा कौननियम है जो सर्वहितकारी हो और पृथक्हितकारी नहो? यदि विषयादिकसुख अर्थात् मद्यमांस आदिका खानपान सुख पृथक्हितकारी है, सर्वहितकारी नहीं, और उसके करने में समाजकी स्वतन्त्रआज्ञा है तो यह कैसी शिक्षा है? इसशिक्षाको कोईबुद्धिमान प्रमाण नहीं करेगा। समाज में युक्तहोकर भी विषय के सुख में जो पृथक्हिकारी सुख है उसकी स्वतंत्रता बनी रहे तो बडाआश्चर्य्य है॥*



प्यारेपाठकवृन्द स्वामीदयानन्दसरस्वती केवल सामाजिक सुधार और ऊपरी टीप टाप को ही देशोन्नति समझते थे, और धर्म्म को उन्होंने धर्म्म जान कर नहीं किंतु पूर्वोक्त कार्य्य का सहायक समझ कर अपने (प्रोग्राम) प्रबंध में शामिल किया था, तब आप खुद विचार सकते हो कि यह स्वार्थ साधना स्वामी जी को धर्म्म से कितनी प्रतिकूल थी।

बंबई के एक दो बडे २ विद्वान् और प्रतिष्ठित पण्डितों से जब स्वामीजी ने वेदों के मनघडंत अर्थोंभाष्य करने की सहायता मांगी तो उन लोगों ने धर्म्म और सत्य का पालन कर साफ इनकार कर दिया, और कह दिया कि हम ईश्वर के उपासक तो अवश्य हैं परंतु वेदोंकी बनावटी टीका करनेमें सहायक नहींहोंगे, स्वामीजी ने यह भी कहा कि इसमे देश की भलाई है, परंतु फिर भी उनमे से किसी पण्डित ने सहायता नहीं की।

* उपरोक्तलेख में १ से १० तक जो नियमहैं स्वामीजीके कियेहैं और शकाहमारीहै,

श्रीमती राजराजेश्वरी महारानी विक्टोरिया ने अपने नाम के साथ इम्प्रेस आफ इण्डिया (EMPRESS OF INDIA) नाम की उपाधि स्वीकार करने के लिये एक बहुत बडा दरबार करने की हिंदुस्तान के गवर्नरजनरल बहादुर को आज्ञा दी थी, स्थान देहली और दिन पहली जनवरी सन् १८७७ ई० का नियत हो कर सम्पूर्ण भारतवर्ष के राजा महाराजा रईस अमीर बुलाए गए थे । और यह दरबार देखने और स्मरण रखने ही योग्य था ।

स्वामी दयानन्द सरस्वती भी दरबार की धूम सुन कर चल पड़े, मार्ग में जहा २ ठहरना हुआ अपने कार्य्य की सिद्धि में लगे रहे, महाराज होलकर इन्दौर की राजधानी में भी १५ दिन ठहरे थे, वहा से चल कर दरबार से कुछ समय प हिले ही से शहर देहली मे आकर अपना डेरा जमा दिया था ।

ज्ञानप्रदायिनी मासिकपत्रिका लाहौर के मालिक बाबू नवीनचन्द्र राय अपनी पत्रिका सख्या ३१ । ३२ पृष्ठ २४ में लिखते हैं कि स्वामी दयानन्द सरस्वती से हमारी-मुलाकात देहली के दरबार सन् १८७७ ई० में हुई, वहा उन्होंने हमें, तथा बाबू केशवचन्द्रसेन जी, और दक्षिणवासी रायबहादुर गोपालहरि देशमुख जी और श्रीयुत् हरिश्चन्द्र चिंतामणि, को निमन्त्रण किया और हम लोगों से यह प्रस्ताव किया कि हम लोग पृथक् २ रीति से धर्मोपदेश न करके एकता के साथ करें तो अधिक फल होगा, इस विषय में बहुत बातचीत हुई, परतु मूलविश्वास में उनके साथ हम लोगों का भेद था, इस लिए जैसी वे चाहते थे एकता नहीं हो सकी, और इस समय स्वामी जी का चलन व्यवहार पहिले की अपेक्षा बिलकुल बदल गया था और अब तो यह पूरे अमीर बने हुए थे *

इस दरबार के समय आने पर स्वामी जी को नाना प्रकार के लाभ हुए । अनेक अच्छे २ योग्य पुरुषों से मिलना भेटना हुआ ।

इन्हीं दिनों में स्वामी जी की "सस्कारविधि" बबई से छप कर आ गई,

---

मासिक प्रकाशित होनी प्रारम्भ हुई थी ।

* अब आपने समस्त वेदभाष्य भूमिका छपने के लिये लाजरस प्रेस बनारसमें भेज कर उसके मासिक प्रचलित करने का प्रबंध किया और टाइटिल पेज पर अपने देशाटन अर्थात् आने जाने का प्रोग्राम छपाने लगे ।

जिसको देख कुंवर ज्वालाप्रसाद ने उनमे कहा कि इसमें अमुक २ बात आपने बहुत बुरी लिखी हैं, इसको विक्रय करके अनुचित बातों का प्रचार न कीजिये परतु वह भी स्वामी जी ने स्वीकार नहीं किया। —

देहली से स्वामीजी पश्चिमोत्तर प्रांत मे चले गये, और मुरादाबाद वाले मुन्शी इन्द्रमणि के साथ स्वामी जी ने प्रीति का प्रचार किया।

मुरादाबाद में कुछ दिन रह कर स्वामी दयानन्द सरस्वती और मुन्शी इन्द्रमणि दोनों महाशय चान्दापुर के प्रसिद्ध मेले में चले गये।

यह मेला मुन्शी प्यारेलाल कनीरपथी कायस्थ ने अपना सहस्रों रुपया लगा कर और साहिब जिलाधिपति की आज्ञा लेकर कराया था, और चादापुर गाव मुन्शी प्यारेलाल साहिब का ही है।

यह मेला चैत्र शुक्ला ४। ५ स० १८३४ मुताबिक १९। २० मार्च सन् १८७७ ई० में हुआ था।

मेले में बाबू हरगोविन्द साहब हेडक्लर्क शाहजहापुर, मौलवी मोतीमिया, ला० रामप्रसाद आनरेरी मजिष्ट्रेट, लाला बनवारीलाल, बाबू प्यारेलाल, मुन्शी सोहनलाल, मुहम्मद हैदरअली मुख्तार, मुहम्मद अलीशाह आदि अनेक प्रतिष्ठित तथा और और अनेक जाति के मनुष्य आये थे। उनमें कई पादरी और कई मुसलमान भी थे, सो स्वामी दयानन्द सरस्वती का नोबिल विस्काट साहब पादरी और मौलवी कासिमअली मुसलमान से वादानुवाद आरम्भ हो गया। प्रथम पादरी नोबिल विस्काट साहब फिर मौलवी कासिमअली फिर स्वामी दयानन्द सरस्वती और मुन्शी इन्द्रमणि जी वर्णन करते थे, और नियम यह था कि प्रश्न दश मिनट से अधिक देरमें न कहा जाय और उत्तर ३० मिनट से अधिक देरमें नहीं दिया जायगा।

दूसरे दिन ७॥ बजे दिन से लेकर ११ बजे तक और १ बजे से ४ बजे तक वादानुवाद हो कर मेला विसर्जन हुआ, ईसाई लोगो ने इस मेलेम हार उठाई स्वामी दयानन्द सरस्वती और मुन्शी जी की विजय हुई, विशेष हाल देखना चाहो तो स्वामी दयानन्द सरस्वती रचित "मेला चाँदपुर" नामक पुस्तक में देखो।

तारीख २१ व २२ मार्च सन् १८७७ ई० को दो रात मोतीमियाँ रईस

~ देखो मंगलदेव पराजय पृ० १८ पंक्ति १६।

शाहजहांपुर ने मुन्शी इन्द्रमणि के नाम इस विषय को लिखा कि आप स्वामी दया नन्द सरस्वती को साथ लेकर शाहजहांपुर चले आओ। आपसे मौलवी अहमद हुसैन साहब पुनर्जन्म के विषय में कुछ बहस किया चाहते हैं।

इन खतों के पहुँचने पर दोनो महाशय २२ मार्च सन् १८७७ ई० दो प हर दिन चढ़े शाहजहाँपुर पधारे और डिप्टी साहिब के मकान हर विश्राम किया

अगले दिन २ पहर दिन चढे तक मौलवी साहब की राह देखी परन्तु ज मौलवी साहब नहीं आये तो लाचार इनको भी लौट आना पड़ा।

इस चान्दापुर के मेले के समय स्वामी जी के पास वेदभाष्यभूमिका प्रू सीट होने के लिए आया, उक्त प्रूफ में लिखा था कि सृष्टि की आदि में अग्नि वायु, आदित्य और अंगिरा उत्पन्न हुए, उनके ज्ञान में ईश्वर ने वेदों का प्रका किया, मुन्शी जी ने उसे देख कर स्वामी जी से कहा कि "श्वेताश्वतरोपनिषत्" लिखा है कि—

योब्राह्मणं विदधाति पूर्वं यो वेदांश्च प्रहिणोतितस्मै, इति

इसकी पुष्टि में और भी अनेक वचन हैं, और अद्यपर्यंत सम्पूर्ण विद्वानों का यही मत है, कि परमात्मा ने सृष्टि की आदि में श्री ब्रह्मा जी के हृदय में प्रका किया है, आपने सम्पूर्ण के विरुद्ध अग्नि, वायु, और अंगिरा के ज्ञान में कैसे लिख दिया ? इस पर बहुत वार्तालाप रहा अंत में स्वामी जी ने कहा कि मुझको—

"अग्नि वायुरविभ्यस्तु त्रय ब्रह्म सनातनम्।
दुदोह यज्ञ सिद्धार्थं मृग यजु साम लक्षणम॥"

मनु के इस श्लोक पर कुल्लूकभट्ट के टीका में

'अग्नेर्ऋग्वेदोवायोयजुर्वेद आदित्यात् सामवेद' इति

यह श्रुति देख कर धोखा लग गया मैंने "सत्यार्थप्रकाश" में भी ऐसा ही लिखा है अब आपके कथन से प्रकट हुआ कि यह बात अशुद्ध है परन्तु मैं अपने पहिले लेख के विरुद्ध नहीं लिख सकता। *

आर्यसमाज वाले मिलने के समय जो परस्पर नमस्ते कहते हैं, इस विषय

* देखो मंगलदेव पराजय पृ० ८ पंक्ति २१ व पृ० ९ पंक्ति १४ तक।

मुन्शी जी ने स्वामी जी से हरिद्वार, छलेश्वर आदि में वार्तालाप किया कि परस्पर नमस्ते का कहना अयोग्य है। हरिद्वार में स्वामी जी ने पण्डित भीमसेन को मध्यस्थ किया उन्होंने स्वामी जी के सन्मुख स्पष्ट कह दिया कि मुन्शी जी ठीक कहते हैं, परस्पर नमस्ते का कहना अयोग्य है, परन्तु स्वामी जी को अपने कथन का आग्रह ही रहा। फिर मुरादाबाद में इस विषय पर तीन दिन स्वामीजी से मुन्शी जी का पूर्ण वार्तालाप हुआ, पण्डित भीमसेन ने बहुत मनुष्यों के सन्मुख कहा कि हम स्वामी जी से नमस्ते कहते हैं, परन्तु वे उत्तर में किसी को नमस्ते नहीं कहते। अन्त में स्वामी जी ने मुन्शी जी से कहा कि आपका कथन सर्वथा ठीक है कि सदैव परस्पर नमस्ते का कहना अयोग्य है। *

जब शाहजहांपुर में स्वामी जी का और मौलवी साहब का मुकाबिला नहीं हुआ तो यह मुरादाबाद मथुरा आगरा आदि शहरों में घूमते और विद्वान् पुरुषों से अपना मेल बढ़ाते फिरने लगे, क्योंकि जिस भय से यह अपने आपको प्रकट करना नहीं चाहते थे, वह भय सर्वथा नष्ट हो चुका जाना जाता था। +

बाबू नवीनचन्द्रराय ने आगरे में और बा० बृजलाल घोष ने मथुरा में स्वामी जी से मिला कर मन में विचारा कि इन महात्मा जी से हमको अधिक सहायता मिलने की आशा है, यह दोनों बाबू ब्रह्ममाजी थे।

बा० नवीनचन्द्रराय ने लाहोर के ब्रह्मसमाजियों को आगरे से लिखा कि यदि स्वामीदयानन्द सरस्वती लाहोर में पधारें तो ब्रह्मसमाज की तरफ से इनका स्वागत कर अच्छी तरह आदर सत्कार होना उचित है।

१९ अप्रैल सन् १८७७ ई० को स्वामी दयानन्द सरस्वती लुधियाने से लाहौर में पधारे, मुन्शी हरसुखराय अगवार "कोहेनूर" के मालिक और पण्डित मनफूल साहब मीरमुन्शी गवर्नमेण्ट पञ्जाब ने इनकी रेल पर अगवानी की। और रत्नचन्द धाडीवाल के बाग में इनका डेरा जमा, और ब्रह्मसमाजियों की तरफसे ही इनके खानपान का प्रबन्ध हुआ।

* मनादेव पराजय पृ० ८ पंक्ति ५।

+ तभी तो निडर हो वेदभाष्यभूमिका के टाइटिल पर मासिक छपाने लगे कि अमुक मास में हम अमुक स्थान पर होंगे।

सम्पादक धर्म्मजीवनपत्र लाहौर अपने १२ जून सन् १८८७ ई० के छपे हुये पत्र नम्बर २४ पृ० ५ में लिखते हैं कि जो तरमाल पहिले कभी स्वप्न में भी मुश्किल से न देखे हाथ उनके भोग लगने लगे, और उन लज्जतों का केवल इसबात से अनुमान हो सकता है कि पहिलेपहिल जब यह लाहौर में आये तो चार व पाच रुपया प्रतिदिन केवल भोजन के खर्च को लिया करते थे ।

उधर जिह्वा का स्वाद जितना मिला उतना चसका । इधर पोशाक का लालच इतना बढा कि नगे रहने के दिनों की कसर निकालने के लिये पशमीने रेशम कलाबतून आदि के अनेक वस्त्र बनने लगे ।

आर्यसमाचार मेरठ में जो स्वामी जी की पोशाक की फेहरिस्त प्रकाशित हुई, उसको देख कर विद्वान् पुरुष भली प्रकार समझ सकते हैं कि यह सन्यासी स्वामी दयानन्द सरस्वती कहाँ तक त्यागी थे ।

पूर्वोक्त समाचारपत्र से कुछ वस्तु के नाम लेकर यहा लिखे जाते हैं ।

सुर्ख दुशाला कामदार १, दुशाला जर्द जोड़ा १, दुशाला सुर्ख १, चादर पशमीने की १, चोगा सफेद बनात का १, दुशाला रेशमी १ जोड़ा दोपट्टारेशमी धूपछाँह का १, चोगाजरदोजी रेशमी १, चोगारेशमी इकहरा १, चोगासब्ज १, कोट रेशमी गोहरा १, पेटी सुर्ख धोतियां सुर्ख रेशमी किनारे का दुपट्टाकलाबतून का १ इत्यादि० ।

स्वामी जी के मरने पर जब उनके द्रव्य की संभाल हुई तो परोपकारिणी सभा के उपमन्त्री मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या ने २८ दिसम्बर सन् १८८२ ई० को अजमेर में भरी सभा को यह दिखलाया गया था कि चार हजार तीन सौ ४३००) रुपया नकद मौजूद हैं, और ग्यारह हजार रुपया ११०००) लोगों के से लेना है, चार हजार ४०००) का प्रेस और अड़तालीस हजार ४८०००) रुपये की पुस्तक मौजूद हैं *

प्यारे पाठकवृन्द ! यह लेख हमने अपनी तरफ से कल्पना करके नहीं लिख दिया किन्तु आर्यसमाज ही के लेखों से लिया गया है, अब हम पूछते हैं कि क्या देशोन्नति के लिये भेंट हो जाना इसी का नाम है ? क्या भूखी नगी हालत से

* देखो दयानन्ददिग्विजय भाग ३ और उर्दू पुस्तक रहबुतलान पृ० ७७ ।

निकल कर चैन करना ही देश के लिए भेंट हो जाना है ? ऐसा करने के लिये तो हर कोई उद्यमी हो सकता है, हम पूछते हैं कि स्वामी जी ने देश के लिए क्या कुछ खोया ? त्यागी होने से पहिले क्या कुछ पास रखतेथे जो देशको भेंट किया? अकेली जान के लिए पराए ठगे हुये द्रव्य से आनन्द सुख भोगने में उन्होंने कुछ भी कमी नहीं की, खाने पीने की वस्तुओं को तथा शारीरिक भोग विलासों को छोड़ कर और यह भी विचार कर कि जब उनको बड़े २ राजा महाराजाओं से मिलने का बहुधा काम पड़ा और उस समय नंगा रहना कुछ भला न था, ठीक है, और इसी को मान भी लिया जाय तो कह सकते हैं कि एक सीधी सादी धोती (पोशाक) काफी थी। नाना रंग के दुशाले और अनेक परमीने कलाबतूनके चुगों की कौनसी आवश्यकता थी, प्रथम तो सन्यासधर्म्म, दूसरे कलाबतूनी रेशमी ऊनी कपड़े और तिरेपन वर्ष से अधिक अवस्था, धन्य महाराज ! सब सन्यासी ऐसे ही होते हैं, यदि स्वामी जी अपने निज द्रव्य से भी ऐसा करते तो अयोग्य था और यह तो वह धन था जो एक एक पैसा कर के देश सुधार धर्म के नामपर या मुन्शी इन्द्रमणि के मुकद्दमें * आदि के नाम से लिया गया था, बहुधा आर्य-समाजी कहते हैं कि यदि मुन्शी इन्द्रमणि के चन्दे का कुछ रुपया स्वामी जी ने रख भी लिया तो क्या वे अपने साथ ले गये ? इसी देश के लिए छोड़ गए, अच्छा यही सही परंतु देखो तो सही और मनुष्य जो छल कपट द्वारा द्रव्य जोड़ते हैं क्या वे सब अपने साथ ले जाते हैं, हम सत्य कहते हैं कि यदि महात्मा जी के कोई आगे पीछे होता ‡ तो जो सहस्रों की पूँजी वह छोड़ मरे वह पिछलों ही की होती, जिस प्रकार बहुधा पादरी लोग नौकर हुये पीछे गप्प शप्प जुबानी जमा खर्च लपालप्प से काम लेकर चैन करते हैं, स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भी चैन उड़ाया, और समयानुसार चाल चल कर सम्पूर्ण भारतवर्ष में देशहितैषी जुदे कहला गए, परंतु काठ की हांडी बार बार नहीं चढ़ती शनै शनै दुग्ध का दुग्ध और पानी का पानी हो ही तो गया।

जब इनका चलन व्यवहार बदला तब उपदेश भी बदल गया, लगे मनमाने

* मुन्शी इन्द्रमणि के मुकद्दमें का हाल आगे मिलेगा।

‡ अगर कोई आगा पिछला स्वामीजीके था उसको प्रकट नहीं किया जानकर छिपाया।

शब्द उचारने, और अनेक नास्तिक वादियोंके समान मतमतांतर के झगड़ों को मूला समझ संसार में जन्म धारने का फल (शरीर को नाना प्रकार के पट आभूषणों से अलङ्कृत कर के) मन और इन्द्रियों की इच्छा पूर्ण होना ही ऐसा निश्चय करके जानने लगे ।

(क) सम्भव होता है कि इस समय इनको यह बड़ा भारी पश्चात्ताप हुआ होगा कि मैंने लौकिक मतमतांतरके बखेड़ेमें पड़ कर क्यों अपना अमूल्यसमय बरबाद किया और सांसारिक नाना प्रकार के शारीरिक सुखों को त्याग कर अथवा उनसे वञ्चित रह कर तन पर विभूति मल लंगोटी बाँध नग्नकमण्डलुलिये कभी गंगा के परले पार और कभी परले पार क्यों मन भटकाया ।

धन की इच्छा तो यहाँ तक रहती रही है कि आपमें वित्तैषणा का त्याग भी नहीं पाया जाता, धन की प्राप्ति में कैसे कैसे प्रयत्न किए थे, कि निज प्रेस जारी किया, पुस्तकों का मूल्य द्विगुण त्रिगुण नियत हुआ, हमारी पुस्तकों की कोई असल या नक़ल न छापे इस लिए उनकी रजिष्ट्री कराई गई, लोगों से धन आने और पुस्तक विक्रय के व्यवहार से कमाने पर भी व्याकरण की पुस्तक लेपयाने को सज्जनोंसे धनकी सहायतायाची और बहुत परिश्रम नौकर रख कर वेदभाष्य की पूर्ति शीघ्र होगी इस बहानेसे पृथक् याचना की उपदेशक मण्डली के नामसे १००००) एक लक्ष रुपया एकत्र करने में यथा शक्ति प्रयत्न किया गया परन्तु अन्य मांगियों के विवाद विषय के शांतिकारक व्यवहार में आपका विपरीति व्यवहार प्रकट होनेके कारण वह मनोर्थ पूर्ण नहीं हुआ । *

लाहौर में जब स्वामी जी ने हिन्दू लोगों के मतविरुद्ध अपने व्याख्यान देने प्रारम्भ किए तो रत्नचन्द के बाग से इनको उठा दिया गया और डाक्टर बृजलाल घोष रायबहादुर की और अन्य कई महाशयों की सिफारिश से डाक्टर रहीम खां खानबहादुर ने अपनी कोठी दे दी और स्वामी जी इस कोठी में रह कर व्याख्यान देने लगे । ‡

स्वामी दयानन्द सरस्वती के आधुनिक मत प्रचलित होने से जो जो हानि

---

* देखो दयानन्द मत परीक्षा पृष्ठ ९ पंक्ति १७ ।

‡ देखो इसी छलकपटदर्पण पुस्तक की भूमिका ।

प्राणी मात्र को हुई उसका वर्णन करने से पहिले हम उस वृतान्त का ही लिखना भला समझते हैं, जिससे यह निश्चय हो सके कि जब तक स्वामी जी का काम पूरा २ नहीं चला था तो उन्होंने क्या २ यत्न किये।

जब तक लाहौरमें इनका काम नहीं चला यह ब्रह्मसमाजके ही पूरे शुभचिन्तक और सहायक बने रहे जिसके बदले में ब्रह्मसमाजियों ने इनका खूब ही आदर सत्कार किया, परन्तु जब कुछ मनुष्यों ने इनके चिकने चुपड़े व्याख्यानों से संतुष्ट हो इनका पक्ष ग्रहण करलिया तो स्वामीजी ब्रह्मसमाजियों को भी पुरा कहनेलगे।

सो सत्य भी है कि जिस हाडीमें खाना उसी में छिद्र करना। ※

वैशाख स० १९३४ में स्वामी जी अमृतसर गए तो बाबा नारायणसिंह वकील अमृतसर, वाले कोहेनूर अखबार लाहौर में लिखते हैं कि—

जब स्वामी दयानन्द सरस्वती अमृतसर आए तो उन्होंने अपनी तर्क से लेक्चरों में गुरु नानकदेव, और गुरुगोविंदसिंह महाराज की, और शिक्खमत की बड़ी तारीफ की, शिक्खमतको अपने खयाल के मुताबिक जाहिर किया और हर एक मौके बातचीतमें शिक्खमतकी तारीफ करते रहे, लेकिन जिस वक्त अपनी गरज पूरी हो गई तो "सत्यार्थप्रकाश" में II झूठ झूठ गुरु नानक और गुरु गोविंदसिंह महाराज और शिक्खमतकी तौहीन (बुराई) छाप दी और बहुधा बातें मनघड़त बिना प्रमाण लिख दीं, इत्यादि०।

प्रथम ही जब स्वामी दयानन्द सरस्वती लाहौर आए तो अपना जीवनचरित्र व्याख्यान की रीति पर कई दिन लगातार वर्णन किया था।

यह पञ्जाब की यात्रा स्वामी जी को सफल हुई, और उनके चटपटे उपदेशों से तुष्टमान हो कर लाहौर और अमृतसर * के पजाबियो ने अपने २ स्थानों

※ परन्तु यह ब्रह्मसमाजियों को भी उचित न था जो स्वामी जी को अपने प्रतिकूल जान दिया हुआ उल्टा मागा, इसपर ब्रह्मग्रन्थ पुस्तक के पृष्ठ ७१ पर राधाकृष्ण महता लिखते हैं कि ब्रह्मसमाजियों ने स्वामी जी से यह रुपया उल्टा मागा जो उनको जानेआनेके, खर्च, को दिया था सो दो चार मनुष्यों ने चन्दा करके अपने पास से दे दिया।

II देखो अखबार कोहेनूर लाहौर सा० ११ दिसम्बर सन् १८८८ ई०।

* अब स्वामी जी के लाहौर समाज की तीसरी और अमृतसर समाज की चौथी जानना चाहिये।

पर स्वामी दयानंद सरस्वती की आर्यसमाज स्थापित करा दी †

इस समय भी जो मनुष्य विद्या और बुद्धि तथा द्रव्यके कारण ब्रह्मसमाज में प्रसिद्ध थे उनको स्वामी जी ने देश सुधार के नाम से धोका देकर अपने समाज में मिलाने का यत्न किया और एक विख्यात पुरुष को अपने समाज का प्रधान बनाने को कहा परंतु उक्त महाशय ने स्वीकार नहीं किया, तब लाचार हो उन्होंने पंजाबयूनिवर्सिटी के एक डिगरी पाये हुये को (जो इस समय से पहिले अपना विश्वास नास्तिकता पर लाकर नास्तिक विख्यात हो रहे थे) अपने ढग का जान कर लाहौर आर्यसमाज का प्रधान नियत किया।

यह जो लाहौर समाजके प्रधान नियत कियेगयेथे, निश्चयमें नास्तिकविश्वासी थे, सो जब यह समाजकी उपासनामें आनेसे बचने लगे और उससे अपनीअरुचि विदित करी तब स्वामी जी ने उनको गुप्तरीति से यह कह दिया कि यद्यपि तुमको परमेश्वर पर विश्वास नहीं है, परन्तु देश की भलाई के लिये कुछ समय के लिये आपको समाज मन्दिर में आनकर नेत्रमूदकरके बैठ जाना ठीक है।

ब्रह्मसमाज के अनेक प्रतिष्ठित सभासदोंसे स्वामीजीने यह स्वीकार कर लिया है कि मुझको वेदों पर कुछ भी विश्वास नहीं है, केवल अपने कार्य्यकी सिद्धी के अर्थ यह—एक सहारा बना लिया है।

अभी जब कि कर्नलअलकाटसाहब * और उनकी सुसायटीसे इनकी मित्रता भग नहीं हुई थी तो पहिलीबार कर्नलसाहिबने लाहोर में आकर आर्य्यसमाज के मन्दिर में एक व्याख्यान दिया जिसमें अपनी सुसायटीके जन्मधारण करनेका वृत्तात कहकर यह वर्णन प्रारम्भ किया कि आर्य्यसमाज और उसके प्राणदाता से इस सुसायटी का क्योंकर सम्बन्ध हुआ और यह भी वर्णन उसी समय का है कि मुझको आर्य्यसमाजियों से मित्रता किये पहिले उनके दश नियमों का सारास विदित न था किंतु जब उनका अंग्रेजी अनुवाद मेरे पास आया तो उसमें ईश्वरके उन गुणों

† जब स्वामी जी ने अमृतसर में समाज खोला तो ब्राह्मण लोग मूर्खता पर उतरे भावार्थ—स्वामीजी पर छिप छिपकर पत्थर फेंकने लगे तब लाचार हो स्वामी जी को सरकार में रुपये देकर पुलिसका गार्डसगलेना पड़ा था।

* कर्नलअलकाट कौन था यह आगे चलकर लिखा गया है।

को देखकर जो उसको पुरुष रूपमानकर प्रकट किये हैं, बड़ा आश्चर्य्य हुआ। और यह शङ्का उत्पन्न हुई कि स्वामी दयानन्द सरस्वती ऐसे साकार ईश्वरको क्योंकर मानते होंगे। सो मैंने आर्य्यावर्तदेश में आकर उक्त स्वामीजी से निजके तौर पर एकान्त में प्रश्न किया तो यह उत्तर मिला कि मेरा गुप्त विश्वास जिसपर है वह ईश्वर कोई ही है, जिसको मैं इस स्थानपर यथार्थ प्रकट करना नहीं चाहता और आर्य्य-समाज के दश नियमों में गर्भितईश्वर परमात्मा और है।

[क] आहा! कैसा उत्तम विषय है जिनके स्वामी दयानन्द सरस्वती जैसे गुरुहों उनके विद्या और बुद्धि तथा भाग्यकी बलिहारी है। कहा है कि—

श्लोक—गुरवो बहव: सन्तिशिष्यवित्तापहारका:।
दुर्लभःसद्गुरुर्देवि शिष्यसंतापहारक: ॥१॥

द्वितीय ज्येष्ठ तथा आषाढ़ के महीने सम्वत् १९३५ में स्वामीजी का पं० श्रद्धारामजी फिल्लौर जिला जालन्धर निवासी से शास्त्रार्थ हुआ। ‡

इसी अवसर पर स्वामी जी को अखबार वकील हिन्द और पजाब यूनी विट्टी के लिखे लेखों से मालूम हुआ कि वेद भाष्य के प्रतिकूल कराकत्तो आदि अनेक स्थानों के विद्वानों ने लेखनी चलाई, इस पर स्वामी जीने निम्न लिखित लेख को अंग्रेजीमें अनुवाद कराकर उनके पास पठाया।

कई एक साहिबों ने मद्रचित वेद भाष्य पर प्रतिकूल अनुमति दी है, इस लिये मैं उनकी शंकाओं का उत्तर क्रम से निवेदन करता हूं। प्रथम उन शंकाओंका उत्तर है जो मिस्टर आर मिफित एम ए प्रिन्सपिल बनारस कालिज ने की हैं। पाच हजार वर्ष के लगभग से वेद विद्या जाती रही महाभारत से पहिले इस देश में सब विद्या ठीक २ प्रचलित थी परन्तु पीछे से पढने पढानेके ग्रन्थ तथा रीति बिल्कुल बदल गई जब से अब तक वही अशुद्ध प्रणाली प्रचलित है, यद्यपि कहीं २ के

‡ पुस्तक सत्यामृतप्रवाह के कर्त्ता पंडित श्रद्धारामजी भवीन सांग्यमती थे जिन्होंने स्वामीजी की खूब खबर ली।

लोग वेदादिक सत्यग्रन्थों को कंठस्थ लेते हैं परंतु उनके प्रयोजन को कोई भी नहीं जानता न ऐसे कोई व्याकरणादि ग्रन्थ अर्थ सहित पढ़ाये जाते हैं जिनसे वेदों का अर्थ हो सके आधुनिक जो महीधर आदिके बनाये हुये वेद भाष्य देखने में आते हैं वे महाभ्रष्ट और अन्धकार के बढ़ाने वाले हैं उनके देखने वालों को मद्रचित भाष्य ठीक समझ में नहीं आता मेरा भाष्य शुद्ध वेदार्थ बोधक और प्राचीन भाष्यों के ठीक अनुकूल है वह तभी समझ में आवेगा जब लोग प्राचीन—भाष्यादिक ग्रन्थों की सहायता स्वीकार करेंगे मैंने प्रत्येक मंत्र का अर्थ सत्यप्रतीत होने के लिये बहु प्राचीन आप्त व्याख्यानकर्त्ता का प्रमाण बहुतस्पष्ट पतेवार लिख दिया है, यदि—मिक्षितसाहब ने प्राचीन भाष्य वा मेरे जिसे प्रमाणों और उदाहरणों को पढ़ा होता तो कभी उनकी ऐसी विरुद्ध सम्मति न होती जैसी कि उनने हाल में दी है, **उव्वट, सायण महीधर, रावण,** आदि के रचे हुए भाष्य प्राचीन भाष्योंसे समस्त स्थानों में विपरीतहैं, केवल इन्हीं भाष्योंका अनुवाद अंग्रेजीमें 'विलसन' और 'मेक्समूलर' आदिप्रोफेसरोंने किया है, इस लिए मैं इनके भाष्यों को भी शुद्ध और न्यायकारी नहीं कह सकता इन्हीं ग्रन्थों के कारण 'मिक्षितसाहिब' आदि लोग भी संदेह मार्ग में पड़े हैं, और मुझको यह कहकर दूषित करते हैं कि स्वामी जी ने अर्थ पलटकर अपने प्रयोजन के सिद्धार्थ—दूसरे ही अर्थ नियत किए हैं, परंतु उनका यह तर्क सर्वथानिर्मूलहै, मैंने सर्वत्र 'ऐतरेय' और 'शतपथादि' नामक ब्राह्मण ग्रन्थ और निरुक्त तथा 'पाणिनीय' व्याकरणादिक सत्य ग्रन्थोंका प्रमाण देकर प्रत्येक मंत्रका सत्य २ अर्थ लिखा है यदि 'मिक्षितसाहिब' उसको देखते तो कभी ऐसा न लिखते, विचार करता हूं कि उन्होंने मेराभाष्यविना ही देखे भाले अपनी मनमानी, अनुमति प्रकाशित कर दी है।

मैं नहीं समझसका हूं कि क्यों मिक्षितसाहब मेराशृथाश्रमसमझते हैं जबकि मेरेभाष्य के लेनेवाले हजारसे अधिकबड़े २ सत्पुरुष हैं और प्रतिदिन नवीनजनोंके निवेदनपत्र मेरी पुस्तकलेनेके विषयमें बराबर चलेआते हैं, मेरे ग्राहकोंमेंसे बहुतसे अच्छे २ संस्कृतज्ञ और बहुतेरे अंग्रेजी और संस्कृत में पूरे २ विद्वान हैं "मिक्षितसाहबका" यहअन्तिम लेख कि वेदों की ऋचाओं से बहुत से देवताओं के नाम प्रकाशित होते हैं, सोचने की यह बात मुझको तथ प्यारी लगे और विद्वानों के समीप प्रमाणीकठहरे जब वे

उस मतलबकी कोई ऋचा मुझको लिख भेजें।

(A) यद्यपि वेदों को शीघ्रदृष्टिसे देखनेसे देवताओं के नाम उतनेदीखपड़ते हैं जितनेकि स्तुतिपरकमन्त्रोंमें हैं, परन्तु पुरानेव्याख्यात ग्रन्थों के अनुसार (कि जो ठीक आर्य्यधर्म्म के विषय के हैं) * व अनेक नामी देवता वो मनुष्यों और वस्तुओं के नहीं ठहरसकते, अर्थात् वेसब तीनदेवताओंहीके नामसे सम्बन्ध रखते हैं और फिर वे तीनों नामों के देवता भी पृथक् २ नहीं हैं, अर्थात् वे तीनों नाम एक ही परमेश्वर के हैं निघंटु अर्थात वेदोंके शब्दकोशके अन्त में तीननामावलीमें देवताओंकी हैं।। उनमें से पहिली में "अग्निके" दूसरी में "वायुके" तीसरीमें "सूर्य्यके" पर्यायवाचीनामहैं, निरुक्तके अन्तभागमें जिसमें केवल देवताओंका वृत्तान्तहै यहबारबार कथनकियागया हैं कि देवता केवलतीन हैं।(तिस्रएवदेवता)। इनसे अधिकसेंद अनुमान सिद्धान्तयह निकलता है कि केवल एक ही देवता है यह बात वेदके अनेकवाक्योंसेभी सिद्धहोती है, और यहीआशय निरुक्त और वेदके प्रमाण के अनुसार अतिसुगम और सक्षेपरीतिस ऋग्वेद के सूचीपत्र में वर्णनकिया है इसमें यह निर्णय होता है कि आर्य्योंके पुरातनधर्ममार्ग की पुस्तकें केवलएकहीब्रह्मको गाती हैं, और सूत्रोंसेभी ऐसाहीसिद्धहोता है।

(B) वेदोंसेज्ञात होता है कि आर्य्यऋषियों का धर्ममार्ग केवल एक बड़े ब्रह्मके पूजन और श्रद्धा व भक्तिमें था जिसको वे सर्वशक्तिमान् सर्वज्ञ और सर्वव्यापक जानतेथे, और जिसके सम्बन्धी गुणोंको वेअत्यन्तपूजनीय वाक्यों में प्रकटकरतेथे, और वे सर्वोत्तमगुण उसकी तीनप्रकारकीशक्तियां हैं, उनमेंसे प्रथम "उत्पादक" दूसरी "पालक" तीसरी "सहारक" नामसेवर्णनकीजाती हैं।

(C) इनअतिसत्यध्यानोंसे मुझेपूर्णविश्वास होता है कि चारोंवेदएकही ब्रह्मको गाते हैं, "जोसर्वशक्तिमानचिरस्थाई स्वयम्भू ससारका द्योतक" और पालकहै, मैं इसके सग एक और ऋचालिखताहूँ जिससे एकहीब्रह्म निश्चित होताहै, उससेआपकीशङ्कानिवृत्तिहोगी, खूब जानिये कि आर्यलोग स्वाभाविकबुद्धिसे सदैव अद्वैतसेवी अर्थात् केवल एक ईश्वरहीको मानतेथे।

* आपतोचारवेदोंकेअतिरिक्त और किसी को सत्यनहीं मानते फिर यह पुस्तक क्या थे सो नहींलिखे ?

पादके ३२ वें सूत्रका प्रमाण देता है उसको देख तुष्ट होवें ।

रहे "पण्डित भगवानदास" असिस्टेंट प्रोफेसर संस्कृत गवर्नमेंट कालिज लाहौर सो उनकी कोई नवीन शंका नहीं है इस लिये जो कुछ मैंने ऊपर कहा वही बहुत है वे भी इसी लेखपर संतुष्ट होवें ॥ इति ॥

पूर्वोक्त लेख की अनेक प्रति अंग्रेजी छपाकर स्वामी जी ने वितरण कर दीं स्वामीजी लिखते हैं कि "मैं नहीं समझ सकता हूँ कि क्यों प्रिंटिंगसाहब मेरा वृथा श्रम समझते हैं जब कि मेरे भाष्य के लेने वाले हजार से अधिक बड़े २ सभ्य पुरुष हैं और प्रत्यहनि नवीनजनों के निवेदन पत्र मेरी पुस्तक लेनेके विषयम बराबर चले आते हैं, मेरे ग्राहकों मे से बहुत से अच्छे २ संस्कृतज्ञ और बहुतेरे अंग्रेजी और संस्कृत में पूरे २ विद्वान हैं ।

(क) इस पूर्वोक्तलेख से तो स्वामी जी ने उल्टा उपहास जनक दृश्य दिखला दिया क्या उनके वेद भाष्य के अधिक ग्राहक होजाने से ही वह प्रमाणीक हो गये ।

जब सम्पूर्ण भारत में आपका मनोकल्पित भाष्य बनाना प्रसिद्ध हुआ तो विद्यारसिक पुरुषों का ग्राहक होजाना कोई बड़ी बात नहीं है, चिलम, कली नय टेरवा हुक्का पीने वाले ही खरीदते हैं, दूसरे नहीं फिर संस्कृत का पुस्तक भी तो वही खरीदेगा जो संस्कृत का जानकार हो, इसमें स्वामीजी व्यर्थ खुशी हुए कि हमारा वेद भाष्य विद्वानोंने खरीदा खुशी होना तो तभी ठीक था कि जितने ग्राहकों ने वेद भाष्य खरीदा उनमें से आधे भी उनकी सराहना करते, और अपना आनन्द भरा लेख सार्टीफिकेट के तौर पर स्वामी जी के पास भेज देते, जैसा कि अनेक विपक्षियों ने तर्क लिख लिख भेजा और स्वामी जी ने उसको जानकर छिपाया ।

——)(०)(——

श्रावण सम्वत १९३४ में स्वामीजीने अमृतसर मे रहकर एक "आर्य्योदेश रत्नमाला" नामक पुस्तक बनाकर उसी स्थानके चशमएनूर छापेमें छपाई जिसका आदि श्लोक यह है, *

* सत्यार्थप्र० में स्वामीजी ने मरेहिसूका श्राद्धकर्म्मा लिखाथा उसके प्रतिकूल इस

४ ३ ६ १ नाम राजा
वेदरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे विक्रमार्कस्यभूपते। ।
श्रावण शुक्ल ७ बुध
नभस्ये सितसप्तम्यां सौम्ये पूर्तिमगादियम्॥१॥

इस पुस्तककी समालोचना भी हम द्वितीय भाग में करेंगे, इसमें स्वामी जी ने अनेक प्रकार के १०० शब्दों का मनमाना अर्थ और भावार्थ लिखा है, जो असत्य मिश्रित सत्य होकर भी त्यागने ही योग्य है यथार्थ भेद द्वितीय भाग से देख लेना।

तारीख १३ सितम्बर सन् १८७७ ई० को स्वामीजी जालन्धर पधारे, सरदार शिवमसिंह अहलोवालिया के मकान पर ठहरे, यह सरदारसाहब भी स्वामी जी की चिकनी चुपड़ी बातों में आनकर पूरे सहकारी बन गए। जालधर के मौलवी अहमदहुसैन से स्वामी जी की 'बहस' होने की तजवीज होकर २८, सितम्बर का दिन नियत हुआ, और नियत समय पर दोनों महाशय उक्त सरदार साहब के मकान पर एकत्रित होकर शास्त्रार्थ में प्रवर्तें, जब मौलवी साहब से स्वामीजी का पक्ष प्रबल रहा तो मौलवी साहब हठ करते चले गए, और इधर स्वामी जी की आज्ञा से सरदार शिवमसिंह साहब अहलो वालिया ने इस "बहस" सम्बन्धी पुस्तकें छपा कर बांटी थी।

पञ्जाब में स्वामी जी के समाजों के स्थापित होने से देश में क्या २ चर्चा चली और विद्वानोंने अपना क्या २ मत प्रकाशित किया, सो यह तुम निम्नलिखित लेख से ज्ञात होगा।

तारीख १०, सितम्बर सन् १८७७ ई० के छपे हुए मित्रविलास पत्रमें प्रकाशित हुआ राधाचरण गोस्वामी वृन्दावन निवासी का पत्र इस प्रकार है—

श्रीयुक्त मित्रविलास सम्पादकेषु।

महाशय,

आपके पत्र से ज्ञात हुआ कि मान्यवर परमहंस परिव्राजकाचार्य्य श्री स्वामी

पुस्तकमें यह लिख दिया कि (६४) पञ्चायतन पूजा॥ जीते माता पिता आचार्य अतिथि और परमेश्वर को जो यथा योग्य सत्कार करके प्रसन्न करता है उसको पञ्चायतन पूजा कहते हैं।

दयानंद सरस्वती महोदय, लाहौर और अमृतसर में बड़ी धूमधाम से सुशोभित हुए, और इन दोनों स्थानों में उक्त महोदय ने एक एक "आर्यसमाज" भी संस्थापन किया। हम परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं कि आर्य्यसमाजों की प्रतिदिन उन्नति हो, और वह बड़े बड़े नगर एवं छोटे छोटे ग्राम सर्वत्र संस्थापित हों, अथच आर्य जन उनमें परस्पर समवेत (इकट्ठे) होकर अपनी उन्नति का साधन विचारें, और उसका अनुष्ठान करें। विशेषतः वह लोग जो देशहित में बद्धपरिकर (कमर बांधे) हैं इन समाजों की उन्नति करने पर अवश्य दत्तावधान हों, क्यों कि इनके स्थिति रहने से अशेषतःकृष्टावस्था (अच्छी हालत) की संभावना है, हम यह नहीं कहते कि समस्त भारतवर्ष की उन्नति केवल समाज संस्थापना मात्र ही से हो सकती है, पर यही कि ऐसे समाजों से अनेक विषयों में सहायता मिलेगी। इसके आविष्कर्ता (जारी करने वाले) ने हम लोगों की उन्नतिके लिये जैसे जैसे परिश्रम और दुःख सहे हैं, उनके सुनने से एक बार पाषाण के समान हृदय भी द्रवीभूत हो जाता है, तो फिर क्या कारण है कि हम लोग अपने एक ऐसे शुभचिंतक का उपदेश नहीं सुनें ? और उससे मैत्री परिवर्तन (बदले) में शत्रुता करें ? मेरी बुद्धि में यह अत्यन्त अज्ञ का काम है। बुद्धिमान् मात्र तो निस्सन्देह उन्हें उत्साह दान करेगा। और देश को उनका चिरऋणाधित (कर्जदार) समझेगा। मूर्तिपूजनके विषयमें अवश्य अनेकों का इनसे मतद्वैध है, पर एक उस अंश को छोड़ कर और देशोपकारी कार्य्यों में भी बहिर्मुख होना अनुचित है, धर्म्म विषय में चाहे जो कुछ किसी का मत हो पर शुद्ध देशहित में सब को एक मत हो जाना चाहिये।

आपका मित्र—
राधाचरण गोस्वामी।

—(०)—

पूर्वोक्तपत्र का उत्तर, मित्रविलास पत्रसंख्या १० खंड १ ता० १७-९-१८७७ ई०

श्रीयुत मित्रविलास सपाटकेषु !

महाशय,

जो पिछले सप्ताह में आपने लिखा था कि लाहौर और अमृतसर में साधु दयानंद सरस्वती ने "आर्यसमाज" स्थापन किये हैं, इनसे लोगों को उन्नति होगी,

उस पर हम लिखते है कि यह समाज देश के हाम का साधन है, उन्नति की सभावना तो कहा। लोगो के धर्म्मका नाश करना ही इनमे मुख्य उद्देश्य है, वेद, स्मृति, इतिहास, पुराणों मे जो धर्म्म प्रतिपादित है, उसमे निचारे शास्त्रानभिज्ञ लोगों को हटाना ही उन सभाओं का मुख्य प्रयोजन है, और श्रीराम, श्रीकृष्णादि अवतारों की निन्दा, श्रीगगादि तीर्थ और परमपावन देवतेओं का अपवाद, यज्ञ, ब्राह्मण निन्दा द्वारा देवताओं से और परमेश्वर से निमुख करना ही, वेद वाक्यों के उनटे अर्थ करना यही निश्चित है। वेद का अर्थ तो उलटा किया है, निरुक्तादिकों का अर्थ भी विपरीत ही समझाया जाता है।

जब धर्मशास्त्रादिको को ही अप्रमाण कहा, तो वर्णाश्रम धर्म कहा जब वेद के स्वेच्छानुरोधि अनर्थन अर्थ किये, तो फिर भला यज्ञ श्राद्धादिककर्म कब हुये। जब धर्म में ही च्युत हुए, उन्नति की आशा हो सकती है, पुरुष की उन्नति ऐहिक, पारलौकिक कर्मों से ही होती है, ईश्वरीय ज्ञान् का साधन कर्म है, जब अन्त करण शोधक कर्म ही न हुये, तो भला ईश्वर का यथार्थ ज्ञान कब और किस प्रकार प्राप्त हुआ। क्योंकि उपाय विना उपेय की प्राप्ति का होना सर्व प्रकार असम्भव है। अत हम परमेश्वर से यही मागते हैं कि, हे परमेश्वर! तू ऐसी २ कल्पित सभाओं को नष्ट कर, और श्रुतिस्मृत्युदित सनातनधर्मनिरूपक सभाओं की रचना में हमारे बन्धुओं के मन को लगा जिसमे व अपने धर्म पर सदैव स्थिर रहें।

हमारा किसी के साथ निरोध नहीं, केवल श्रुति, स्मृति, पुराण विरुद्ध अज्ञलोगों के भ्रामक मत को देख मैं दयार्द्र होकर, इन लोगो को कहता हूँ। इसमें शत्रुता समझें तो उनकी परम अज्ञता है। जब मतभेद है, और मतभेद भी ऐसा है कि एक दूसरे के मत की और उसके आचार्य्यों की निन्दा करता है, तो देशोपकारी कार्य्यों में एक मत कब हो सकता है? यद्यपि देशहितैषी होना बहुत श्रेष्ठ है, परतु जब ऐसी २ धर्मनाशक सभायें रचित हुई तो एक मत होना बहुतही कठिन है? धर्म्मसे अधिक कोईदेशोपकारीकाम नहीं, इसवास्ते प्रथम यथार्थ निरुक्तानुसार, श्रीमाधवाचार्य्यादिदृष्ट वेदार्थ को विचारकर सनातधर्म्म में स्थितहोना चाहिय, पश्चात् देशहितैषी कार्य्योंमें भी स्थिति होगी। हमप्रार्थना

करतेहैंकि हेपरमात्मन इसदयानन्दसरस्वतीप्रणीत सर्वथानिष्पिमतसे , लोगोंकीबुद्धि को हटा, और सद्धर्म्ममेंप्रवृत्तकर ॥ अलम् ।

ठग्वूर शास्त्री	व्यापकामिञ्ज पं० नथूराम

मित्रविलास सख्या११खण्ड१तारीख२४सितम्बर सन्१८७७ई०मेलिखाहैकि

॥ आर्य्यसमाज ॥

"सत्यबोलो" और "जोतुमकोमत्यप्रतीतहोताहै, वही करो" ऐसाकहना सहज है,परतु करनाकठिन । हमसबकिसी को यहीशिक्षाकरतेरहतेहैं कि, "भाइयो ! झूठबोलनाबुरा है मद्यपान तथा वेश्यागमन प्रभृतिकर्म्म मनुष्यको उजाड़देते हैं,"पर हमारा औरों को ऐसा कहना किसकामका, जब हम आपही इन कुकर्म्मोंमें ग्रसितहैं। आर्यसमाजी लोग ब्राह्मणों की औरमूर्तिपूजा तथा श्राद्धादिककी निन्दा और भ्रम शसा मुहसेतो करते हैं, परतु शोचकीयबात यह है कि फिर भी अपने नियमों के अतिरिक्त चलते हैं जानबूझकर असत्य और मिथ्याकरना कैसा पाप है ? पर तो भी वे ऐसा करते हैं ।

सुनागया है कि, अभीकुछदिनहुये, उक्तसमाज के एकशिरोमणिसभासद्का विवाहथा, और यद्यपि वह ऐसाथा, तथापि उसने उन्हींब्राह्मणों से विवाह कराया जिनको वह सर्वदा पोपकहाकरताथा, उन्हींमूर्तियों का पूजनकिया जिनकी वहनिन्दा कियाकरताथा, और साराश उसने वही २ कर्म्मकिए, जो उसकी समझमें पाखण्ड कर्म्मथे, । वाह ! स्पष्ट है कि ये लोग कहते कुछ हैं और करते कुछ । ह ह ह ह ! हमको उचित नहीं है कि एकही अपराधमें किसी को अपराधी बनावें, अत हम यही योग्य समझते हैं कि इन कन्यागतके १५ दिवसोंतक ठहरें और देखेंकि ये लोग, अपने नियमों परचलते हैं वानहीं और श्राद्ध करते हैं कि नहीं ।

दूसरालेख इसीपत्र में

यहा के पडितलोग दयानन्दसरस्वतीके मत को खडन करनेके हेतु स्थान २

पर सभाएँ करते हैं। आशा है कि इसबीजकाअंकुर शीघ्रही निकलेगा,

फिर मित्रविलास खंड १ संख्या १२तारीख १।१०।१८७७ई० मेंयहलिखाहै।

श्रीयुक्ति मित्र विलास सम्पादकेषु,

महाशय।

मैंने जो १० सितम्बर के पत्रमें आर्य्यसमाज के विषय में लिखाथा, उसपर आप के नगर निवासी पण्डितनत्थूराम तर्कदेते हैं, और कहते हैं कि यह समाज देशकेह्रासनाशक हैं। कदाचितपंडितजी का कथन सत्यहो, पर यह हमभली भाँति जानते हैं कि इनसमाजो के अनुमेंद में देशभक्ति शास्त्रानुराग ज्ञानालोचन, अवश्यहो-सकता है, जिसमे हमारे देशके प्रतीव उपकार होने की सभावना है। धर्मकेविषयमें प्रथम एकमत करके पुन देशोन्नति करना भारतवासियोंसे असाध्य है, क्योंकिइस देशमें इतने मत प्रवृत्त है कि उनकीएकता होना अत्यन्त कठिन है, और यदि एकता भीहोजायतो फिर उनमे किसी एक मतको उत्कृष्टठहरकर उसमें सबका प्रवेशकराना भी असम्भव है, क्योंकि शताब्दियो से परस्पर मतोंका विवादचलाआता है, परतु उसमें आजतक भी कुछ निर्धारित न हुआ; और न सबमतनष्टहोकर किसी एकमत की प्रवृत्तिही प्रधान रूपमे हुई तो यह कौनकहसकता है कि हमइसका भारलेतेहैं, और शीघ्र ही सबको एकधर्मकरसकतेहैं। यदि हमारे पण्डितजी इसविषयमे प्रतिज्ञा करते हों तो देश का बड़ासौभाग्यहो, पर जब बडे विद्वाआचार्य्यही न करसके तो यह विचारे क्याकरसकते हैं? किंतु इस समय में जब कि हमलोगों से अधिक अन्या न्यजन धर्मप्रचार मे सयत्न हैं।

आर्य्यसमाज के सभ्योंसे बिनाकिसी मतका विचारकिये देशोपकारीकर्मों मेंमिलना, और निरर्थकवादविवादमें गालागाली नकरना, अथच और मतानुयायियों केसमान इनमें भी कार्य्यमात्र सबंधरखना, एव परस्पर विरोध छोड देना ही मेरा आशयहै कुछ यह नहीं कि धर्म्मसबधी विवादकरना और नित्यश असभ्यवचनकह मारकूटतकपहुचना। यदि हमारे पडितजी विरोधाग्निको समय प्रति समय प्रज्वलित-करने और वाग्वज्रकेप्रहारसेही धर्म की पराकाष्ठा अथच देश का उपकार सोचते हैं तो हम खेदकरते हैं।

श्रुति, स्मृति, पुराण विरुद्ध लोगो के भ्रामक मतका निराकरणही यदि पडित जी का उद्देश्य है, तो वह उसमतकी निन्दा क्यों करते हैं जिसमें निस्सदेह भ्रमनिरा-

तिका प्रमाणेमानी जाता है ? क्या स्वामीदयानन्द वेद और मन्त्रादि शास्त्रनहींमानते हम यह नहीं कहते कि वह सब कर्म्म वैदिकही करतेहैं, परनहीं वह वेदके प्राय अनुयायी हैं । अब सकल वेदोक्त कर्म्मके करनेवालेतो चाहे हमारे पंडितजीही हों।

हमारे पंडित महाशय स्वामी दयानन्द को अज्ञ कहते हैं, इसकी विवेचनापाठक जन ही करलें, अर्थात् इन दोनों में कौन विज्ञ, और कौन अज्ञ है, हम से स्पष्ट न कहावें ।

आपका मित्र—
राधाचरण गोस्वामी ।

फिर देखो मित्रविलासपत्र खंड १ संख्या १४ ता० १५–१०–१८७७ ई० ।

श्रीयुत मित्रविलास सपादकेषु ।

महाशय,

आपके पत्र में पण्डित नत्थूराम का एक पत्र छपा है, जिसे देख कर मैं अत्यन्त आनन्दित हुआ हू । कारण यह है कि, हमारे परम मित्र श्रीयुत राधाचरण गोस्वामी, यद्यपि लिखते हैं कि, दयानन्द के 'समाज' से हम देशहितका साधन समझते हैं, परतु हमारी दृष्टि में यह उक्त महाशय का केवल भ्रममात्र है, क्योंकि 'आर्यसमाज' वाले केवल देश को भ्रष्ट करने मात्र हीं पर बद्धपरिकर हैं । उनकी दृष्टि देशहितैषिता की ओर नहीं है । यदि हम दयानन्दीय, मत के प्रत्युत्तर का खण्डन करें तो, महाभारत सरीका एक ग्रन्थ बन जाय, परंतु हम स्थूल विचार का प्रारम्भ करते है कि, प्रथम उक्त सन्यासी क्या प्रमाण मानता है ? वेद इतिहासमें अमुकामुक स्थल प्रक्षिप्त है, और अमुक प्रमाण है, इसमें क्या प्रमाण है ?

उक्त सन्यासी जब यहा आया था तब मैंने भी उससे आलाप किया था । यह किसी पक्ष पर आरूढ नहीं रहता । जब उससे कुछ उत्तर नहीं बनता, तब वह हाहाकर हसता है । फिर ऐसे मनुष्यो से कुछ सहायता पावेंगे, यह केवल बुद्धिविपर्य्यास है । अलम्

वृन्दावन] [छबीलेलाल गोस्वामी ।

मित्रविलासपत्र संख्या १५ खंड १ ता० २२–१०–१८७७ ई० में संपादक ने लिखा है कि—

इन दिनों लाहौर में दयानन्द सरस्वती आये हुए हैं, और शास्त्रोंके विषय में प्रति संध्या को आर्यसमाज मे व्याख्यान दिया करते हैं। हम आशा रखते हैं कि लवपुरीय पंडित लोग अब इनमे शास्त्रार्थ करके अपनी मनोकामनायें पूर्ण करने की अवश्य चेष्टा करेंगे।

फिर देखो मित्रविलासपत्र संख्या १६ खण्ड १ तारीख २९।१०।१८७७ ई० में लिखा है।

श्रीयुक्तमित्रविलाससंपादक महोदयेषु।

महाशय।

आपके १५ अक्टूबर के पत्र में हमारे मित्र छबीलेलाल गोस्वामी ने हम पर बडी कृपा की है। और उसका विशेष कारण यह है कि हमने आर्य्यसमाजको देशहितैषी बतलाया। हम उनसे अतीवनम्र होकर जिज्ञासा करते हैं कि क्या आपने कोई आर्य्यसमाज की ऐसी नियमावली देखी है, जिसमें देश के भ्रष्ट करने की प्रतिज्ञा है? वा आपने घर में बैठे २ ही अनुमान मात्रसे सबतत्व निश्चय कर लिया? और अपने नीचस्वभाव से निष्प्रयोजन सत्पुरुषों की निन्दा मे प्रवृत्त होगये? हम आपसे ही पूछते हैं कि यदि स्वामी दयानन्द देशहितैषी नहीं हैं तो क्यों भारतवर्ष के चतुर्दिक् मे तन्निमित पर्य्यटन करते हैं? और लोगों को उसी भांति का उपदेश देते हैं? अथच नूतननूतन ग्रन्थ प्रचार, पाठशाला स्थापन, समाजनियोजन, सविस्तृतवक्तृता वितरण प्रभृति उन्नतिसाधक उपायों में संयत्न रहते हैं वा? क्या स्वामीदयानन्द अनेक अंशों के इतने दुराचार और यन्त्रणा सहने पर भी देश हितैषी पदके योग्य नहीं? वा वह अष्ट प्रहर देशमंगलार्थ अविचलश्रम, और लोकोत्तर उत्साह करने पर भी हो सकै तब देश भक्तिसे मुक्त नहीं? मित्र महाशय आर्य्यसमाज के तो यह शुद्ध नियम हैं जिन्हे आपके सदृश दो चार दोषैक दर्शी और कलुषितान्तःकरणों के वि * (अपराधक्षमा) आपने अपने पवित्र शरीरसे कितना देशोपकार किया।

दयानन्दीय मतके प्रत्युत्तर का खण्डन करने को कौन अवरोध करताहै, यदि आपको कुछ विद्या और बुद्धि और बल है तो सब छोटे और बडे पर प्रकट कीजिये

* जहां जहां ऐसे चिन्ह बनादियेगयेहैं वहांकायुक्त लेखनष्ट होगयामिला नहीं।

परन्तु हमें यह सोचकर बड़ा हास्य आता है कि आप प्रथम दयानन्द का मत तो जानते ही नहीं खण्डन क्या पूर्ण कीजियेगा ? ।

दयानन्दीय मत के प्रत्यक्षर का खण्डन तो एक ओर रहा आप ने तरफ से तो खण्डन कर चुके इत्यादि, आपको इतनी शक्ति नहीं है, जैसा कि इरादा करते हो । दयानन्दीय मत के प्रत्येक अक्षरका खण्डन करना, महाभारत के समान ग्रन्थ बनाना अभिमानोक्ति और मूर्खता है । कुछ दयानन्दी का मत स्वतंत्र नहीं है, वह इन पूर्वोक्त ग्रंथों को ही आश्रय करके उपदेश, वक्तृता इत्यादि करते हैं ।

स्वामी दयानन्द उन ग्रन्थोंको प्रमाण मानतेहैं, जिन्हें परस्पर विरुद्धमानभी आर्यगण समस्वरसे अस्वीकार, सहित स्वीकारकरतेहैं, और जिनकेप्राचीन होनमें किसी प्रकारकासन्देहनहीं । परन्तु आप उनग्रंथोंको न माननेहो तो निस्सन्देह साधुसमाज बहिष्कार्य, नास्तिक और वेदनिन्दक हैं ! वेदेतिहास में प्रक्षिप्तस्थलों के विषय जो आप प्रमाणचाहतेहैंसो प्रथम यहतानतेजाओकिवह किस किस स्थलको प्रक्षिप्तबतलाते हैं ?

स्वामी दयानन्द आपने पक्षपर कैसे आरूढ़ हैं, इस वार्ताको प्रायः सब लोग जानते हैं, और विशेषर उनका क्रियाकलाप ही समुचित साक्षी देता है । पर आपके किसी प्रश्न का उत्तर न देकर यह हमने लिखा, यह कदापि सत्य नहीं । क्योंकि कहाँ उनका देश विदित-पाण्डित्य, और कहा आपकी अल्पसार बुद्धि ? विज्ञ उनसे जो कुछ देश को सहाय मिला है, और आगे मिलेगा, उसके लिये हम कृतज्ञ और हताश नहीं हो सकते, आप चाहें जितना शोक कीजिये ।

(राधाचरण गोस्वामी *)

——(०)——

मित्रविलासपत्र संख्या १७ खण्ड १ तारीख ५ ११, १८७७ ई० में फिर लिखाहै ।

श्रीयुत श्रीमित्रविलास सम्पादकेषु ।

महाशय,

आपके अक्टूबर २१ के पत्र में श्री राधाचरण गोस्वामी कहते हैं कि दयानन्द सरस्वती नूतन ग्रन्थ निर्माण कर भारतवर्ष में फिरते हैं, और उपदेश करतेहैं,

* जब तक स्वामी दयानन्द सरस्वती जीवित रहे यह गोस्वामी जी इनके शुभचिंतक रहे, लेकिन स्वामी दयानन्द के मरते ही उनके शत्रु हो गये, देखो देशहितैषीपत्र संख्या ५ खण्ड ४ पृष्ठ ६६ श्रावण सम्वत् १९४२ ।

समें हमारा विचार यह है कि, उनका देशोपकार किसी प्रकार सिद्ध नहीं होता, योंकि वे मत और उनका उपदेश केवल जगत् को भ्रष्ट करने को ही है। आप ही बताइए क्या मनु आदि स्मृतियों में इन्द्रादि देवताओं का पूजन नहीं लिखा? अथच वेदों में नहीं लिखा? आपकी समझ में भी क्या जीवित माता पिताका ही श्राद्धादि विदित है? यह सन्यासी अपने "सत्यार्थप्रकाश" में तो लिख चुका है कि, मृत पित्रादिकों का श्राद्ध तर्पण करना तथा देवता पूजन करना मनुष्य को योग्य है। परन्तु अब वही सन्यासी अपने पूर्व कथनको आपही तर्क करके लिखताहै कि मृतकों का श्राद्ध सर्वथा अयोग्य है, और देवता कोई नहीं, विद्वान् मनुष्य ही देवता हैं। इस विषय में सहस्रों श्रुतियें उसकी उक्ति को तिरस्कृत करती हैं। यद्यपि विद्वान् मनुष्य को देवता सदृश कहा है, परन्तु इससे यह नहीं निकलता कि- देवता हैं ही नहीं। भला यदि ऐसा ही है, तो "ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति" इसश्रुति के अनुसार उसके मत में परमेश्वर का भी "चमार" ही कहना चाहिये।

यह सन्यासी जिस सायण माधवाचार्य को, कहता है वेद नहीं आता, उसके तुल्य तो शत जन्म पढ़ता रहे, तो भी सम्भावित नहीं उन जैसा हो जावे। दयानन्द वेदों का नाम लेता है, परन्तु निःसन्देह उसको वेदार्थ नहीं आता। कुछ व्याकरण यद्वा तद्वा अवश्य पढ़ा है, किन्तु पण्डित हम उसको नहीं कहते। यह तो केवल श्रेष्ठ भोजनाच्छादनग्राहनादि अथच अपनी प्रसिद्धि के वास्ते ही फिरता है। कोई विद्वान् तो उसके मत को स्वीकार नहीं करता, आपके बिना। जो अंग्रेजी पाठक होकर अपने सच्छास्त्रों से सर्वथा विमुख हैं, अथच मद्य मांसादि राक्षस भोजनों के इच्छुक होकर अपने धर्म को सुष्ठ प्रकार छोड़ बैठे हैं, ऐसे मनुष्य उसके मत को ग्रहण करते हैं। उसके उपदेश से पहिले ही उनका यही मत है, जब कुछ आश्रय मिला, तो फिर क्या?

पण्डित जी! उन पवन की शुद्ध्यर्थ अग्निहोत्रादि कहा वेद में लिखित है? गंगादि तीर्थ और ब्राह्मण देवताओं की निन्दा कहा वेद स्मृति रामायण भारतादि ग्रन्थों में लिखी है? इससे स्पष्ट है कि वह निरक्षर और वेदों के ब्राह्मण भागों से विरुद्ध वेद का अर्थ लोगों को समझाता है। उक्त सन्यासी से शास्त्रार्थ करके उसको सत्पथ पर लाने के हेतु लाहौर तथा अमृतसर में पण्डित

लोगों ने मिलकर सभाएभी की और नोटिस भी बांटे, परन्तु वह उनमें से एकमभी में भी न आया । इस जगह भी फुगवाड़ा नगरनिवासी प० गोविंदराम, जो यहाँ की सरकारी पाठशालाके अध्यापक हैं, उन्होंने भी "दयानन्द मतमर्दन" ग्रंथ रचा है । पंडित जी उसको शीघ्र ही मुद्रित कराके प्रकाशित करेंगे । आशा है उसको पढ और बोध कर आप अवश्य मान जावेंगे कि दयानन्दमत वास्तव में ही निपिट्ट है । यदि आपको उसका उत्तर कुछ देना हो और गाली प्रदान पर न आना हो तो हम उसका कोई थोड़ा सा विषय लिख भेजते हैं, न्याय करना विद्वान् लोगों का काम है, यह विद्या किसी पाठशाला में पढाई नहीं जाती जहां से हम भी सीख लेते । गोस्वामी छबीलेलाल सच कहते हैं, कि सब विद्वान् लोग उसके मत को खण्डन करते हैं, देखो । संस्कृतज्ञ अंग्रेजों ने दयानन्द के ग्रन्थ का तिरस्कार ही लिखा, तथा काशी के प्रोफेसर मिश्रिय साहब ने तथा इसको छोड कलकत्ता और बम्बई के किसी पंडित ने इसके मत को भला नहीं कहा । वहां भी अनेक पुस्तकें इनके खडन में छपी है । आप उनको देख सकते हैं । दयानन्द शास्त्रार्थ में मध्यस्थ नहीं मानता । यदि आप कृपा करके कोई ऐसा उपाय करें जिससे वह मध्यस्थ को अंगीकार कर ले तो, उसके साथ हम शास्त्रार्थ करने को उद्यत हैं । और ऐसा करनेसे सत्यासत्य बिना किसी अनायास के प्रकट होजावेगा ।

महाराज गोस्वामी जी । अबकलिकाल है । इससे पाखण्ड धर्म बहुत प्रबृत होवे हैं श्रीमद्भागवत के १० स्कन्ध में लिखा है कि

निशामुखे च खद्योता-स्तमसा भान्तिनग्रहाः ।
यथापापेन पाखण्डा न हि वेदा. कलौयुगे ॥ १॥

(लवपुरे) (आपकामित्र प० नत्थूराम)

फिर देखो मित्रविलासपत्र संख्या२० खण्ड १ तारीख २६-११-१८७९१०में लिखा है

श्रीयुत मित्रविलास सम्पादकमहोदयेषु ।

महामहिम !

आपके २६ अक्टूबर के पत्र में परममित्र श्रीराधाचरण गोस्वामी ने जो कोप प्रकट किया यह उनका सर्वथा अनुचित है हम दयानन्द के मत का खण्डन करते थे, कुछ आपके मत का नहीं । जो आप इतने चिढ़े आप तो काले वैष्णव कठीमाला ऊर्द्धपुण्ड्रधारी हैं, परन्तु आपके इस चिढने से ज्ञात हुआ कि आप उस

मतमेंनहीं जिसमें आपके पिता हैं क्योंकि देश हित करना सब अच्छा जानतेहैं परन्तु धर्म्म भ्रष्ट होकर देश हित कोई नहीं चाहता यदि अबके लोगों की परिपाटी यही है कि देशहितैषिता को कलङ्क लगाते हैं, आपभी तो देश हित करते हैं बिन राज काज खराब करते हैं क्यों न हो दयानन्द अकैतव देश भक्त है तुमभी तो निष्कपट देश हित करते हो श्रीमधुसूदन गो० पत्र न देना श्रीसोधनगो० कवित्त न लिख देना यह निष्कपट देशहितैषी लोग करते हैं तुम दयानन्द के मतमें होकर जसे निष्कपट हो तुमारे आचार्य भी ऐसे निष्कपट देश भक्त हैंगे। हमतो नीच बुद्धि हैं पर आपतो गंभीरबुद्धि हैं जो सत्पुरुषों की निन्दा नहीं करते कौन जाने आप किस वश में हैं यह असद्देश होगा आपके दादा जीभी दयानन्द के नामसे कर्णमूल के राधे राधे करतेहैं न जाने उनको तुम आर्य्य धर्म्म क्यों नहीं बताते हमतो पल "आभास" उनके उदाहरणहैं पर आप तो घरकेपूतघवारेडोलें पारोगीकेफेरे' इसका उदाहरण बनते हैं, ॥ दोहा ॥ पण्डितजन का धर्ममर्म्म जानतहैं मतधीर॥ जैसे बाझ न जानती तन प्रसूत की पीर ॥ १ ॥ हमने तो ग्रन्थ देखेभी नहीं पर आपने तो सब पढे हैं इत्यादि०।

(वृन्दावत) (श्रीछबीलेलाल गोस्वामी)

सम्वत् १९३४ के भादों मास में स्वामी जी की पञ्चमहायज्ञविधि भाषार्थ सन्ध्योपासनादि दूसरीवार काशीलाजरस प्रेस में मुद्रित हुई, और स्वामी जी रावल पिंडीमें पधारे। और कलकत्ता संस्कृत कालिज के बडे अध्यक्ष पण्डित महेशचन्द्र न्यायरत्न नामी विद्वान जो स्वामीजीकी वेद भाष्यभूमिकादि पुस्तकोंपर तर्क किये थे उनके उत्तर में "भ्रान्तिनिवारण" नाम पुस्तक लिखा जिसके प्रारम्भ का दिन कार्तिक शुक्ला २ सम्वत् १९३४ है।

रावलपिंडी रहते रहते ही वेदभाष्य भूमिका पूरी हो गई तब स्वामी जी ने मार्गशीर्ष शुक्ला०६ सोमवार से ऋग्वेद भाष्यका आरम्भ किया जैसा कि इस निम्न लिखित श्लोक से विदित होता है।

विद्यानन्दं समवतिचतुर्वेदसमरता वनाया
संपूर्य्येशंनिगमनिलय सप्रणम्याथकुर्वे ।
वेदत्रयङ्केविधुयुतसरेमार्गशुक्लेऽङ्गभौमे च-

ग्वेदस्याखिलगुणगुणिज्ञानदातुर्हिभाष्यम्॥१॥७

स्वामी जी रावलपिंडी में समाज स्थापन करके चंजीरावाद में चले गये ॥ पौष शुक्ला १३ बृहस्पतिवार से यजुर्वेदभाष्य का आरम्भ हुआ था। देखो श्लोक,

यो जीवेषु दधाति सर्वसुकृतज्ञानं गुणरीश्वरस्तं
नत्वा क्रियते परोपकृतये सद्यःसुबोधाय च॥ ऋग्वे-
दस्य विधाय वेगुणगुणिज्ञानप्रदातुर्वरं भा-
ष्यंकाण्यमथोक्रियामययजुर्वेदस्यभाष्यं मया ॥१॥
चतुरब्धयङ्केरङ्केरवनिसहिते विक्रमसरे। शुक्लेपौषे
मासेसितदलभविश्वोन्मिततिथौ ॥ गुरोर्वारे
प्रातःप्रतिपदमतिष्टं सुविदुषां। प्रमाणैर्निर्बद्धं
शतपथनिरुक्तादिभिरपि ॥ २ ॥

वेदभाष्यभूमिका अंक ११ जो माघ सम्वत् १९३५ में प्रकाशित हुई उसके टाईटिल पेजपर लिखितलिखित विज्ञापन मुद्रित कराये थे।

॥ विज्ञापनपत्र पहिला ॥

सब सज्जनोंको विदित हो कि आगे भूमिका केशकलम्बर १९-१३ १४ छपनेको शेषरहेहैं, सो फाल्गुण चैत्र और वैशाखमें छपजावेंगे। इसकेआगे ज्येष्ठमहीनेसेलेकर अंक१ऋग्वेद और अंक १यजुर्वेदके मंत्र भाग के छपा करेंगे, इसमें एकएक अङ्कका १ वर्षमें डाक महसूलसहित रुपये ४) रहेंगे, जो एकऋग्वेद काअङ्कलियाचाहेसो४) रुपये लाजरसकम्पनी काशी वा स्वामीदयानन्द सरस्वतीजीके पास भेजदेवें। और जोकोई यजुर्वेदकाही अंकलिया चाहें सो ४) गतवर्ष केऔर ४) अगले वर्षके भेजदेवें। उनको आरंभसेआजपर्य्यन्त और विक्रम सं० १९३५ के माघपर्य्यन्त प्रतिमास एकएकअंक मिल ताजायगा, और जोदोनो वेद को लिया चाहें वे ८) रुपये भेजदेवें। परन्तु जो ऋग्वे दका अंक लेते हैं और दूसरे यजुर्वेदकाभी भूमिकासहितलिया चाहें वे १२) रुपये आगेके वर्ष के भेजदेवें ऐसे ही जो दोअंक वेदके नवीनग्राहक हों वेभी ८) रुपयेदो

* ऋग्वेद भाष्यके छपने का आरम्भ सम्वत् १९३५ के आश्विनमास से हुआ था।

नीं,नव के भेजें। और जो भूमिका एकतथा मंत्रभाग दोनोंलेवें वे ११) रुपये भेजदेवें। और जो भूमिकारहित दोनों एक त्रिया चाहें वे दोनों वर्षके १६) रुपयेभेजें। और जो केवल भूमिकामात्रलिया चाहें वे ४॥) भेजकर लेवें, ऋग्वेदके १० सूक्तपर्य्यन्त और यजुर्वेदके एकअध्याय पर्य्यन्त का भाष्यसंम्वत् १९३४ महीनामाघकृष्ण १३ गुरुवार तक बनचुका है और भूमिकाभी बनकरतय्यार होगई आगेप्रति दिन मंत्रभाग बनायाजाता है।

॥ विज्ञापन दूसरा ॥

जिन ग्राहकों ने पुस्तक लेकर अबतक दाम नहीं भेजे हैं उनको उचित है कि शीघ्र भेज देवें नहीं तो उनके पास दाम लेनेके लिये पत्रवाला मनुष्य भेजके लियाजायगा। और उसको मार्ग खर्च भी उनसे लियाजायगा इससे उचित है कि वे शीघ्र भेजदेवें। आगे जैसा कागज भाष्यमें अब लगायाजाता है। इससे भी उत्तम मंत्रभाष्यमें लगाया जायगा।

इसवेदभाष्यभूमिका के पृष्ठ २५२ में स्वामीजी ने लिखा है कि तर्पणादिक में विद्यमान अर्थात् कीते हुए जो प्रत्यक्ष हैं उन्हीं में घटता मरे हुओं में नहीं,, *

बजीरायादसे गुजरात होतेहुएस्वामीजी मुलतान पहुचे। और चैत्रके महीनेमें निम्नलिखित विज्ञापन छपवाकर वेदभाष्यभूमिका अंक१२ के टाइटिल पेजपर प्रकाशितकराया।

॥ विज्ञापन पत्र ॥

एक विज्ञापन जोगतमासके अंक ११ में मंत्रभाष्यके नियम विषयमेंदियागया

* स्वामीजीने यह लेख प्रथम वार के छपे 'सत्यार्थ प्रकाश' पृष्ट४२ के प्रतिकूल प्रकाशित किया है और पाठकगणको स्मरणरखनाचाहिये कि स्वामीजी ने प्रथमवार के छपे "सत्यार्थ प्रकाश" में मरे पितृकेश्राद्धकरने का जो उपदेशदिया था उसको छापने वालों की मूलबताने और इसके सिद्ध करने का साहस कर अब से पहिले एक विज्ञापन बना बैठे थे। और उसका कुछ साराश तो वेदभाष्यभूमिका अंक११ पृष्ठ २५२ पर और पूरा लेख ऋग्वेद भाष्य अंक २ के टाइटिल पेजपर मुद्रित करा चुके थे। और यह अंक वैदका मासआश्विन सम्वत् १९३५ में प्रकाशित हुआ था। परन्तु पञ्जाबनिवासी प्रतिकूल मनुष्यों को स्वामीजीने जुबानी कहना इस विज्ञापने का प्रारंभ करदिया था जिसका भावार्थ पंडित नत्थूरामजी के पत्र में झलक रहा है असली विज्ञापने अपने उचित स्थानपर प्रकाशित कियाजायगा।

या था उसमें कुछ भाष्यभूमिका के नियमथे । परन्तु उससे बहुधा सज्जनोंको भ्रम होकर वे लोग इसभाष्यकारके आशयसे विरुद्ध कुछका कुछहीसमझगयेथे । अर्थात् यह जाना कियजुर्वेद की भूमिका पृथक् दूसरी होगी, इसशंकाके निवारणकरनेके अर्थ यहविज्ञापन फिर दियाजाता है, कि भूमिकाचारोवेदोंकी एक हीहै, जोकिछप कर १२ अंकों में ग्राहकों के पास पहुँचचुकी । और शेषरहीहुई आगेवैशाखतक छपकर सम्पूर्णहोजायगी । इसएक भूमिका की कदाचित कोई नवीन वा पुरानाग्राहक फिरलियाचाहे अपने किसी दूसरेविचारसेअथवा दोनोंवेदों में अलग अलगलगानेको सो उनके लिये मूल्यका नियमआगे को बदलदियागया है, दूसरी भूमिका नवीन। कोई नहीं बनती है, शेषनियम जैसे अंक ११ के विज्ञापन में छपे हैं वैसेही ठीकठीक स मझलेना ।

सम्वत् १९३४ में लाहौर, अमृतसर, लुधियाना, शाहजहांपुर आदिकमें आर्य्यसमाज स्थापितहोगये, पजाबदेशमेंस्वामीजी पूरे प्रसिद्धहोगये । वेदभाष्यकेसहायक द्रव्यबानपुरुषभी मिलगये । चारोवेदभाष्य की भूमिका लाजरसकम्पनीप्रेस बनारस में छपनी प्रारम्भहोकर ११ अंक मासिकपत्रके तौरपर प्रकाशितभी होगये, और इसी पजाबदेश की यात्रा करते समय आठदश दिन स्वामीजी मेरठ में भी रहगयेथे ।

अब स्वामीदयानन्दसरस्वतीजी के स्वकपोलकल्पित वेदभाष्य का नमूना और उसपर वर्तमानसमय के विद्वानों की जोकुछसम्मति है कुछथोड़ीसी नीचेप्रकाशकरते हैं सो प्रथम हम स्वामीदयानन्दसरस्वती के स्वकपोलकल्पित वेदों के अर्थभाष्य का नमूने के तौरपर कुछभाग उनके ऋग्वेदसे उद्धृत करते हैं ।

॥ देखोऋग्वेदभाष्यका पृष्ठ ४७ ॥

अश्विनायज्वरीरिषोद्रवत्यागी
शुभस्पती ॥ पुरुभुजाचनस्यतम् ॥

स्वामीजी का किया हुआ इसमत्र का कल्पित अर्थ इस प्रकार है,

हे विद्याके चाहनेवाले (मनुष्यो तुमलोग द्रव्यत्यागी) शीघ्रनेगकानिमित्त पदार्थविद्या के व्यवहारसिद्धकरनेमें उत्तमहेतु (शुभस्पती) शुभगुणों के प्रकाशको पाजने और (पुरुभुजा) अनेकप्रकारपीने के पदार्थों के देनेमें उत्तम हेतु (अश्विना) अर्थात् जल औरअग्नि तथा (यज्वरी) शिल्पविद्या का सबधकरानेवाली (इष)

अपनी चाही हुई अन्न आदि पदार्थों की देने वाली कारीगरीकी क्रियाओं को (धनस्यत) अन्नके समान अति प्रीतिसे सेवनकरो।

॥ इसपर हमारी शंका और तर्क

वेदकाकर्ता ईश्वर है, सो ईश्वरविना ऐसा उपदेश सामाजिक मनुष्यों को क्योंकर मिलसकता है, और ऊपर लिखेमन्त्र का और उसकेउसअर्थका जो (स्वामी जी का किया हुआ ज्यों का त्यों हमने) मंत्र के नीचे लिखदिया है। जो कुछ अंतर है, बुद्धिमानों से छुपाहुआ नहीं है॥ फिर देखो!

॥ ऋग्वेदभाष्यका पृष्ठ ४९ ॥

अश्विनापुरुदंससानराशवीरया धिया ॥
धिष्ण्यावनतंगिरः २

स्वामीजी का किया हुआ इसमन्त्रका अर्थइसप्रकार निम्नलिखित है।

हेविद्वानो तुम लोग (पुरुदससा) जिनसेशिल्पविद्या के लिये अनेककर्म सिद्धहोतेहैं (धिष्ण्या) जोकिसवारियों में वेगादिकों की तीव्रताके उत्पन्न करनेप्रबल (नरा) उस विद्या के फल को देनेवाले और (शवीरया) वेगदेनेवाली (धिया) क्रिया से कारीगरी में युक्तकरने योग्य अग्नि और जल हैं वे (गिर) शिल्पविद्या गुणोंकी बतानेवाली वाणियों को (वनत) सेवनकरनेवाले हैं, इसलिये इनसे अच्छी प्रकार उपकार लेते रहो।

॥ इसपर हमारीशंका और तर्क ॥

वैदिकपरमेश्वर एकमंत्रमें अग्नि जल वायु आदिकोंकेसहारे से शिल्पविद्याका उपदेश करके संतुष्ट नहीं हुआ जो बार बार इसी बात को दुहरायाजाता है असल में इनमन्त्रों में पूर्व ऋषियों ने केवल अग्नि, जल, वायुकोभी देवतासमझकर उनसे प्रार्थना की थी। परन्तु स्वामीजीने अग्नि और जलको शिल्पविद्याके संग मिश्रतकर दिया। परन्तु कहलावतप्रसिद्ध है झूठके जड नहीं यह नसमझेकि इसमंत्र में जब परमेश्वर हे विद्वानो! ऐसा कहताहै तोयहसिद्धहोताहैकि जब ईश्वरने यहवेदरचे तब विद्वानमनुष्य विद्यमानथे जिनकोपरमेश्वरने "हे विद्वानो" ऐसा कहा, परन्तु दूसरी ओर स्वामीजीका यह उपदेश है कि सृष्टिकी आदिमें मनुष्यमात्र केवल अज्ञानी थे

चरहीथे, उस समय ईश्वरने वेदरचेथे, और इसमंत्रसे पहिलेपहिले दसवारहमने जो परमेश्वर सुनाचुकाथा उनके सुननेसे कोई विद्वान कहला नहीं सकताथा ॥फिरदेखो॥

ऋग्वेदभाष्य पृष्ठ-१०३ ।

देवयंतो यथामतिमच्छाविदद्व सुंगिरः ॥

महाननूषत्श्रुतम् ६

स्वामीजी का कियाहुआ इसमंत्रकाअर्थ निम्नलिखित है ।

जैसे (देवयन्त) सत्य विज्ञानयुक्त (गिर:) विद्वानमनुष्य (विदद्वसुम्) सुखकार कपटार्थ विद्यायुक्त (महाम्) अत्यतबडी (मतिम्) बुद्धि (श्रुतम्) सबशास्त्रोंके श्रवण और कथनको (अच्छा) अच्छीप्रकार (अनूषत) प्रकाशकरते हैं, वैसे ही अच्छीप्रकार साधनकरने से वायुभी शिल्प अर्थात् सबकारीगरी को (अनूषत) सिद्धकरते हैं ।

॥ इसपर हमारीशंका और तर्क ॥

अगीतो परमेश्वर ने केवल थोडेहीमंत्र चारऋषियोंकोसुनाये थे यहइननेविद्वान् सर्वशास्त्रोंके कथन तथाप्रकाशकरने वाले और कहासेउत्पन्न होगये ? और "सब शास्त्र" ऋग्वेदकेथोडेसेहीमंत्र प्रकटहोते ही कहाँ सेआगये ? फिरदेखो ।

॥ ऋग्वेदभाष्य पृष्ठ १२४ ॥

ऐन्द्रसानसिंरयिसजित्वानंसदासहम् ॥

वर्षिष्ठमूतयेभर ॥ १ ॥

स्वामीजीकाकियाहुआ इसमंत्रका अर्थ निम्नलिखित हैं ।

हे (इन्द्र) परमेश्वर आपकृपाकरके हमारी (ऊतये) रक्षादृष्टि और सबसुखोंकीप्राप्ति केलिये (वर्षिष्ठ) जोअच्छीप्रकार वृष्टिकरनेवाला (सानसि) निरन्त सेवनेकेयोग्य (सदासह) दुष्टशत्रु तथाहानि वा दु खोंकेसहनेकामुख्यहेतु (सजित्वान) और तुल्यशत्रुओंका जितानेवाला (रयिं) धन है उसको (आभर) अच्छी प्रकार दीजिये ।

॥ इसपर हमारीशंका और तर्क ॥

धर्मोन्नति और ससारके सम्पूर्णसुखकेदेनेमें द्रव्य (धन) भी मुख्यहै इसलिये स्वामीजी ने वेदपरमेश्वरकेमुखसेभी धनकीप्रशसा और प्रार्थनाकरादी क्यों नहीं कराया

ऐसी होवस्तु है, जिसकी दीक्षिमालिकाकेदिन भारतवर्ष में प्रचुरपूजनहोता है, धन्य महाराज, धन्य!धन्य!! धन्य!!! ॥फिरदेखो।

॥ ऋग्वेदभाष्य पृष्ठ १२६ ॥

इन्द्रत्वोतासआवयवज्रं घनाददीमहि॥
जयेमसंयुधिस्पृध॥३॥

स्वामी जीका किया हुआ इसमंत्रका अर्थ निम्नलिखित है ॥

हे (इन्द्र) अनन्तबलवान ईश्वर (त्वोतास) आपके सकाश से रक्षा आदि और बलको प्राप्त हुए (वय) हम लोग धार्मिक और शूरवीर होकर अपने विजय के लिये (वज्र) शत्रुओं के बलका नाश करने का हेतु आग्नेयास्त्रादि अस्त्र और (घना) श्रेष्ठ शस्त्रों का समूह जिनको कि भाषा में 'तोप' 'बन्दूक' 'तलवार और धनुष्यबाण आदि करके प्रसिद्ध कहते हैं जो युद्ध की सिद्धि में हेतु हैं उनको (आददीमहि) ग्रहण करते हैं, जिस प्रकार हम लोग आपके बलका आश्रय और सेना की पूर्ण सामग्री करके (स्पृध) ईर्षा करने वाले शत्रुओं को (युधि) संग्राम में (जयेम) जीवें।

॥ इसपर हमारी शंका और तर्क ॥

स्वामी जी धन की इच्छा इस लिये करते हैं कि उससे घोड़ों के रिसाले हाथियों के तोपखाने ऊंटों की फौज (सेना) भरतीकर शत्रुओं पर विजय पावें। इसी अभिप्राय से उक्तमन्त्र में तोप, बन्दूक तलवार और धनुषबाण के लिये प्रार्थना की गई है।

सृष्टि की आदि में सचमुच तोप और बन्दूक अस्त्र बनने लग गई होंगी। नहीं तो मन्त्र देते समय ईश्वर ने ऋषियों के अनुसार आपही तोप बन्दूक आदि कभी बना कर और आपधारण करके निजप्रिय चारो ऋषियों को उनके स्वरूप का दर्शन करा बनाने की क्रिया भी अवश्य बतलादीहोगी। और आश्चर्य्य नहीं जो कुछ दारू भी बना कर उनका भरना चलानाभी बता दिया हो, और 'दनादन' तोप चला कुछ मनुष्यों को वध करके भी दिखलाया हो कि इस भांति शस्त्र चलाकर शत्रुओं को मारा करते हैं।

आहा ! वे परमेश्वर को अपने हाथ की बनाई तोप आज कल की तोपों अमरीका चीन आदिक की बनी हुई तोपों से कैसी विलक्षण होंगी, हमारा विचार है कि पर्वतों की गुफा आदिक में खोज करावेंगे और यदि परमेश्वर की बनाई हुई कोई भी तोप मिल गई तो स्वामी जी का पक्ष हर्ष सहित ग्रहण करेंगे।

क्या आजकल के अनेक मूर्ख मनुष्य शीतला, वाराही, सेढ, शीली आदिक से उपरोक्त प्रार्थना नहीं करते, परन्तु क्या उनकी प्रार्थना को कोई ईश्वर का वचन कह सकता है, ? बिल्कुल भूलकर भी नहीं।

प्यारे पाठकगण ! यह वेद मंत्रों का कल्पित अर्थ बनाकर स्वामी जी ने अपनी इन्द्रजाल विद्याका क्या ही उत्तम नमूना दिखलाया है, यदि यही मान लिया जावे कि प्रथम समय के आचार्यों का किया हुआ वेद भाष्य तो असंभव और स्वामी जी का किया हुआ यथार्थ है तो उस वर्ष शक्तिमान परमेश्वरकी अपार महिमा और निर्गुण गुणों को जो कलंक लगता है वह बुद्धिमानों से कुछ छिपा हुआ नहीं है।

यूरोपदेश के सुप्रसिद्ध विद्वान महामान्य डाक्टर मोक्षमुलर ने जो चिट्ठी बम्बई के मिस्टर मलाबरी के नाम भेजी और तारीख २ फर्वरी सन् १८८२ ई० में वह चिट्ठी एक्सफोर्ड से रवाना हुई थी, उसमें और २ समाचार के अतिरिक्त यह भी लिखा था कि *

"मैं आपको दो प्रकार के उपद्रवों से बचाया चाहता हूँ"

प्रथम यह कि पिछले समय से जो सनातन धर्म्म प्रचलित है उसका आदर करना या उससे घृणा करना जैसा कि आज कल के बहुधा उन तरुण हिन्दुस्तानियों का हाल है जो आधे यूरोपियन बन गये हैं।

द्वितीय धर्म्म और धर्म्म ग्रन्थों का आदर सत्कार भी अधिकता सहित करना अथवा उनके अर्थ बदलकर ऐसा अर्थ सिद्ध करना जिसका उनके कर्ता को स्वप्न में भी ज्ञान न था। और जिसका उदाहरण अत्यन्त हानिकारक दयानन्द सरस्वती का किया हुआ वेदभाष्य विद्यमान है।

वेदों का एक प्राचीन और ऐसा मनोहर इतिहास स्वीकारकरो कि जिसमें

* देखो उर्दू धर्म जीवनपत्र लाहौर तारीख ६ मई सन् १८८८ ईस्वी नम्बर १८ जिल्द ६ पृष्ठ १४० में।

विषय शृङ्खलित हैं जो प्राचीन समय के सम दृष्टि और भोले भाले मनुष्यों के आचरणों से मिलते हैं, और फिर तुम उनकी यथार्थ प्रशंसा कर सकोगे। और उनमें विशेष कर उपनिषदों का पठन पाठन वर्तमान समयके लिये प्रचलित रख सकोगे। परन्तु इसके व्यतिरिक्त यदि इसमें से धुआ के अंजन तार, तोप, बन्दूक आदिक अंग्रेजी शिल्प का भावार्थलोगे तो उनकी विख्यातता और सत्यता का नाश करोगे और ऐसा करने से इतिहास की वह ग्रंथी खण्डित होती है, जिसके द्वारा भूतकाल का सम्बन्ध वर्तमान से हो रहा है, भूतको सत्य समझ कर स्वीकार करो और उसका राज करो, समझने का परिश्रम उठाओ जिससे भविष्य के पहचानने में अधिक कठिनाई न पड़े।

स्वामीदयानन्द सरस्वतीके शिष्य गोपाल शास्त्रीजीने जो दयानन्द दिग्विजयार्क पुस्तक छपवाई उसके द्वितीय खण्ड के पृष्ठ ४० में यह लिखा है।

अब वेदों के नित्यत्व विचार के उपरान्त वेदों में कौन २ विषय किस २ प्रकार के हैं इसका विचार किया जाता है वेदों में अवयवरूप विषय तो अनेक हैं परन्तु उनमें चार मुख्य हैं (१) एक विज्ञान अर्थात् सब पदार्थों को यथार्थ जानना, (२) दूसरा कर्म, (३) उपासना, और (४) ज्ञान है विज्ञान उसको कहते हैं कि जो कर्म उपासना और ज्ञान इन तीनों में यथावत् उपयोग लेना और परमेश्वर से लेकर तृण पर्य्यंत पदार्थों का साक्षाद्बोध का होना उनसे यथावत् उपयोग का करना इनसे यही विषय इन चारों में भी प्रधान है, क्योंकि इसी में वेदों का मुख्य तात्पर्य्य है सो भी दो प्रकार का है, एक तो परमेश्वर का यथावत् ज्ञान और उसकी आज्ञा का बराबर पालन करना और दूसरा यह कि उसके रचे हुए सब पदार्थों के गुणों को यथावत् विचार के उनसे कार्य्य सिद्धि करना अर्थात् ईश्वर ने कौन पदार्थ किस २ प्रयोजन के लिए रचे हैं, और इन दोनों में से भी ईश्वर का जो प्रतिपादन है सो ही प्रधान है इसमें आगे कठवल्ली आदि के प्रमाण लिखते हैं, [सर्वेवेदायत्पदमामनन्तितपांसिसर्वाणिचयद्वदन्ति। यदिच्छन्तोब्रह्मचर्य्यं चरन्तितत्तेपदंसंग्रहेणब्रवीम्योमित्येतत् ॥ कठोपनि० वल्ली० २ मन्त्र १५ ॥] परमपद अर्थात् उसका नाम मोक्ष है, जिसमें परब्रह्म को प्राप्त होके सदा सुख में ही रहता जो सब आनन्दों से युक्त सब दुःखों से रहित और सर्वज्ञतिमान

परब्रह्म है, जिसके नाम (ॐ) आदि हैं, उसी में सब वेदों का मुख्य तात्पर्य है, इसमें योगसूत्र का भी प्रमाण है (तस्यवाचकः प्रणवःयोगशास्त्रे । अ० १ पा० १ सू० २७) परमेश्वरही का ओंकार नाम है, (ॐ खत्रह्मगजु० अ० ४०) तथा (ओमितिब्रह्मतैतिरीयारण्यके । प्र० ७ अनु० ८ ॥) ओं और खं ये दोनों ब्रह्म के नाम हैं और उसी की प्राप्ति कराने में सब वेद प्रवृत्त हो रहे हैं, जिसकी प्राप्ति के आगे किसी पदार्थ की प्राप्ति उत्तम नहीं है क्योंकि जगत् का वर्णन दृष्टान्त और उपयोगादि का करना ये सब परब्रह्म को ही प्रकाशित करते हैं तथा सत्यधर्मके अनुष्ठान जिनको तप कहते हैं वे भी परमेश्वरकोही प्राप्ति के लिये ब्रह्मचर्य्य गृहस्थ वानप्रस्थ और सन्यास आश्रम के सत्याचरण रूप जो कर्म हैं वे भी परमेश्वर की ही प्राप्ति कराने के लिए हैं जिस ब्रह्म की प्राप्ति की इच्छा करके विद्वान् लोग प्रयत्न और उसी का उपदेश भी करते हैं । नचिकेता और यम इन दोनों का परस्पर यह संवाद है कि हेनचिकेतः जो अवश्य प्राप्ति करने के योग्य परब्रह्म है उसी का मैं तेरे लिये संक्षेप से उपदेश करता हूं और यहां यह भी जानना उचित है कि अलङ्कार रूप कथा से नचिकेता नाम से जीव और यम से अंतर्यामी परमात्मा को समझना चाहिए (तत्रापरा ऋग्वेदोयजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्ष्याकल्पो व्याकरण निरुक्तछन्दोज्योतिषमिति । अथपरायया तदक्षरमधिगम्यते यतदद्रश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुश्रोत्रतदपाणिपादमित्य विभुंसर्वगतसुसूक्ष्मतदव्ययं यद्भूतयोनिंपरिपश्यन्ति धीरा ॥ २ ॥

मुण्डके १ खण्डे १ म० ५ । ६ ॥] वेदों में दो विद्या हैं एक अपरा दूसरी परा इनमें अपरा यह है कि जिससे पृथ्वी और तृण से लेकर प्रकृति पर्य्यन्त पदार्थों के गुणों के ज्ञानसे ठीक २ कार्य सिद्ध करना होता है, और दूसरी परा कि जिससे सर्वशक्तिमान ब्रह्म की यथावत प्राप्ति होती है, यह परा विद्या अपरा विद्या से अत्यन्त उत्तम है, क्योंकि अपरा का ही उत्तम फल परा विद्या है । और इस विषय में ऋग्वेद का प्रमाण है कि (तद्विष्णो परमपदसदापश्यन्तिसूरयः । दिवीचक्षुराततम् ॥ १ ॥ ऋग्वेदे । अष्टके १ अध्याये २ वर्गे ७ मन्त्र ५ ॥) (विष्णु) अर्थात् व्यापक जो परमेश्वर है उसका (परम) अत्यन्त उत्तम आनन्द स्वरूप (पद) जो प्राप्ति होने के योग्य अर्थात् जिसका नाम मो

उसको (सूरय) विद्वान् लोग (सदापश्यन्ति) सब काल में देखते हैं यह
ना है कि सब में व्याप्त हो रहा है, और उसमें देशकाल और वस्तु का भेद नहीं
अर्थात् उस देश में है, और इस देश में नहीं तथा उस काल में था और इस
ल म नहीं उस वस्तु में है, और इस वस्तु में नही इसी कारण से वह पद सब
गह मे मय को प्राप्त होता है क्योंकि वह ब्रह्म सब ठिकाने परिपूर्ण है, इसमे
दृष्टान्त है कि (दिवीवचक्षुराततम) जैसे सूर्य्य का प्रकाश आवर्ण रहित
ाकाश में व्याप्त होता है और जैसे उस प्रकाश में नेत्र की दृष्टि व्याप्त होती है
सी प्रकार परब्रह्म पद भी स्वय प्रकाश सर्वत्र व्याप्तवान् हो रहा है उस पद की
प्ति से कोई भी प्राप्ति उत्तम नहीं है, इस लिए चारो वेद उसी की प्राप्ति कराने के
ाए विशेष करके प्रतिपादन कर रहे हैं इस विषय में वेदांतशास्त्र म व्यास मुनि के
ूत्र का भी प्रमाण है (तत्समन्वयात्) सब वेद वाक्यो में ब्रह्म का ही विशेष
र के प्रतिपादन है कहीं २ साक्षात् रूप और कहीं २ परपरा से इसी कारण से
ह परब्रह्म वेदों का परमअर्थ है, तथा इस विषय में यजुर्वेद का भी प्रमाण है कि
यस्मान्नजा०) जिस परब्रह्म से (अन्य) दूसरा कोई भी (पर) [उत्तमपदार्थ
जात) प्रकट (नास्ति) अर्थात नहीं है (यआविवेशभु०) जो सब विश्व अर्था-
[सब जगह में व्याप्त हो रहा है, (प्रजापति प्र०) वही सब जगत् का पालन-
र्त्ता और अध्यक्ष है जिसने (त्रीणिज्योतीषि) अग्नि सूर्य और बिजली इन तीन
योतिषों को प्रजा के प्रकाश होने के लिए (सचेत) रच के सयुक्त किया है और
जिसका नाम (षोडशी) है अर्थात् (१) ईक्षण जो यथार्थ विचार (२) प्राण जो कि
सब विश्वका धारण करनेवाला (३) श्रद्धा सत्यमें विश्वास (४) आकाश (५) वायु (६) अग्नि
(७) जल (८) पृथ्वी (९) इंद्रिय (१०) मन अर्थात् ज्ञान (११) अन्न (१२)
वीर्य्य अर्थात् बल और पराक्रम (१३) तप अर्थात् धर्मानुष्ठान सत्याचार
(१४) मन्त्र अर्थात् वेदविद्या (१५) कर्म अर्थात् सत्यचेष्टा (१६) नाम अर्थात् दृ-
श्य और अदृश्य पदार्थों की सज्ञा येही सोलहकला कहाती हैं, ये सर्वेश्वर होनेकी-
चमें हैं इससे उसको षोडशी कहते हैं, इनषोडशकलाओंका प्रतिपादन प्रश्नोपनिषद्के
छठेप्रश्नमें लिखाहै इससेपरमेश्वरही वेदोंका मुख्यअर्थ है, और उससेपृथक् जोयह
जगत है सोवेदों का गूढ अर्थ है और इनदोनोंसे प्रधानका ही ग्रहण होता है
र से क्या आया कि वेदों कामुख्यतात्पर्य्य परमेश्वरहीके प्राप्तिकराने और प्रतिपाद-

में वेदों के कर्ता त्रिकालदर्शी ईश्वर ने भूत भविष्य वर्तमान तीनों कालोंके व्यवहारों को यथावत् जान के कहा है कि वेदों को पढ के जो विद्वान् हो चुके हैं, वा जो पढ़ते हैं वे प्राचीन और नवीन ऋषि लोग मेरी स्तुति करें, तथा ऋषिनाम "मन्त्र" "प्राण" और तर्क का भी है, इनसे ही मेरी स्तुति करनी योग्य है, इसी अपेक्षा से ईश्वर ने इस मन्त्र का प्रयोग किया है, इससे वेदों का सनातनपन और उत्तमपन तो सिद्ध होता है किंतु उन हेतुओं से वेदों का नवीन होना किसी प्रकार सिद्ध नहीं हो सकता। इसी हेतु से डाक्टर मोक्षमूलर साहब का कहना ठीक नहीं।

इसमें विचारना चाहिये कि वेदों के अर्थ को यथावत् विना विचारे इनके अर्थ मे किसी मनुष्य को हठ से साहस करना उचित नहीं क्योंकि जो वेद सब विद्याओं से युक्त हैं अर्थात् उनमें जितने मन्त्र और पद हैं वे सब सम्पूर्ण सत्य विद्याओं के प्रकाश करने वाले हैं, और ईश्वर ने वेदोंका व्याख्यान भी वेदों से ही कर रक्खा है क्योंकि उनके शब्द धात्वर्थ के साथ योग रखते हैं इसमें निरुक्त का भी प्रमाण है जैसा कि यास्क मुनि ने कहा है (तत्प्रकृतीत०) इत्यादि वेदों के व्याख्यान करने के विषय में ऐसा समझना कि जब तक सत्य प्रमाण सुतर्क वेदों के शब्दों का पूर्वापर प्रकरणों, व्याकरण आदि वेदाङ्गों, शतपथ आदि पूर्वामीमांसा आदि शास्त्रों और शास्त्रान्तरों का यथावत् बोध न हो और परमेश्वर का अनुग्रह उत्तम विद्वानों की शिक्षा उनके संगसे पक्षपात छोड के आत्मा की शुद्धि न हो तथा महर्षि लोगों के किये व्याख्यानों को न देखे तब तक वेदों के अर्थ का यथावत् प्रकाश मनुष्यों के हृदय मे नहीं होता। इसलिए सब आर्य्य विद्वानों का सिद्धान्त है कि प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे युक्त जो तर्क है वही मनुष्योंके लिए ऋषिहै इससे यह सिद्ध होता है कि जो सायणाचार्य्य और महीधरादि अल्प बुद्धि लोगोंके व्याख्यानो को देख के आजकल के आर्य्यावर्त और यूरुप देश के निवासी लोग जो वेदों के ऊपर अपनी २ देश भाषाओं में व्याख्यान करते हैं वे ठीक २ नहीं हैं और उन अनर्थयुक्त व्याख्यानों के मानने से मनुष्यों को अत्यन्त दुःख प्राप्त होता है इससे बुद्धिमानों को उन व्याख्यानो का प्रमाण करना योग्य नहीं तर्क का नाम ऋषि होने से सब आर्य्य लोगों का सिद्धान्त है कि सब कालो में अग्नि जो परमेश्वर वही उपासना करने के योग्य है।

तथा उसी दिग्विजयके पृष्ठ २४ पर दयानन्दजी वेदों की उत्पत्ति का समय इस प्रकार लिखते हैं कि—

एक बृन्द छियानवे करोड आठ लाख बावन हजार नौ सो छिहत्तर अर्थात् (१९६०८५२९७६) वर्ष वेदों की और जगत् की उत्पत्ति में हो गये हैं और यह सम्वत् १९३३ सतहत्तरवां वर्ष वर्त रहा है।

(प्रश्न) यह कैसे निश्चय हो कि इतने ही वर्ष वेद और जगत् की उत्पत्ति मे बीत गए हैं ?

(उत्तर) यह जो वर्तमान सृष्टि है इसमे सातवें (७) वैवस्वत मनु वर्तमान हैं, इससे पूर्व छ मन्वन्तर हो चुके हैं, स्वायम्भुव (१) स्वारोचिष (२) उत्तम (३) तामस (४) रैवत (५) चाक्षुष (६) ये छ तो बीत गये हैं, और सातवा वैवस्वत वर्त रहा है, और सावर्णि आदि ७ मन्वन्तर आगे आवेंगे ये सब मिल के १४ मन्वन्तर होते हैं, और इकहत्तर चतुर्युगियों का नाम मन्वन्तर रक्खा गया है। और ४३२०००० वर्ष की एक चतुर्युगी होती है, इस सख्या को प्रथम ७१ से फिर ६ से गुणा करने से जो हो उसमें २७ चौकडी और १ सत्य-युग १ त्रेता १ द्वापर और चलते हुए कलियुग की गई वर्षों को जोड देने से वेद और सृष्टि की उत्पत्ति का ठीक काल निकल आवेगा और ४३२००० वर्ष का कलि इससे दूना द्वापर त्रिगुना त्रेता चौगुना सत्ययुग होता है, और विक्रमी स० १९३७ के समाप्ति पर ४९८२ वर्ष हाल के अर्थात् २८ वें कलि की भुगत चुकी क्योंकि यह दिग्विजय स० १९३८ मे बना है इससे जो अध्यापक विल्सन साहब और अध्यापक मोक्षमूलर साहब आदि यूरोपखण्ड के वासी विद्वानों ने बात कही है कि वेद मनुष्य के रचे हैं किंतु श्रुति नहीं हैं उनकी यह बात ठीक नहीं है, और दूसरी यह कि कोई कहता है (२४००) चौबीस सौ वर्ष वेदों की उत्पत्ति को हुए कोई (२९००) उनतीस सौ वर्ष कोई (३०००) तीन हजार वर्ष और कोई कहता है (३१००) इकतीस सौ वर्ष वेदो को उत्पन्न हुए बीते हैं, उनकी यह बात भी झूठी है, क्योंकि इन लोगों ने हम आर्य लोगों की नित्यप्रति की दिनचर्या का लेख और सकल्प पठन विधा को भी यथावत् न सुना और न विचारा है नहीं तो इतने ही विचार से यह भ्रम उनको नहीं होता इससे यह अ-

वश्य जानना चाहिए कि वेदो की उत्पत्ति परमेश्वर से ही हुई है, और जितने वर्ष अभी ऊपर गिन आये हैं उतने ही वर्ष वेदो और जगत् की उत्पत्ति में भी हो चुके हैं इससे क्या सिद्ध हुआ कि जिन २ ने अपनी २ देशभाषाओं में अन्यथा व्याख्यान वेदो के विषय में किया है, उन २ का भी व्याख्यान मिथ्या है क्योंकि जैसा प्रथम लिख आए हैं जब पर्यन्त उतना काल व्यतीत हो चुकेगा, तब पर्यंत ईश्वरोक्त वेद का पुस्तक यह जगत् और हम सब मनुष्य लोग भी ईश्वर के अनुग्रह से सदा वर्तमान रहेंगे ।

इस पर आर्य्यतत्वप्रकाश व्याख्यान पहिला पृष्ट ७ पंक्ति७में यह लिखाहै।

वेदों की प्राचीनता के विषय में विचार करने के पहिले हम उन पुस्तकों की सूचना लिखते हैं जिनको पंडित दयानन्द ने सच्चा माना है, और जिन पर उन्होंने आर्य्यमत की नीवडाली है । इस लिये हमारे विवाद की नीव भी उन्हीं पुस्तकों पर होगी और जहा कहीं आवश्यकता होगी वहा उन्हीं पुस्तकों की बातें हम भी सग्रह करेंगे ।

अब हम उन पुस्तको के नाम लिखते हैं ।

(१) पहिले चारवेद अर्थात् १ ऋग्वेद २ यजुर्वेद ३ सामवेद ४ अथर्ववेद जिन्हे आर्य्य लोग ईश्वर का वचन और अनादि मानते हैं ।

(२) चार ब्राह्मण १ ऋग्वेदका ऐतरेय २ यजुर्वेदका शतपथ ३ सामवेदका ताण्डय महाब्राह्मण ४ अथर्ववेद का गोपथ ।

(३) ग्यारह उपनिषद अर्थात् १ ईश २ केन ३ कठ ४ प्रश्न ५ छान्दोग्य ६ बृहदारण्यक ७ मुण्डक ८ माण्डूक्य ९ श्वेत १० तैत्तरीय ११ ऐतरेय ।

(४) छ अग १ शिक्षा २ कल्प ३ व्याकरण४निरुक्त ५ छन्द ६ ज्योतिष ।

(५) पाचवाँ मनुसहिता ।

(६) छ दर्शन अर्थात् १ न्याय २ वैशेषिक ३ सांख्य ४ पातजलि ५ पूर्व मीमामा ६ उत्तरमीमासा ।

सत्यार्थप्रकाश में दयानन्द जी ने इन पुस्तको को सत्य माना है, तो सब उनके अनुयायियों को भी ऐसा ही जानना चाहिये । उन्होंने वेदों पर अपनी टीकामें भी बहुधा इन्हीं पुस्तको की बातों का संग्रह किया है ।

अब हम उन प्रमाणों का वर्णन करते हैं, जिन्हें आर्य्य लोग वेदों की प्राचीनता में देते हैं, और उनके खंडन में प्राचीन बड़े बड़े नामी पण्डितों की बातों को हम वर्णन करेंगे जो दो हजार से अधिक वर्ष बीता होगा कि वे वर्तमान थे जिससे आर्य्य लोग यह न समझें कि हमने आपकी गढंत की है। और इसी लिये हम उन बातों को यहां वर्णन नहीं करते जिनको अन्य देशीय लोगों ने निर्णय करके अपनी पुस्तकों में लिखी हैं हम केवल इसी भारत देश की नामी और उत्तम प्रसिद्ध पुस्तकों ही की प्रामाणिक बातें लिखेंगे।

दयानन्द जी ने मनुजी के वचनों से बहुत सम्बद किया है और उनको बड़ा प्रमाणिक ठहराया है। इस कारण अब यह प्रश्न हो सकता है कि मनुजीकी बातें विश्वासयोग्यहैं वा नहीं। वह अपनी संहितामें लिखतेहैंकि जब पहिले सतयुगके १० हजार वर्ष बीत गये थे और भादों मास के पन्द्रह दिन बीत गय तब हमने यह धर्म्मशास्त्र समाप्त किया और ब्रह्मा की आज्ञा से यह बनाया।

इस प्रकार मनुसंहिता को बनाए हुए बहुत ही वर्ष बीते हैं, परन्तु यह आश्चर्य्य की बात है कि उस पुस्तकमें उन राजाओं और ऋषियों का वर्णन है जो कि बहुत थोड़ा ही समय बीता होगा कि इस संसार में वर्तमान थे। राजाओं में तो ययाति नहुष पृथुइत्यादि। ऋषियों में विश्वामित्र, अजीगर्त वसिष्ठ और भारद्वाजका वर्णन है।

आश्चर्य्य यह है कि उस पुस्तक में इन लोगों के नाम लिखेहैं जो इस समय से जिसमें उनका लिखा जाना संभव था सैकड़ों वर्ष पीछे रहे हैं। जब पण्डित दयानन्द जी आश्चर्य्य बात का संभव होना नहीं मानते तो यह क्योंकर हो सकता है आर्य्यों को इस अद्भुत बातको मानना अथवा मनुजीका प्रमाण छोड़ना चाहिये। और यदि वह इस असंभव बात को मान लें तो उन्हें मनुजी की दूसरी आश्चर्य्य बातों को भी अंगीकार करना पड़ेगा। उनमें से एक उत्तम उदाहरण हिरण्य कश्यप नामक दैत्य है मनुजी इस दैत्य के विषय में इस प्रकार वर्णन करते हैं कि वह ऐसा ऊंचा था कि उसकी कमर सूर्य्य के बराबर पहुंचती थी और उसका शेष शरीर सूर्य्य से आगे निकला जाता था। मनुजी के वचनों का प्रमाण तो बस इसी में प्रकट हो गया।

बिना किसी दूसरे दृढ प्रमाण के वेदों की साक्षी अपने निज विषय में नहीं मानी जा सकती । मनुजी ने वेदों के बहुत पीछे अपनी संहिता लिखी है भला वह वेदों के विषय में क्योंकर प्रमाण दे सकते हैं क्योंकि वह आपही उसके आरम्भ में नहीं थे कि जो कुछ हुआ सो देखते । सम्पूर्ण प्रमाण जो आर्य्य लोग देते हैं वह केवल वेदों और मनुजी से ही है । कोई और प्रमाण वे नहीं दे सकते हमने उनका उत्तर तो ठीक दे दिया है ।

वेदों की अत्यन्त प्राचीनता के विषय में आर्य्य लोगों के प्रमाण और तर्क के विषय में इतना ही कहना पर्याप्त है कि वह समय जो आर्य्य लोग कहते हैं अनुमान से विरुद्ध और इतिहास से विरुद्ध है ।

वेदों में से सबसे प्राचीन ऋग्वेद है और तीन वेद उससे पीछे हुए हैं और यथार्थ में उन तीन वेदों के बहुत स्थानों में उसीमेंसे लिये गयहैं इसकारण अबहम ऋग्वेदकी प्राचीनता पर विचार करते हैं । इस वेद का पहिलामन्त्र विश्वामित्रके पुत्र मधुछन्दस्का रचित है और अन्तकामन्त्र अघमर्षण नामक ऋषि का बनायाहुआहै । इसकारण ऋग्वेद उससमयका रचाहुआहै जबकि मधुछन्दस् और अघमर्षण वर्तमानथे क्योंकि आदिमन्त्र और अंतकेमन्त्रके यही रचनेवाले हैं ।

बीचके भाग बहुतसे ऋषियोंके बनायेहुएहैं । हमअन्तमें उनके नाम और वेदों केमन्त्रोंकी सूचनालिखेंगे * जिसने जो बनाया सो प्रकट करदेनेके लिये ।

मधुछन्दस्ऋषि जिसने पहिलामन्त्र बनाया रामचन्द्रजीके समय वर्तमान थे । इसकारण ऋग्वेदके आरम्भकासमय प्रकट होगया । रामचन्द्रजीसे सुमित्रतक ५६ पीढ़ियाँ और ११२० वर्षका समय निकलता है । इसमें विक्रमादित्यसे आजतक का समय अर्थात् सम्वत् मिलानेसे विदित होताहैकि अबतक ३०६२वर्षहोतेहैं जबकिऋग्वेदका आरम्भ हुआथा । ऋग्वेदके दूसरेभागमें पराशरऋषिके मंत्र हैं और यहबात जाननाकि वह किससमयमेंवर्तमानथे बहुतही सरल है क्योंकि व्यासजी एकबड़ेना मी विद्वानहुए हैं । व्यासजीने एकअतिउत्तम और बहुत प्रसिद्ध ग्रन्थबनायाहै जिस कानाम वेदान्तदर्शन है । व्यासजीने अपनी पुस्तकमें ऐसी— मुख्य बातोंका वर्णन किया है जिससे हमको ठीक ठीक विदित होजाता है कि वह किस समय में थे ।

वेदात दर्शनके दूसरेअध्याय पाद २ सूत्र ३३ से ३८ सूत्रतकमें व्यासजीने यौ

* यह नाममाला दूसरे भागमें छपेगी ।

इनकी बातोंका वर्णन किया है। अबहम जानते हैं कि बुद्धजी विक्रमादित्य के जन्मसे ८७५ वर्ष पहिले हुए हैं और ईशूमसीहसे ६३२ वर्ष पहिले। उस समय राजा चन्द्रगुप्त राज्यकरताथा। इसप्रकार हम बुद्ध जीका समय जानकर व्यासजीकी ओरचलते हैं हा यहतो है कि वह बुद्धजाके पीछे हुए हैं क्योंकि उन्होंने बौद्धमत का खण्डनलिखा है। पतजलि ऋषिने एकपुस्तक बनाई है जिसका नाम ,योगदर्शन है उसमे उन्होंने पाणिनि के व्याकरणके अध्याय २ पाद ४ सूत्र २३ पर टीकाकरतेहुए कहा हैंकि राजाको ऐसी सभा नियुक्त करनी चाहिये जैसी राजा चन्द्रगुप्तने की है। यों हम देखते हैंकि पतजलिने अपने योगदर्शन मे राजा चन्द्रगुप्त की चर्चा की है और फिर व्यासजीने इसी पुस्तक पर व्याख्या लिखी है इसकारण इसीसे अत्यन्त प्रगट होता है कि व्यासजी बुद्ध और राजा चन्द्रगुप्तके पीछे हुए हैं परन्तु उनके पिता पराशरऋषि ठीक उससमयके लगभग वर्तमानथे। अब ऋग्वेद के अन्त भाग में पराशर के मन्त्र हैं इसकारण ऋग्वेद का समय लगभग उससमय के ठहरता है अथवा उन दूसरे शब्दोंसेभी वही समय सिद्धहोता है जिनके अर्थ उसी प्रकारके हैं। यदि आजतक हम वहवर्ष जो विक्रमादित्य से लेकर अबतक बीते हैं इकट्ठा करके लेखा लगावें तो विदित होता हैकि उससमय से लेकर जबकि ऋग्वेदके अन्तभागके मन्त्र लिखेगये २४१७ वर्ष होते हैं।

इससेप्रकट होताहैकि ३०६२ वर्षमें ऋग्वेदका आरम्भ हुआ हैऔर २४१७ में समाप्त हुआ है। ऋग्वेद एकऋषिका बनाया हुआ नहीं है किन्तु ६४५ वर्ष के अन्तर में बहुत ऋषियों ने उसको समाप्त किया है। आर्य्यलोग कहतेहैं कि वेद के जो ऋषि प्राचीन हैं बनानेवाले न थे वे केवल उसके माननेवाले थे।

यहएक और वर्णनहै जो आर्य्यलोग उनपुस्तकोंकी जिनकोकि वे धर्म्मपुस्तक मानते हैं शिक्षा के विरुद्ध कहते हैं। क्योंकि वेदों में ऋषियों की दो प्रकार की सर्वत्र चर्चा है अर्थात् एक तो जिन्होंने वेदों को बनाया और दूसरा उनका जिन्होंने उसे माना वर्णनहै। जैसा कि यजुर्वेद के तैतरीय ब्राह्मण के मन्त्र २२ में यह लिखा है कि मैं उन ऋषियों को धन्यवाद देता हू जिन्होंने वेदों को बनाया है। एक दूसरे स्थान में यह लिखा है कि मैं उन ऋषियों को धन्यवाद देताहू जिन्होंने वेदों को माना अर्थात् उनको अभ्यास और विश्वास किया। और भी बहुतसे भागोंमेंऐसाही लिखा है कि वे ऋषि जिन्होंने वेदोंको बनाया और जिन्होंने वेदों को माना सदाकाल मेरी ओर रहेंहैं। फिर भी लिखाहै कि मैं उन ऋषियोंको जिन्होंने वेदोंको बनाया और जिन्होंने माना नहींछोडूगा।

यह आपही आर्य्यलोगोंके इस वर्णनकी भूलको प्रकट करते हैं। यदि उन्हें अपनी धर्मपुस्तकोंमें पूर्ण प्रतीतता होती तो ऐसी प्रत्यक्ष भूलकी बातोंका वर्णन नकरते।

हमदेखोंका आरम्भ और प्राचीनताके विषयमें आर्य्यलोगोंका वर्णन सुनचुके हैं कदाचित् उनसे अधिक निर्मूलबातोंका वर्णन और कहीं नमिलेगा। यह आश्चर्य्य की बातहैकि लिखनेवाला बुद्धिमान मनुष्य उनबातोंको बुद्धियुक्त और मत प्रसिद्ध करते हैं। वेदोंकीशिक्षा और उनके प्रमाणोंकेविषयमें हम आगेके व्याख्यानोंमें वर्णन करेंगे।

* हम अपने पढनेवालोंको स्मरण कराते हैं कि जैसाहमने पहिले व्याख्यानमेंकहा है कि स्वामी दयानन्दजी ग्यारह उपनिषद् और छःदर्शनोंको वेदोंके तुल्य मानते हैं। इनपुस्तकोंके नाम हम पहिले व्याख्यानमें वर्णन कर चुके हैं। स्वामी दयानन्दने इन पुस्तकों को पवित्र अंगीकार कर लिया है और सत्यता में वेदों के तुल्य ठहराया है और उन पर आर्य्यमत की नीवडाली है। वह सिखाते हैं कि परमेश्वर की आज्ञा के अनुसार ऋषियोंने इन पुस्तकों को वेदोंसे बनाया है और इन पुस्तकों के द्वारा मनुष्य को परमेश्वर का ज्ञान और मुक्ति प्राप्त होती है। और उनकी यह भी ममता है कि ये पुस्तकें एक दूसरी से मिलती हैं केवल मिलती ही नहीं वरन एक दूसरे को प्रकाश देती और प्रमाणित करती हैं।

जैसा वैशेषिक दर्शन में वस्तुओं के रूप, न्याय दर्शनमें उनके भेद साख्य में उनके तत्व और पातञ्जलिमें उन पुस्तकों की शिक्षा समझने के विषय में लिखाहै। जैमिनीय अर्थात् मीमांसा में विश्वास और विश्वासियों का वर्णन है और वेदान्त वर्णन में निस्तार और निस्तार प्राप्त करने का वर्णन है।

यह स्वामी दयानन्द जी के मतका व्यवहार है यदि यह सत्य है तब विरुद्धता तो अनग रही परन्तु एक पुस्तक के न होने से औरोंका समझना कठिन होगा जैसा कि ताला विना कुंजी किसी कामका नहीं। परन्तु जब हम उनको पढते हैं तो विदित होता है कि उनका वर्णन एक दूसरे से बहुत विरुद्ध है इस कारण या तो ये पुस्तकें वेदों को नहीं मानतीं अथवा वेद आपही विरुद्धता पर हैं। विशेष बात तो यह है कि जो कुछ स्वामी दयानन्द कहते हैं वह सम्पूर्ण मिथ्या है। क्योंकि यदि मनुष्य इन पुस्तकों को ध्यान लगाकर पढे तो उसको प्रकट हो जायगा

*यह लेख अष्टतत्वप्रकाश व्याख्यान ७ पृष्ठ ११ पंक्ति १० से प्रारंभ किया गयाहै।

कि यह परस्पर बहुत विरुद्धता रखती हैं। जैसा व्यास जी वेदान्तदर्शन के शारीरिक अध्याय १ पाद १ सूत्र १ से ४ में अपने मतका वर्णन करते हैं। फिर वह साख्यदर्शन को खण्डन करते हैं और कहते हैं कि वह वेदोंके विरुद्ध है देखो शारीरिक अध्याय १ पाद १ सूत्र ५ से आततक। अब फिर निश्चय करते हैं कि यह बुद्धि के विरुद्ध है देखो अध्याय २ पाद २ सूत्र १ से १० उसके साथ यह पातंजलिदर्शन का भी खण्डन करते हैं। फिर सारयदर्शन के वर्णनों का भिन्न २ विवाद किया है और उन्हे खण्डन किया है। और अध्याय २ पाद २ सूत्र १३ से १७ में उन्होंने वैशेषिक दर्शन के घुर्रे उड़ाये हैं। और सूत्र १७ से ३३ से उन्होंने न्यायदर्शन को मिट्टी में मिलाया है। और अध्याय २ पाद २ सूत्र ३४ से ३७ में कणाद का खण्डन किया है। पाद ३ सूत्र ८ से ४१ मे शैवशास्त्र की चिर्रेबाती उड़ाई हैं। अध्याय २ पाद २ सूत्र ४२ से ४५ में नारद पंचरात्र की अच्छी खबर ली गई है। अध्याय २ पाद २ सूत्र ४३ से ४४ में जैमिनिकी बहुत निन्दा की है। यों हम देखते हैं कि यह सब पुस्तकें आपस मे मेल रखती हैं कैसा बेठिकाने का है।

इसके परे देखा जाता है कि इन पुस्तको के आचार्य्य एक दूसरे को भली भाति गाली गलौज करते हैं जैसा न्याय वेदान्तदर्शन को नास्तिककी पुस्तक लिखता है वेदान्त उसके उत्तर में न्यायको कुत्तेके नाम से पुकारता है और साख्यदर्शन इन दोनो को शापित बतलाता है और पातजल इन तीनो को रसिक और व्यर्थ पुस्तके ठहराता है।

और मित्र विलास पत्र, लाहौर सख्या १७ खण्ड १२ ता० २४-९-८८ ई० में लिखा है

अब के लोग जो अल्पश्रुत हैं, वेदार्थ को नहीं जानते उन को पूर्व्वा पर की कुछ खबर नहीं। इस जमाने में मन्दबुद्धि वेदोक्त कर्म्म जिन्होंने त्याग दिया है उन्होंने कुमार्ग को पकड लिया है। वर्णाश्रम धर्म्म की निन्दा करते हैं शिष्टाचार से भ्रष्ट होगये हैं, नहीं वो आस्तिक नहीं वो नास्तिकहै क्योंकि जो नास्तिक हैं, जैन बौद्ध मतवाले भी अपने परमेश्वर की मूर्ति का पूजन करते हैं, मन्दिरों में जो आस्तिक हैं सोतो सनातन शिष्टाचार से श्रुति स्मृति विहित भगवत्के अवतारोंकी मूर्ति

का पूजन करते हैं । परन्तु अब के लोग वेदों के अर्थ उलटे विपरीत अपने मन से कल्पना कर के लोगों के मन भ्रमाते हैं, जिन अर्थों में कुछ प्रमाण नहीं । वेदों से विरुद्ध अर्थ करते हैं, जो भाष्यकारों तथा शिष्टों ने प्रमाणित अर्थ किये हैं दों के, उन से विरुद्ध चलते हैं, और भगवत् के अवतार और मूर्ति की निन्दा करते हैं इन लोगों का दर्शन नहीं करना चाहिये क्योंकि जो निन्दक होते हैं सो महापापी हैं उनके साथ स्पर्श और संभाषण करना महापाप है समेत वस्त्र के स्नान किये जीव पवित्र होता है । ब्रह्म से लेकर कीट पर्य्यंत भगवत् की विभूतिमात्र सब जगत है । जीव मात्र की निंदा नहीं करनी चाहिये । ये लोग तो भगवत के अवतारों और मूर्तियों की निंदा करते हैं इस वास्ते पापियों में भी ये अधम पापी हैं, और क्या कहते हैं कि वेदों में मूर्ति का निरूपण नहीं है । यह बात किस तरह की है जैसे आकाश को कोई मन्दबुद्धि जिव्हा से लेपन करता है । और बड़े अफसोस की बात है कि कोई एक शाखा वेद की देखकर कहते हैं कि इतना ही वेद है और वेद ही नहीं, जैसे कूपकामडूक जानता है कि कूपही समुद्रहै और समुद्र नहीं । प्रथम आप देखो कि एक हजार शाखा सामवेद की हैं । एकसौएक शाखा यजुर्वेद की हैं एक विंशति शाखा ऋग्वेद की हैं ९ शाखा अथर्ववेद की हैं और पंचम वेद जो अष्टादश पुराण हैं उनकी श्लोक संख्या ४ लक्ष है महा भाष्यकार पतंजलि जी ने महाभाष्य में प्रमाण समत किया है । इतने वेदों को और वेदों के जो भाष्य हैं और जो ३६ महा स्मृतियां हैं, और जो एक लक्ष पांच रात्र हैं, इतने शास्त्रों को बिना जाने और बिना देखे से कह देना कि मूर्ति का पूजन कहीं नहीं जैसे जन्म का अंधा जो पुरुष है उसको सूर्य्य का ज्ञान नहीं और दर्शन भी नहीं तैसे इन लोगों का कथन है० ।

फिर मित्रविलास पत्र संख्या ११ खंड १२ तारीख १ । १० । १८८८ में लिखा है ।

इस भारत खंड में आधुनिक पाश्चात्य मार्ग में अग्रसर वेद मार्गका दूषक जो दयानन्द हुआ है उसके अनुयायियों की भ्रष्ट बुद्धि पर जो अच्छे विद्वान् सज्ञान लोग हैं वे बड़ा उपहास्य करते हैं । हम लोग जानते थे कि दयानन्द को व्याकरण ज्ञान कुछ नहीं और अल्पश्रुत तथा केवल शब्द मात्र से कोई शास्त्र वेद

की ज्ञान कर पंडितमानी हो गया था, वेदार्थ की उसको कुछ खबर नहीं थी, प्रमाण रहित उलटे अर्थ कल्पना करके अपने मन से लोगों के मन भ्रमाता था, कई लोग मन्द बुद्धि उसने भ्रष्ट कर दिये हैं, वर्णाश्रम धर्म से च्युत कर दिये, वेद, ब्राह्मण दूषक बहुत कर दिये। इत्यादि २

फिर देखो मित्रविलासपत्र संख्या १३ खंड १२ तारीख १५। १०। १८-८८ ई० में लिखा है।

"और भी एक बात सुनो, जो यथार्थ है कि, दयानन्द का जो गुरु था सो एक मथुरा में रहने वाला, नेत्रों से अंधा, दंडी सन्यासी था, इसका दयानंद शिष्य था, बहुत चिर उसकेपास पठन पाठन करता रहा * इस बात से क्या मालूम होता है कि अन्धे के शिष्य ने अन्ध मार्ग को प्रवृत किया है। जिसको नेत्र नहीं उसको शास्त्र की क्या खबर है ?"

श्रीमान् प० शिवचन्द्र जी निज रचित भ्रमभालिका मे लिखते हैं,

"(२०) स्वामी जी आप लिखते हैं कि उक्त ऋषियों का पूर्व पुण्य ऐसा ही था इसी से उनके हृदय में ४ वेद का ज्ञान प्रकट किया, सत्य है जब उक्त ऋषिया ने पुण्य किया होगा तो जगत्में ही किया होगा लेकिन वह कोई दूसरा जगत् होगा ? क्योंकि यह जगत् तो उसी वक्त ईश्वर ने बनाया था फिर मनुष्यों को ज्ञानोपदेश दिया इस वृत्तान्त से भी जगत् अनादि सिद्ध होता है।

तथा उक्त महोदय निज रचित मूर्तिपूजा मंडन पृष्ठ १० पंक्ति १७ से आगे लिखते हैं कि समाजों की प्राचीनता किसी प्रत्यक्ष प्रमाण से नहीं मालूम हो सकती केवल वेद का आश्रय लेके उसकी आड़ से लड़ते हैं, उसमें भी उसकी ऋचा और उसके मन्त्रों के अर्थ अपने आशय के अनुकूल बदल दिये, केवल अपना प्रयोजन मुख्य समझा गया अर्थ के अनर्थ से भय नहीं हुआ।

दयानन्द मत परीक्षा प्रथम भाग पृष्ठ ७ पंक्ति १३ मे यह लिखा है कि—

"स्वामी जी ने केवल लज्जा ही का त्याग नहीं किया है उनको अपने प्रयो-

* सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ ३२० पंक्ति १७ स्वामी जी मथुरा में एक विरक्त से मुलाकात होना लिखते हैं।

जनानुकूल मिथ्या अर्थ बनाते हुए भय और शङ्का भी तो नहीं होती देखो (प्रजा पत्यानिरूपेष्टि) इसी श्रुति को कैसा विपरीत अर्थ किया है उनको यह किंचित् भय शंका न हुई कि विद्वज्जन मेरे पाण्डित्य पर हसेंगे, और बुद्धिमान मुझको क्या कहेंगे इसी प्रकार वेदों का वास्तविक अर्थ बिगाड़ रहे हैं, आर्य्यों की धर्म्मरूपी पुष्प वाटिका उजाड़ रहे हैं" इत्यादि० ।

श्रीमान् पण्डित सत्यानन्द जी अग्निहोत्री देव धर्म्म प्रवर्तक लाहौर निवासी भी अपनी बनाई एक "दयानन्दी वेदों में जिनाकारी की तालीम" नाम की छोटी सी उर्दू पुस्तक में स्वामी दयानन्द सरस्वती के मन गढन्त वेदार्थ पर अनेक तर्क करते हैं ।

पुस्तक "धर्म्माधर्म परीक्षा" में तर्क है कि जब स्वामी जी ब्राह्मण भाष्य को वेद नहीं मानते फिर नवीन सत्यार्थ प्रकाश के पृष्ठ ३३६ में यह कैसे लिख दिया कि वेद सुनने पढ़ने का अधिकार सबको है, देखो गार्गी आदि स्त्रियां और छान्दोग्य में जान श्रुति शूद्र ने भी वेद रैक्य मुनि के पास पढ़ा था ।

पादरी टी० विल्यम्स साहब रेवाड़ी स्थान के मिशनाध्यक्ष अपने एक लेख में लिखते हैं कि "दयानन्द का योग्य शिष्य गुरुदत्त स्वामी के विषय में कहता है कि वह अपने समय का एक ही वैदिक पण्डित है । वरन मैं इसको भी मानने पर तैयार हूं अर्थात् इस कारण से कि दयानन्द ने वेद का मिथ्या अनुवाद कर के उस पर ऐसी अत्यन्त अनुचित शिक्षा का दोष लगाया है दयानन्द अपने समय में वेद का सब से महा शत्रु ठहरता है ।

रेवाड़ी ६ जून १८८९] [टी० विल्यम्स ।

पुस्तक मङ्गलदेव पराजय पृष्ठ १८ पंक्ति २० में लिखा है कि "यदि स्वामी जी में यह गुण होता कि दूसरों की सत्य बात को मानते और अपनी मिथ्या बात का पक्ष न करते तो उनका मत डमाडोल क्यों रहता, और उनके लेख पर आर्य्यों की दृष्टि क्यों होती उनकी बुद्धि पर बुद्धिमान् क्यों हंसते" इत्यादि० ।

श्री राधाचरण गोस्वामी वृन्दावन निवासी (जो सन् १८७७ ई० में स्वामी दयानन्द के नाम पर न्योछावर होते थे) अपने भारतेन्दु नाम मासिक पत्र खंड ३ । ४ माघ आषाढ़ शुक्ला १५ सं० १९४० पृष्ठ ३ में लिखते हैं कि—

॥ वेदोंका अर्थ ॥

"विभेत्यल्पश्रुताद्वेदोमामयंप्रहरिष्यति"

हिन्दू लोगों का धर्म ग्रन्थ वेद है० वेद से बढ़कर और कोई ग्रन्थ हिन्दुओं को मान्य नहीं। वह विरुद्ध यदि ईश्वर भी कहे तो उसकी बात कोई हिन्दू नहीं मानता वेद का नाम सुनते ही हिन्दू लोगों का चित्त श्रद्धा से पूरित हो जाताहै फिर उसमें हेतुवेतुमद्भाव नहीं लगाते। परन्तु खेद का स्थान है कि भारत की दुर्दशा के साथ २ वेद की भी दुर्दशा हो गई, वेदके अनेक ग्रन्थ नष्ट हो गए, व्याख्यान सब उठ गए, कर्मकी शृङ्खला जाती रही, अर्थ ब्राह्मण लोग भूल गए, नाना प्रकारके मत मतान्तरों के फैलने से वेद की चर्चा भी कम हो गई। यद्यपि छुट्टी हुई परन्तु वेद वृक्ष की जड़ बड़ी दृढ़ है, इसी से अनेक आंधी बवण्डर सह कर भी अब तक महा प्रलय में बचा हुआ है, पर अब बचना कठिन है, क्योंकि अब इसकी जड़ में तेल और पानी भरने वाले बहुत पैदा होगए। जो वृक्ष आंधी बवण्डर से नहीं गिरा उसे अब छल बल कौशल से गिराने का उपाय हो रहा है। प्रथम इसके विनाशक स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज हैं, इन्होंने वेद का वह गौरव उड़ा दिया, जो सनातन से सम्प्रदायानुसार एकार्ण चाल्य चला आता था, आपने वेद के अर्थ का कुछ भी भाव न समझ कर व्याकरण का खड्ग हाथ में ले वेद रूपी महानगर का कत्लआम कर दिया। रेल, तार, विमान बैरूदा, जहाज, कल आदि विलायत का सारा कारखाना विचारे भोले भाले परमेश्वर की बाणी में भर दिया० दूसरा नाश वैदिक सद्धर्म सभा आगरे ने किया इत्यादि०।

फिर देखो राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद के निवेदन की भूमिका इस प्रकार है।

मैंने श्री मत्स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का जो कुछ चर्चा देश देशान्तरों में सुना, मन में आया कि जैसे किसी समय में विष्णु भगवान ने वेदोद्धार किया बतलाते हैं कदाचित् फिर भी इस कलिकाल में उसी तरह दयानन्द जी ने अवतार लिया हो. देवसयोग से एक दिन मैं किसी मेम * और साहब के दर्शन को गया

* ए, पी, मैडम ब्लवट्स्की और कर्नल औलकाट साहिब जगत विख्यात से मिल

था तो वहां उस बाग में पहिले दयानन्द जी महाराज ही का दर्शन हुआ, मैंने जिज्ञासा का कुछ उपदेश चाहा, प्रश्नोत्तर पूरे नहीं हुए साहब आ गए, और और बातें होने लगी, मैं घर आया पर जितना महाराज जी के मुखारविंद से सुना था बड़े सदेह का कारण हुआ, निदृत्यर्थ पत्र लिखा महाराज जी ने कृपा करके उत्तर दिया, उसे देख मेरा सदेह और भी बढ़ा, महाराज जी के लेखानुसार ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका मगा के पृष्ठ ९ से ८८ तक देखा विचित्र लीला दिखाई दी, आधे आधे वचन जो अपने अनुकूल पाए ग्रहण किए हैं और शेषार्थ जो प्रतिकूल पाए परित्याग कर दिए, उन आधे अनुकूल में भी जो कोई शब्द अपने भाव से विरुद्ध देखे उनके अर्थ पलट दिए, मनमाने लगा लिए, मैं घबराया कि छापे की अशुद्धता है व मेरी समझ और आखों का दोष, फिर पत्र लिखा उसका जो उत्तर पाया तो जाट और खाट मुगल और कोल्हू की कहावत याद आई श्रीमत्पण्डितवर बालशास्त्रीजी जो बाहर गए हैं परम पूजनीय जगद्गुरु श्रीस्वामी विशुद्धानन्दजी के चरणों में पहुचा, पत्र और उत्तरों को देख कर बहुत हंसे और पिछले उत्तर पर जिसमें इन दोनों महात्माओं का नाम है कुछ लिखवा भी दिया, अब मैं महाविकट विस्मय में पड़ा हूँ न तो यह कह सकता हूँ कि स्वामी दयानन्द जी संस्कृत शब्दों का अर्थ नहीं समझते और न यह अपने मन में ला सकता हूँ कि आप तो सब समझते हैं दूसरों के बहकाने और भुलाने को यह अर्थाभास रचा है क्योंकि ऐसा काम सत्पुरुषों का नहीं, है जो हो, मैंने अपने पत्र और स्वामी दयानन्द के उत्तरों का इसमें छपवा देना बहुत उचित समझा कि जो सज्जन आर्य लोग उनकी बनाई ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका को देखते हैं अपनी बुद्धि को कुछ काम में लावें और दूसरे पण्डितों से भी सम्मति लेवें ऐसा न हो कि "अन्धेन नीयामाना यथान्धा" के सदृश केवल दयानन्द जी के भाष्य और भूमिका ही की लाठी थामे किसी अथाह गढ़े व नरक कुण्ड में न जा गिरें क्योंकि किसी पारसी कवि ने कहा है कि—

अगर बीनम के नाबीना बचाहस्त । बगर खामोश बनशीनम गुनाहस्त ॥ *

ने फो गये थे ।

* फारसी का अर्थ यह है कि जो अन्धे को कुये के पास देख चुप बैठूं तो पाप है, शिवप्रसाद का और हाल आगे देखना ।

श्रीसम्वेगी साधु आत्माराम (आनन्द विजय) जी अपने बनाये अज्ञान तिमिर-भास्कर नाम ग्रंथ पृष्ठ ३४ पंक्ति १३ से लगा पृष्ठ ३५ पंक्ति १८ तक इसप्रकार लिखते हैं।

दयानन्द सरस्वती जी का कहना एक सरीखा नहीं; इसका तात्पर्य यही है कि ब्राह्मण पुराणादिकों में अनुचित लेख देख के प्रतिवादियों के भय से दयानन्द जी ने अन्य पुस्तक सब वेद चार संहिता के सिवाय मानने छोड़ दिये हैं और पूर्व के अर्थों से लज्जायमान होकर स्वकपोल कल्पित नवीन अर्थ बनाये हैं। सो जिसको अच्छे लगेंगे सो मानेगा। और हम तो दयानन्द सरस्वती के बनाये अर्थों को कदापि सत्य नहीं मानेंगे, क्योंकि दयानन्द सरस्वती ने अपने बनाये 'सत्यार्थ-प्रकाश' के बारहवें समुल्लास में जैन मत की बाबत बहुत झूठी बातें लिखी हैं।

ऐसा ही उनका बनाया वेद भाष्य होगा। दयानन्द सरस्वती ने जो मत निकाला है सो ईसाइयों के चाल चलन और मत के साथ बहुत मिलता है। परंतु चार वेद ईश्वरके कहे हुए हैं, और अग्नि, सूर्य्य, पवन रूप ऋषियोंको प्रेरके ईश्वरने वेद मंत्र कहा है, और मुक्त हुआ जीव फिर जगत् में आकर उत्पन्न होता है, और मुक्ति वाला जहां चाहता है वहां उड़के चला जाता है, और ईश्वर सर्वव्यापी है, जीव और परमाणु अनादि हैं, घी, सुगन्धी के होमने से वर्षा होती है, हवा सुधरती है, मुक्ति व स्वर्ग कोई स्थान नहीं, इत्यादि बात तो ईसाई मत से नहीं मिलती हैं, शेष बातें प्रायः तुल्य ही हैं, बड़े आश्चर्य की बात तो यह है कि प्राचीन ब्राह्मणों के मत को छोड़ के अन्य मत वालों के शरणागत होना और जो कुछ अंगरेजों ने बुद्धि के बल से तार, रेल, धूंये के जहाज आदि कला निकाली हैं, उन्हीं कलाओं को मूर्खों के आगे कहना कि हमारे वेदों में भी इन कलाओं का कथन है, दयानन्द सरस्वती इस यजुर्वेद के मंत्र से सूर्य्य स्थिर और पृथ्वी भ्रमण करती सिद्ध करता है।

आयंगौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः पितरं च प्रयन्त्स्वः।

यजुर्वेद अध्याय ३ मंत्र ९ तथा उस मंत्र से तार (टेलीग्राफ) की विद्या कहता है।

युवं पेदवे पुरुवारमश्विना सृधां रथं तरुतारं दुवस्यथः

आदि पाये कि जहां पक्ष और बाद पक्ष और बुद्धि नाराज हैं उत्तर विशाल ताने वाले नाम भी बहुत बुरा रीति व अपवित्रता से काम लेते हैं और यह भी देखा गया है कि पादरी लोग भलाई व सचाई को ताक पर रख कर केवल छिपाव और धोखा का साथ करते हैं। जो कि उनकी यह सब हालतें इस युग के अनुभवकारों को खराब मित्र रखने वाला हलचलवाद इस उनके मतके जुदा होकर शासना पाने के लिये हिन्दुस्तानाभिमुख हुआ हैं, इसने अपने तईं खुले हाल पुकार कर इसाई मत का दुश्मन सिद्ध कर दिखाने हमारा इस चलन-नाइट का देश सब का सजर हमारी तर्फ भेजा गई अर्थात् बड़े बड़े अधिकारी व व्यापार लोग (जिनका श्रेष्ठ बुद्धि पर हुकूमत रखने की शक्ति है और सारे भिन्न मत वालों से द्वेष रखते हैं।) हमको धिक्कार देते और हर व कठोर व गंवार कहते हैं हमने १८ महीने पेशावर के मद्य दुकान-आबकारी की लाग (दर) को कार्य में लिया पर पुराने-पुराने वाले आदमी की रात्रिने जगा दिया हम केवल तीन आदमी को ना सहायता नहीं चाहते बल्कि उससे चाहते हैं कि जो पक्ष दोष और नम्रतिहीन इस लिये हम आपके चरणों में उस तरह गिर नम्रता से जाते कि बच्चे मा बाप के पैरों पर गिरते हैं, और कहते कि आप हमारे गुरु हमारे ऊपर कृपा और दया कीजिये कि हम क्योंकर्मे और हमको अपनी शिष्य व सेवा में पाकर अपने को गौरवान्वित समझिये। यह सारा आदमी ज्ञानरहित विद्याशून्य मूर्ख नास्तिक अहंकार में फंसे हुये हैं और इनके पर भी उन गुमराहों को संतोष हो सो नहीं बल्कि चुप अकली व अति निन्दक उल्टे से अपना धन खर्च कर जाहिल आदमियों को अपना गुरु मत कबूल कराने में तत्पर हैं हमारी रसाई अखबारों तक कीजिये है उसके द्वारा हम वैदिक मतके सही सही व्यवहार तमाम ईसाई मुल्कों में फैला देना चाहते हैं, और जिन बातों से अन्य ईसाई महामूर्ख बतलाकर अपने मतके बातों भाइस हैं उनको निशानेहक उत्तर ईसाई मजहबी अशुद्धता व मिथ्यात्व को प्रकाशित कर देना दृष्टान्त मन्तव्य है, इसी-तरह आर्याभिमत के प्रकाशित ग्रंथ व पत्रों को उन उल्टे-पुल्टे विपरीत अर्थ से प्रकाशित किया वह अब हम सत्यसत्य व ठीक ठीक उनके चाहे हुए और दुनिया स्पष्ट करना चाहते हैं, आशा आप हमारी सभाको मन्त्रणासे सदर सत्कार स्वीकार करेंगे तो हमारी बड़ी प्रतिष्ठा और इज्जत मिलेगी

और आपकी व्याख्या मेरी समझ और महात्मा से इसका निर्णय जरूर होगा। हम अपने यहाँ आपके शिष्य बनाने स्थापित करते हैं। जिस पाठशाला में आप सम्मिलित हैं शायद आपको भी इसमें कुछ सहायता देने में पहुंच सकें क्योंकि हमारा मेजरमेन्ट उस पाठशाला कुमारी से हिमालय तक फैला हुआ है, अर्थात् सारे हिन्द में जो हम चाहें वह कर सकते हैं। स्वामी जी महाराज आप अपने सम्मेलन के सभापति को पूर्ण पहचान हैं इस लिए निश्चय है कि हमारे दिल का भी हाल आप पर छुपा न रहा होगा इस बारम्बार प्रार्थना करते हैं कि आप हमारी तरफ कृपा व दया दृष्टि से निहारें। हम सच कहते हैं कि हम आपके शरणागत आपको अपना राज्य दान कर जाते हैं न किसी अहंकार व गर्व से हमारी यह दीनता है निश्चय जानिये कि हम आपकी शिक्षा दान और उस कर्तव्य के करने को मुस्तैद व उपस्थित हैं जिसको के आप हमको आज्ञा करें। जो आप हमको एक पत्र लिखने का दीजियेगा कि हम ठीक ठीक क्या किया करते हैं निश्चय है कि जो हम चाहते हैं वह आप हमको जरूर अर्पण करेंगे। १८ मई सन १८५८ *

(स्वयं स्वामी प्रतिष्ठित साहित्य में हिन्दुस्तान आर्यावर्त ईश्वर परब्रह्मसमाज के सभापति यह पत्र सभा की तरफसे आपको श्रद्धा पूर्वक लिखता है इति)

अब सन् १८७० में स्वामी जी लाहौर में अमृतसर चले आये और वेद भाष्यभूमिका के अङ्क १५ व १६ में निम्नलिखित विज्ञापनपत्र मुद्रित करवाये बनाए +

॥ विज्ञापन पत्र पहिला ॥

आगे यह विचार किया जाता है कि संस्कृत विद्या की उन्नति करनी चाहिए, सो बिना व्याकरण के नहीं हो सकती, जो आजकल कौमुदी, चन्द्रिका, सारस्वत, मुग्धबोध और कलापादि ग्रन्थ प्रचलित हैं उनमें न तो ठीक ठीक बोध और

* यह चिट्ठी दयानन्द दिग्विजय प्रथम भाग पृष्ठ ६०-६१ संयुक्त है ली गई है इस में कोई अर्थ सार्थक नहीं है तो अनुवादकों की ही भूल समझना चाहिये।

+ वेदभाष्यभूमिका के अङ्क १५ व १६ इकट्ठा निर्णयसागर प्रेसबम्बई में छपकर नियत समय से कुछ दिन पीछे प्रकाशित हुआ था।

न वैदिक विषय का ज्ञान यथावत् होता है, वेद और प्राचीन आर्ष ग्रन्थों के ज्ञान से विना किसी को संस्कृत विद्या का यथार्थ फल नहीं हो सकता, और इसके विना मनुष्य जन्म का फल होना दुर्घट है, इसलिए जो सनातन प्रतिष्ठित पाणिनि अष्टाध्यायी महाभाष्य नामक व्याकरण है, उसमें अष्टाध्यायी सुगम संस्कृत और आर्य भाषा में वृत्त बनाने की इच्छा है, जैसे वेदभाष्य प्रति मास २४ पृष्ठों में १ अंक छपता है, इसी प्रकार ४८ पृष्ठ का अंक वम्बई में छपवाया जाय तो बहुत सुगमता से सब लोगों को महा लाभ हो सकता है, इसमें हजारों रुपये का खर्च और बड़ा भारी परिश्रम है, इसका मासिक मूल्य जो प्रथम देना उससे ॥=) के हिसाब से ७॥) रुपये लेने का है, उधार लेने वालों से ॥=) आना के हिसाब से ११।) लिये जाय, विद्योत्साही सब सज्जनों की सम्मति प्रथम ही जानना चाहता हूँ सो सब लोग अपना २ अभिप्राय जनावें इति ।

॥ विज्ञापन पत्र दूसरा ॥

सबको विदित हो कि चारों वेदों की भूमिका पूरी होगई है, इसकी अंक १५ । १६ में समाप्ति हुई है, इसकी जिल्द जिनको इच्छा हो बधवा लेवें, जो एक वेद लेते हैं उनके पास आषाढ़ में ऋग्वेद का अंक नहीं आवेगा, क्योंकि यह दो अंक आए हैं, इसके आगे श्रावण से लेकर एक लेने वालों के पास एक २ और दो लेने वालों के पास तो २ ऋग्वेद के और यजुर्वेद के अंक आया करेंगे, वैसा करो कि बम्बई में बहुत अच्छा काम चलेगा यह पहिला महीना था इसलिए थोड़ी देर हो गई आगे बराबर मिती वार पहुँचा करेगा ।

एक महीने के लगभग स्वामी जी अमृतसर में रहकर सहारनपुर चले आये और कुछ दिन रहकर एक समाज स्थापित कर अगस्त सन् १८७८ ई० के अन्त में रुड़की पहुँचे । और मौलवी मुहम्मद कासिम से * मुबाहिसा करने के लिये पत्र व्यवहार किया परंतु बात अधूरी रह गई, और २६ अगस्त सन १८७८ ई०

† यह कार्य्य स्वामी जी का धन की प्रचुर इच्छा से भरा हुआ पाया जाता है ।

* यह मौलवी मुहम्मद कासिम अली वही हैं जिनका हाल मेले चान्दापुर में लिखा है ।

स्वामी जी मेरठ चले आये। और इनके चले आने पर १ ली सितम्बरको इकी में और आश्विन शुक्ल० ३ तारीख २९ सितम्बरको मेरठ में नवीन आर्य्य-माज स्थापित हुये।

आश्विन मास के अंत तक स्वामी जी मेरठ ही मे रहे, इस समय तक वेद ाष्यभूमिका के पूर्ण १६ अंक छपकर प्रकाशित हो चुके थे। अब वेदभाष्य छपने का आरम्भ हुआ। सो ऋग्वेद भाष्य व यजुर्वेदभाष्य के जुदे २ प्रथम ौर द्वितीय अंक बम्बई निर्णयसागर यन्त्रालय में छपाकर प्रकाशित किये। जि के टाइटिल पेज पर सत्यार्थप्रकाश सम्बन्धी निम्न लिखित एक विज्ञापन पवाया था।

॥ विज्ञापन पत्र ॥

सबको विदित हो कि जो जो बातें वेदों की और उनके अनुकूल हैं उनको मानता हूँ विरुद्ध बातों को नहीं। इससे जो मेरे बनाये सत्यार्थप्रकाश व सं-ारविधि आदि ग्रन्थों मे गृह्यसूत्र व मनुस्मृति आदि पुस्तकों के वचन बहुत से ाये हैं। वे उन २ ग्रन्थों के मतों को जानने के लिये लिये हैं, उनमें से वेदार्थके नुकूलका साक्षिवत प्रमाण और विरुद्ध का अप्रमाण मानता हूं, जो जो बात दार्थ से निकलती हैं उन सबको प्रमाण करता हूं, क्योंकि वेद ईश्वर वाक्य होने । सर्वथा मुझको मान्य है। और जो जो ब्रह्मा जी से लेकर जैमिनि मुनि पर्य्यन्त हात्माओं के बनाये वेदार्थानुकूल ग्रन्थ हैं उनको भी मैं साक्षी के समान मानता ूं। और जो सत्यार्थप्रकाश के ४२ पृष्ट और २५ पंक्ति में पित्रादिकों मे से जो कोई जीता हो उसका तर्पण न करे, और जितने मर गये हैं उनका तो अव-य करे। तथा पृष्ट ४७ पंक्ति २१ में मरे भये पित्रादिकों का तर्पण और ाद्ध करता है। इत्यादि तर्पण और श्राद्ध के विषय में जो छापा गया है सो लि-ने और शोधने वालों की भूल से छप गया है। इसके स्थान मे ऐसा समझना ाहिए कि जीवितों की श्रद्धा से सेवा कर के नित्य तृप्त करते रहना यह पुत्रादि का रम धर्म है, और जो जो मर गए हों उनका नहीं करना, क्योंकि न तो कोई मनुष्य मरे हुए जीव के पास किसी पदार्थ को पहुँच

जीव पुत्रादि से भिन्न पदार्थों को ग्रहण कर सकता है, इसमें यह सिद्ध हुआ कि जीते पिता आदि को पीड़ा से सेवा करने का नाम तर्पण और श्राद्ध है अन्य नहीं इस विषय में वेद मन्त्रादि का प्रमाण भूमिका के ११ अङ्क के पृष्ठ ८५४ से ले के १२ अङ्क के २६७ पृष्ठ तक छपा है वहां देख लेना ।

(क) प्यारी समीक्षा ! प्यारे पाठकगण ! देखो स्वामी दयानन्द सरस्वती की चालाकी । आप लिखते हैं कि कई मन लिखने और शुद्ध करने वालों से भूल से छप गया है । यह भूल केवल स्वामी जी ही से नहीं हुई है, किसी विषय को लिखते वा अक्षर न टूटा योजना करते समय भूल तो अवश्य हो सकती है, सो कोई अक्षर अथवा शब्द इधर से उधर हो जाना सम्भव होता है, परन्तु यह आज ही सुना है कि सात आठ तर्क लिखने से भरा हुआ पूरा लेख कई पृष्ठों में समाया हुआ स्वत अशुद्ध हो कर किसी पुस्तक में मिल जाय । तथा उस पुस्तक में शुद्धाशुद्ध पत्र भी लगा हुआ है, जिसमें एक २ शब्द की शोध कर दी गई है, फिर क्यों कर सम्भव हो कि पूर्वोक्त भूल यदि स्वार्थ होती तो शुद्ध होने से रह जाती । कई वर्ष तक यह पुस्तक छप कर बिकती रही परन्तु स्वामी जी ने कभी भी इसकी अशुद्धता पर ध्यान नहीं दिया, केवल जब नई चमत्कार से मनुष्य उनके शास्त्रों में सभासद् होकर इस तर्पण को व्यर्थ समझने लगे तो स्वामी जी ने भी चट छापने और शुद्ध करने वालों की भूल बतला कर सभा रक्षा कर लिया, यदि सत्य सत्य यही कह देते कि पहिले लेख जिस आशय से लिखा था पर अब नहीं रहा तो इसमें कुछ हानि नहीं थी । परन्तु कहनूकलां की बात तो स्वामी जी घर से चले तब ही से मण्डन किए हुए थे उसको क्योंकर भूल सकते थे ?

भगवद्देव पराजय पृष्ठ १९ पंक्ति १६ में भी लिखा है कि "स्वामी जी ने पूर्व 'सत्यार्थप्रकाश' में तीन पृष्ठ पर विस्तार पूर्वक युक्ति सहित पुस्तक पुरोहितों के श्राद्ध और तर्पण की विधि लिखी, फिर जब कि समझ खण्डन करने लगे और लोगों ने आक्षेप किया कि आपने अपने पुस्तक में क्या लिखा है, क्या यों कहते हो तब 'वेदभाष्य' अंक १२ के टाइटिल पर झूठा विज्ञापन दिया कि 'सत्यार्थ प्रकाश' में तर्पण और श्राद्ध के विषय में जो छपा गया है सो लिखने और

जीवन वाला को मूल से छः गया है।

स्वामी जी ने लाला जसवन्तराय की सहायता से आश्विन मास मेरठ ही में पूरा कर देने की प्रयत्न किया, इस समय तक ऋग्वेदभाष्य और यजुर्वेद भाष्य के दो दो अङ्क प्रकाशित हो चुके थे। कार्तिक के महीने में चौथा वेदभाष्य के तीसरे अङ्क पृथक् २ प्रकाशित हुए, ऋग्वेदभाष्य अङ्क ३ के दूसरे, रुख टाइटिल पेज पर स्वामी जी ने निम्न लिखित विज्ञापन छपाये थे।

विज्ञापन पत्र पहिला।

विदित हो कि 'सत्यार्थप्रकाश' के १०७ पृष्ठ पंक्ति १४ में राहिणी बलदेव की स्त्री और देवकी वसुदेव की स्त्री लिखा है सो राहिणी बलदेव की माता और वसुदेव की स्त्री देवकी जानना।

विज्ञापन पत्र दूसरा आर्यदर्पण शाहजहांपुर।

इस नाम का एक मासिक पत्र उर्दू भाषा में आर्यसमाज शाहजहांपुर की ओर से प्रकाशित होता है, इसमें वेदादि सच्छास्त्रानुकूल सनातन धर्मोपदेश विषय के व्याख्यान और आर्यसमाज के नियमादि प्रकाशित होते हैं यह पत्र मेरी समझ में बहुत अच्छा है।

कार्तिक शुक्ला १३ सं० १९३० को ही स्वामी जी अजमेर पधारे, वहाँपर पादरी गिरि साहब तथा डा० हेमण्डसाहब पहिले से मौजूद थे, स्वामी जी ने एक व्याख्यान में तौरेत, इञ्जील, कुरान की कुछ अशुद्धियाँ लिखित की तब पादरी साहब ने कहा ऐसा मत करो, समाज लिख कर भेज दो जवाब दिया जायगा, इसको स्वा० जी ने स्वीकार किया; और अगलेदिन साठशङ्काओं का एक पत्र पं० भीमराम सा० एक्स्ट्रा असिस्टेंट कमिश्नर अजमेर द्वारा पादरी साहबके पास भेजा गया। ९ दिन पीछे पादरी साहब ने उनको विचार लिया तो एक दिन उनके उत्तर के लिये नियत हुआ, विज्ञापन दिये गये, सरदार बहादुर मुन्शी अमीरचन्द साहब जज, पं० भीमराम साहब एक्स्ट्रा असिस्टेंट कमिश्नर सरदार भक्तसिंह साहब इञ्जीनियर आदि अनेक प्रतिष्ठित पुरुषों ने स्वयं पधारकर दोनोंका उत्साह बढ़ाया, पादरी साहब के साथ में डा० हेमण्ड साहब और स्वामी दयानन्द सरस्वती चार बजे लगभग सुशोभित हुए पश्चात् ३ लोग मनुष्य लिखने को बैठाये गये

॥ विज्ञापनपत्रमिदम् ॥

सब सज्जन लोगों को विदित हो कि ठिकाना जिला अलीगढ़ परगने मोर-चल ग्राम छलेश्वर ठाकुर मुकन्दसिंह, ठाकुर मुन्नासिंह, रईस तथा ठाकुर भीमा सिंह रईस को हमने वेद भाष्य और सत्यार्थ प्रकाश आदि पुस्तकों के मूल्य वसूल करने का अधिकार दिया है, अर्थात् इनके नाम मुख्तार नामा रजिष्ट्री करा दिया है, इनमें से ठाकुर मुन्नासिंह के नाम पूर्वोक्त ठिकाने वेदभाष्यादि पुस्तकों का मूल्य भेजे वे ग्राहकों के पास रसीद भेज देवेंगे, जो कोई पुस्तक लिया चाहे वह भी मुन्नासिंह के नाम पर भेजे, और जो अंक ५ में उमरावसिंह के नाम लिख दिया था वह अब नहीं रहा अब में सब ग्राहकों को प्रीति पूर्वक सूचना करता हूं कि जैसी प्रीति से इस काम में पुस्तक लेकर सहाय करे हैं वैसे मूल्य भेजने में भी विलम्ब न करें, क्योंकि अब जो प्रबन्ध किये गये हैं वह जिस उपाय से मूल्य वसूल होगा वह २ उपाय करके रुपया वसूल करेंगे ।

(हस्ताक्षर दयानन्द सरस्वती के)

जब कर्नल अलकाट और मैडम ब्लेवस्तकीको तार पहुँचा तो रेल में सवार होकर सहारनपुर आये । आर्य्यसमाज सहारनपुर ने यथायोग्य आदर किया तो रोज १ मई सन् १८७९ ई० को स्वामी जी भी सहारनपुर में आये और कर्नल अलकाट साहब से मिले, फिर इन दोनों को साथ लेकर तारीख ३ मई सन् १८७९ ई० को स्वामी जी मेरठ पधारे । आर्य्यसमाज वालों ने यथा योग दोनों का आदर सत्कार किया, ५ दिन तक कर्नल अलकाट और मैडम ब्लेवस्तकी दोनों बाबू शिवनारायण गुमास्ते कमसरियटकी कोठी में रहे और उसके निकट ही स्वामी जी पंडित जगन्नाथ साहिब के बंगले पर विराजे, कर्नल साहिब और स्वामी दयानन्द सरस्वती के मध्य खूब प्रेम प्रीतिका बर्ताव हुआ, अलकाट साहब ने कहा हम केवल अपना देश त्याग कर आपके दर्शनाभिलाषी आये हैं बड़ा खेद है कि भारत वर्ष के मनुष्य आपके यथार्थ गुणको नहीं जानते आप बड़े योग्य पुरुष हैं । तब तो स्वामी जी ने भी कर्नल साहिब की प्रशंसा में कोई शब्द शेष नहीं रक्खा । तारीख ७ मई को कर्नल अलकाट साहिब और मैडम ब्लेवस्तकी तो बम्बई को चले गये, परन्तु स्वामी जी मेरठ ही में रहे, और इन्हीं दिनों में नानौटा के रहने

वाले मौलवी मुहम्मद कासिम (जो स्वामी जी से रुड़की में भी मिले थे और इनके साथ स्वामी जी का मेले चान्दापुर में भी समागम हुआ था) भी मरठ में आये और मेरट के बहुधा मुसलमानों को अपना सहायक बना स्वामी से जाभिड़े। और धर्म्मचर्चा की बात होने लगी, मुसलमान लोग कहते थे जो कुछ सवाल जवाब हो, सब जुबानी हो, स्वामी जी कहते थे प्रश्न और उत्तर लिख २ कर दिये जावें, इसपर बहस तो न हुई परन्तु सारांश यह निकला कि दोनों दल अपनी २ विजय मानबैठे, और मुसलमानों ने उर्दू अखबारों में स्वामी जी की पराजय और अपनी विजय प्रकाशित कराई, इधर एक सईक हुसैन नामी नवीन मुसलमान ने स्वामी जी की बहुत ही कुछ प्रशंसा निज लेखनी से लिखी जो दयानन्द दिग्विजयार्क प्रथम भाग मयूरपञ्चम में मुद्रित हुई है, परन्तु हम तो ऐसे लेखकका लिखना भी यथार्थ और सत्य नहीं समझ सकते। क्योंकि यदि वो सत्य ग्राही होता तो प्रथम ही अपना अमूल्य हिन्दू धर्म रत्न क्यों नष्ट करता।

स्वामी जी के मेरठ रहते रहते ही ऋग्वेद, यजुर्वेद, भाष्यका जुदा जुदा सप्तम अंक प्रकाशित हुआ जिनके टाइटिल पेज पर निम्न लिखित विज्ञापन छपाया था।

॥ विज्ञापन ॥

सर्व-आर्य्यसमाजी और अन्य लोगों को प्रकट किया जाता है कि पहिले बम्बई के आर्य्यसमाज के प्रधान बाबू हरिश्चन्द्र चिंतामणि थे, वे समाज सम्बन्धी कितने अयोग्य कामों के करने से चैत्र शुक्ल० १, सम्वत् १९३६ से प्रधान के अधिकार से उतारे और आर्य्यसमाज से सर्वथा पृथक् कर दिए गए हैं, अब पीछे कोई भी मनुष्य आर्य्यसमाज सम्बन्धी व्यवहार उनके साथ न करे। हम अति हर्ष और आनन्द पूर्वक प्रकट करते हैं कि आर्य्यसमाज के प्रधान प्रतिष्ठित महाशय राजबहादुर गोपालराव निर्वेश मुख चिंतामणि ज्वाइंट जज नासिक नियत हुये हैं। अब पीछे जिसको आर्य्यसमाज से पत्र व्यवहार करना हो तो निम्न लिखे ठिकानों पर पत्र भेजे। मिस्टर प्राणजीवनदास कहानदास उपमन्त्री आर्य्यसमाज बाहरकोट पायधूनी पर गौड़ी जी की चाली घर बम्बई इत्यादि०।"

आषाढ सम्वत् १९३६ में स्वामी जी का नवीन आर्य्यसमाज फर्रुखाबाद में खोला गया, और दोनो वेद भाष्यों के जुदे जुदे अष्टम अंक प्रकाशित हुये थे।

श्रावण में स्वामी जी मुरादाबाद में रहे वेद भाष्य नवम अंक के टाइटिल पेज पर भी एक निम्न लिखित नवीन विज्ञापन मुद्रित कराया।

॥ विज्ञापन पत्र मिदम् ॥

सबको विदित हो कि ठाकुर मुकन्दसिंह और गुलाबसिंहजी के नामका ६ अंकों विज्ञापन दिया गया था, और मुन्शीसिंह जी ने परोपकार बुद्धि से ग्राहकों में उधारका रुपया लेने का काम स्वीकार किया था परन्तु उक्त ठाकुर को किसी विशेष कार्य्य के होने से ग्राहकों से रुपया जमा करने की फुरसत नहीं है, इस लिये सब स्थानों के ग्राहकों से तकाज़ा कर के रुपया लेने का अधिकार मुंशी समर्थदान प्रबन्ध कर्ता "वेदभाष्य कार्यालय" मुम्बई को दिया गया है। और इनके तकाज़ा करने पर भी ग्राहक लोग रुपया देने में हीला हवाला करेंगे तो उनसे रुपया समर्थदान के विदित करने से राजकीय नियमानुसार ठाकुर मुन्शीसिंह जी ही लेंगे। अब पीछे सब ग्राहक मुम्बई में रुपया भेजा करें, वहां से सब के पास बराबर रसीद पहुचेगी। हम ग्राहकों को सुगमता होने के लिये यह नियम भी लिखते हैं कि जिस २ स्थान के लोगों के नाम हम नीचे लिखते हैं उस २ स्थान के ग्राहक उनके पास रुपया जमा करा देंगे तो वे लोग सब के नाम पृथक् २ रसीद मुम्बई से मंगवा दिया करेंगे।

"मुंशी इन्द्रमणि जी प्रधान आर्य्यसमाज मुरादाबाद" "मुन्शी बख्तावरसिंह जी मन्त्री आर्यसमाज शाहजहांपुर" "लाला रामशरणदास रईस उप प्रधान आर्य समाज मेरठ" "लाला साईदास मन्त्री आ० समाज लाहौर" "लाला बख्शदास जी खजानची आर्यसमाज गुरुदासपुर" "चौधरी लक्ष्मणदास - सभासद् आर्यसमाज अमृतसर बाजार माईसेवा" "बाबू रामाधार वाजपेयी तार आफिस रेवाड़ी रासनद्" "पं० मुरलीधर रामनारायण पोष्टमास्टर जनरल आफिस इलाहाबाद" "बाबू माधो मंत्री आर्यसमाज दानापुर बंगाल" "मुन्शी समर्थदान" और "मुन्शी इन्द्रमणि"

जी के पास हमारे बनाए सब पुस्तक रहते हैं जिसको इच्छा हो मगवाले।

(हस्ताक्षर दयानन्द सरस्वती)

मुरादाबाद से चल कर स्वामी जी बरेली पहुँचे और कुछ रह कर अपना मन्तव्य को प्रगट किया तब पादरी टी० जी० स्काट (T. G. SCOT) साहब ने बहस करने का इरादा किया, दिन नियत होगये सम्बन्ध और तमाशाई लोगों ने यह चर्चा सारे नगर में फैला दी, तारीख २५। २६। २७ अप्रैल सन १८७९ ई० में यह वादानुवाद हजारों मनुष्यों के समारोह में तीन दिन तक बराबर हुआ, प्रश्नोत्तर के लिखने के लिए तीन मनुष्य बिठलाए जाते थे, अन्त में यही फल हुआ कि पादरी साहब उठ कर चल दिए स्वामी जी की विजय प्रगट हुई, तथा स्वामी जी ने इस प्रश्नोत्तर सम्बन्धी एक पुस्तक भी बनाकर छपवाई जिसका नाम "सत्यासत्य विवेक" है, बरेली में उसी समय आर्यसमाज भी स्थापित हो गया, और स्वामी जी थोड़े ही दिन पीछे शाहजहाँपुर चले गए, और स्वामी जी के शिष्य पंडित देवीप्रसाद का शाहजहाँपुर के लक्ष्मण शास्त्री आदि से कुछ शास्त्रार्थ भी हुआ, इसका सविस्तार वर्णन आर्यदर्पण पत्र माह जौलाई सन् १८७९ ई० में छपा है।

मुन्शी गजतावरसिंह से स्वामी जी ने कहा कि हम अपने घर का यन्त्रालय खोला चाहते हैं, और वह यन्त्रालय काशी में होना उचित है आप उसके कार्याध्यक्ष हो जाय तब मुन्शी जी ने कहा मैं सरकारी नौकर हूँ नौकरी छोड़ नहीं सकता, इस पर स्वामी जी ने कहा तुमको सरकारी नौकरी से अधिक वेतन दिया जायगा और पेंशन मिलने के बदले हम अपने वसीयतनामे में इसका यथार्थ प्रबन्ध कर देवेंगे। इसका मुन्शी जी ने कुछ उत्तर नहीं दिया और स्वामी जी इलाहाबाद में पधारे, और आश्विन मास उसी स्थान पर बिताया और वेदभाष्य दशम अष्टक जुदे २ ऋग्वेद, यजुर्वेद के प्रकाशित किए। फिर दीनापुर बंगाल में पधारे और एक मास पूरा किया, वहाँ आर्यसमाज स्थापित हो चुकी थी इस लिए आप दीपमालिका के कुछ दिन पीछे ही काशीपुरी (बनारस) को चल पड़े और दोनों ऋग्वेद, यजुर्वेद, भाष्य के जुदे जुदे ग्यारहवें अंक प्रकाशित कराए जिनके टाइटिल पेज पर यह मुद्रित कराया कि एक पुस्तक जाली निवारण, स्वामी

सत्यासत्य विवेक, स्वामी जी की बनाई "मुन्शी बख्तावरसिंह मन्त्री आर्यसमाज शाहजहांपुर" के पास मिलती हैं।

स्वामी जी ने मुन्शी बख्तावरसिंह को अपना नौकर बनाने के लिये अधिक दबाया, तब लाचार उक्त मुन्शी जी ने स्वीकार कर कहा आप काशी में कार्यारम्भ कीजियेगा तब मेरी आवश्यकता हो और आप मुझे याद करेंगे मैं आजाऊंगा।

स्वामी जी ने काशी में पहुँच कर राजा विजयनगर के आनन्द बाग में डेरा जमाया, और यह इनका सप्तम बार का अन्तिम आगमन था।

कार्तिक शुक्ला १४ गुरुवार को उक्त स्वामी जी के शिष्य प० भीमसेन जी शर्मा ने काशी नगर में निम्नलिखित एक विज्ञापनपत्र प्रकाशित किया था।

विज्ञापन पत्र।

सब सज्जन लोगों को विदित किया जाता है, कि इस समय प० स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज काशीमें आकर जो श्रीयुत महाराजे विजयनगर के अधिपति का आनन्दबाग महमूरगंज के समीप है उसमें निवास करते हैं। वे वेदमत का ग्रहण करके उसके विरुद्ध कुछ भी नहीं मानते। किंतु जो २ ईश्वर के गुण कर्म स्वभाव और वेदोक्त सृष्टिक्रम प्रत्यक्षादि प्रमाण आप्तों का आचार और सिद्धान्त तथा अपने आत्माकी पवित्रता और उत्तम विज्ञान से विरुद्ध होनेके कारण पाषाणादि मूर्ति पूजा जल और स्थल विशेष पाप निवारण करने की शक्ति व्यास मुनि आदि के नाम पर छल से प्रसिद्ध किये नवीन व्यर्थ पुराण वासक आदि ब्रह्म वैवर्तादि ग्रन्थ परमेश्वर के अवतार ईश्वर का पुत्र होके अपने विश्वासियों के पास जाके मुक्ति देने हारको मानना उपदेश के लिये अपने मित्र पैगम्बर को पृथिवी परमेश्वरा पर्वतोंका उठाना, मुर्दों का जिलाना, चन्द्रमा का खण्डन करना कारण के बिना कार्य्य की उत्पत्ति मानना, ईश्वर को नहीं मानना स्वयम् ब्रह्म बनना अर्थात् ब्रह्म से व्यतिरिक्त वस्तु कुछ भी नहीं मानना जीव ब्रह्म को एक ही समझना, कण्ठी तिलक और रुद्राक्षादि धारण करना और शैव शाक्ति वैष्णव गाणापत्यादि सम्प्रदाय आदि हैं इन सबका खण्डन करते हैं, इससे इस विषय में जिस किसी वेदादि शास्त्रों के अर्थ जानने में कुशल, सभ्य, शिष्ट, इस विद्वान को विरुद्ध जान पड़े। अपने मतका स्थापन और दूसरे के मत का

खंडन करने में समर्थ हो वह स्वामीजी के साथ शास्त्रार्थ करके पूर्वोक्त व्यवहारों का स्थापन करे । इससे विरुद्ध मनुष्य कभी नहीं कर सकता इस शास्त्रार्थ में वेद मध्यस्थ रहेंगे । वेदार्थ निश्चय के लिये जो ब्राह्मणों से लेके जैमिनिमुनि पर्य्यंतके बनाये ऐतरेय ब्राह्मण से लेके पूर्वमीमांसा पर्य्यन्त वेदानुकूल आर्ष ग्रन्थ हैं वे वादी और प्रतिवादी उभय पक्षवालों को माननीय होनेके कारण माने जावेंगे । और जो उस सभामें सभासद हों वेभी पक्षपात रहित धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्ष के स्वरूप तथा साधनों को ठीक ठीक जानने सत्य के साथ प्रीति और असत्यके साथ द्वेष रखने वाले हों, इनसे विपरीत नहीं होनो पक्षवाले जो कुछ कहे उसको शीघ्र लिखने वाले तीन लेखक लिखते जाने । वादी और प्रतिवादी अपने अपने लेखके अन्त में अपने २ लेख पर स्वहस्ताक्षर से अपना अपना नाम लिखे । तथा जो मुख्य सभा सद हों वेभी दोनों के लेखपर हस्ताक्षर करें । उन तीन पुस्तकों में से एक वादी दूसरा प्रतिवादी को दे दिया जाय, और तीसरा सब सभाकी सम्मतिसे किसी प्रतिष्ठित राजपुरुष की सभा में रक्खा जावे कि जिसमे कोई अन्यथा न कर सके । जो इस प्रकार होने पर भी काशीके विद्वान लोग सत्य और असत्य का निर्णय करके औरों को न करावेंगे तो उनके लिये अत्यन्त लज्जाकी बात है, क्योंकि विद्वानों का यही स्वभाव होता है कि सत्य और असत्यको ठीक ठीक जानके सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग कर दूसरों को कराके आप आनन्द में रहना, और औरों को भी रखना ।

इस विज्ञापन के प्रकाशित करने की विशेषावश्यकता यह थी कि कर्नल अलकाट स्वामीजी से मिलने को यहा पधारने वाले थे, और इधर स्वामीजी को अपना निज यंत्रालय काशीमें खोलनेका फिक्र लग रहा था, सो जब छापेखानेका सब प्रबन्ध ठीक ठीक होना सम्भव होगया और पडित भीमसेन के दिये हुये पूर्वोक्त विज्ञापन पर काशी में किसी ने कुछ ध्यान नहीं दिया तो शीघ्रता सहित एक निम्न लिखित विषयका विज्ञापन पुन प्रकाशित किया

॥ विज्ञापनपत्र ॥

प्रथम विज्ञापन काशी के पडित मात्र पर था इस कारण यदि पडितोंने उस पर ध्यान देना उचित न जाना हो क्योंकि शिष्टातिशिष्ट ऐसे समेटके निमन्त्रण

न जानेको अपनी कुछ अप्रतिष्ठा समझते हैं एतदर्थक काशी के सब पण्डितों में शिरोमणि श्री स्वामी विशुद्धानन्दजी व पण्डित बालशास्त्री जी आदि अपना पृथक् निमन्त्रण इस द्वितीय विज्ञापन द्वारा सकृत कर मेरे प्रथम विज्ञापन में लिखे नियमानुसार मुझसे शास्त्रार्थ करनेको अवश्य और अति शीघ्र सन्नद्ध होवें ।

मार्गशिर सम्वत् १९३६ में कर्नल अलकाट बनारस पधारे जिनके मिलने को राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द रईस बनारस आनन्द बाग में आये तो प्रथम स्वामीजीसे ही भेंट हुई कुछ ज्ञान चर्चाभी रही* अतको राजा साहिब उक्त साहिब से मिलकर निजस्थानपर चले गये ।

कुछ दिन पश्चात तारीख २० दिसम्बर सन् १८७० ई० अर्थात् पौष सम्वत् १९३६ में कर्नल अलकाटने विज्ञापन प्रकाशित किया कि अमुक २ समय पर हम और स्वामी दयानन्द सरस्वती बंगाली स्कूल में व्याख्यान देंगे, जब वह समय निकट आया असंख्य दर्शकगण नियत स्थानपर एकत्रित होगये और स्वामी दयानन्द सरस्वती कर्नल अलकाट साहब को साथ लेकर पधारे । इसी अवसर पर एक चपरासी मिस्टर वाट साहिब कलक्टर बनारस की चिट्ठी लेकर आया जिसमें लिखा था कि इस समय स्वामीजी कोई व्याख्यान नहीं देने पावेंगे, हम पर स्वामीजी तो चुप हो रहे परन्तु कर्नल अलकाट साहबने अंग्रेजीभाषा में बड़ा लम्बा चौड़ा व्याख्यान दिया और कुछ समय पीछे जब स्वामीजी को सरकार से आज्ञा होगई तो दोनों महाशयोंने दिल खोलकर निज मंतव्य प्रकट किया, और माघ शुक्ला २ तारीख १२ फरवरी सन् १८८० ई० को स्वामीने "आर्य्य प्रकाश" नामक एक नवीन यन्त्रालय (प्रेस) बिजन बाग लक्ष्मी कुण्डपर खोला जिसकी रजिष्ट्री अपने नामसे कराई, और निज रचित पुस्तकें उसमेंमुद्रित करानी आरम्भ करदीं, इसका विशेष कारण यही था कि अपना भेद दूसरों पर नहीं खुलेगा ; जो रुपया छपाईमें देना पड़ता है उसकी बचत होगी, तथा वह अपने ही घर रहेगा, कार्य्य भी मनमाना उत्तम रीति से शीघ्रता सहित होता रहेगा ॥ इत्यादि० ॥

मुन्शी बख्तावरसिंह-शाहजहांपुर स्वामी जी के विशेष आग्रह से तीन

---

* देखो इसी पुस्तक का पृष्ठ ८५ * स्वामीजी को पुस्तकके छपते छपते वा पीछे भय से, अनेक बार घटाने बढ़ाने की आवश्यकता सदा लगी रहती थी ।

महीने की छुट्टी लेकर बनारस चले आये और स्वामी जी ने उनको निज यन्त्रालय का प्रथम दिन से ही मैनेजर बना दिया था।

जब स्वामीजी को यन्त्रालयकी तरफ का फिकर मिटगया तो दोनों वेदभाष्यों के अंक १२ पर जुदा जुदा निम्न लिखित विज्ञापन पत्र मुद्रित कराया।

॥ विज्ञापन पत्र ॥

सब सज्जनों पर विदित हो कि अब वेद भाष्य तेरहवें १३ अंक पर्य्यन्त मुम्बई में छपेगा, इसके आगे १४ वे अंक से लेकर आगे आगे काशी में आर्य्य प्रकाश यन्त्रालय में सदा छपा करेगा। मैंने इस यंत्रालय में अधिष्ठाता मुन्शी बख्तावरसिंह मंत्री आर्य्यसमाज शाहजहाँपुर को नियत किया है, इस लिये सब ग्राहक और दूसरे सज्जनों से यह निवेदन है कि इसके आगे अब जो कुछ वेद भाष्यादि पुस्तकों के लेने के लिये पत्र और मूल्यादि भेजा चाहें सो उक्त यन्त्रालय में उक्त स्थान पर उक्त मुन्शी जी के पास भेजा करें। और इसके आगे बाहर के लोग मुम्बई में मुन्शी समर्थ दान के समीप वेद भाष्य सबधी कार्य्य के लिये पत्र अथवा मूल्य आदि न भेजें क्योंकि १३ अंक छपे पीछे मुम्बई में इसका कुछ भी सम्बन्ध नहीं रहेगा, किंतु मुम्बई के लोग दूसरा विज्ञापन दिया जाय तब तक सब व्यवहार मुम्बई में ही रक्खें। (दयानन्द सरस्वती)

थोड़े ही दिन व्यतीत हुए थे कि स्वामी जी को निज यन्त्रालय का "आर्य्य प्रकाश" नाम प्यारा नहीं लगा और उसके बदलने के लिये शीघ्र ही यजुर्वेद भाष्य अंक १३ के टाइटिल पेजपर निम्न लिखित विज्ञापन छपाया।

॥ विज्ञापन पत्र ॥

सब सज्जनों को विदित हो कि मुम्बई में १३ अंक छपने को था सो छप चुका, अब पीछे सब काम बनारस में रहेगा, और १२ अंक में काशी के यन्त्रालय का नाम आर्य्य प्रकाश छपा था उसके बदले वैदिक यन्त्रालय नाम रक्खा गया है, इस लिये अब पीछे वेद भाष्य सम्बन्धी सब व्यवहार मुम्बई और बाहर के सब लोगों को मुन्शी बख्तावरसिंह जी प्रबन्धकर्ता वैदिक यंत्रालय से करना चाहिये मुम्बई में इसका कुछ काम नहीं है।

इस अवसर पर स्वामी जी का बनारस पधारना अत्यंत लाभकारी हुआ कि चैत्रकृष्णा ११ शनिवार को इस भारत प्रसिद्ध पंडितों की राजधानी काशी पुरी में आर्य्य समाज स्थापित हो गया, और इस सम्वत् १९३६ के अन्त होने से पहिले २ संस्कृत वर्णोच्चारण १ संस्कृत वाक्य प्रबोध २ व्यवहारभानु ३ यह तीन पुस्तक निज रचित वैदिक यंत्रालय काशी में छपाकर प्रकाशित कर दी और इन पुस्तकों को देखकर काशी में विद्वानों को भी क्लेश उत्पन्न हुआ, मन में विचारने लगे इसके चरण काशीपुरी में जम गये तो भला सनातन धर्म का गौरव धूल में मिल जावेगा, इसी आशयको लेकर चैत्र शुक्ल ११ सम्वत् १९३७ को राजा शिवप्रसाद जी सितारे हिन्द ने स्वामी जी को निम्न लिखित एक पत्र पठाया था जो स्वामी जी के उत्तर सहित प्रकाशित किया जाता है।

॥ काशी सम्वत् १९३७ चैत्र शुक्ला ११ ॥

श्री ५ मत्स्वामी दयानन्द सरस्वतीभ्यो नमोनमः ॥

जब दर्शन पाया कुछ बात हुई अधूरी रह गई इच्छा थी फिर दर्शन करू बन नहीं पड़ा सुना आप बाहर पधारने वाले हैं इस लिये उस दिन के अपने प्रश्न और आपके उत्तर अपने स्मरणानुसार नीचे लिखता हू यदि भूल हो आप सुधार दें, आगे भी कृपा करके इसी पत्र पर कुछ उत्तर लिख भेजें।

(१) मेरा प्रश्न * आपका मत क्या है ?

(१) स्वामी जी महाराज का उत्तर † हम केवल वेद की संहिता मात्र मानते हैं एक ईशावास्य उपनिषद् संहिता है, और सब उपनिषद् ब्राह्मण हैं ब्राह्मण हम कोई नहीं मानते सिवाय संहिता के हम और कुछ नहीं मानते।

(२) यदि वादी कहे कि आप वेद के ब्राह्मण नहीं मानते तो हम वेद की संहिता नहीं मानते तो आप संहिता के मंडन और ब्राह्मण के खंडन का ऐसा प्रमाण दीजिये जिससे ब्राह्मण का मंडन और संहिता का खंडन न हो सके, वादी को आप अपनी प्रतिध्वनि समझिये प्रमाण चाहे ४ मानिये चाहे ६ चाहे ८

---

* जहाँ जहाँ * ऐसा चिन्ह है वह वचन राजा शिवप्रसाद का है।

† जहाँ जहाँ † ऐसा चिन्ह है वह वचन स्वामी दयानन्द सरस्वती का है।

चाहे सहस्रों सिवाय शब्द के और सबका सहारा प्रत्यक्ष है सो इसमें प्रत्यक्ष हो सकेगा नहीं और शब्द जो आपने ब्राह्मण ही को नहीं माना तो दूसरा कहां से लाइयेगा केवल आप के कहने से कोई कुछ क्यों मान लेगा ? *

(२) संहिता स्वयं प्रकाश है अनुभव सिद्ध है। *

(३) यदि कहना है कि ब्राह्मण स्वयं प्रकाश और अनुभव सिद्ध हैं ?*

आपका दास—शिवप्रसाद।

स्वामी दयानन्द जी का उत्तर।

ॐ ओ३म् ॐ

संवत् १९३७ चैत्र शुदी १२ गुरुवार। राजा शिवप्रसाद जी आनन्दित रहो। आपका चैत्र शुक्ला ११ बुधवार का लिखा पत्र मेरे पास आया देख कर आपका अभिप्राय विदित हुआ उस दिन आपसे और मुझसे परस्पर जो जो बातें हुई थी तब आपको अवकाश कम होने से मैं न पूरी बात कह सका और न आप पूरी बात सुन सके क्योंकि आप उन साहबों से मिलने को आये थे आपका वही मुख्य प्रयोजन था पश्चात् मेरा और आपका भी समागम न हुआ जो कि मेरी और आपकी बातें उस विषय में परस्पर होती अब मैं आठ दश दिनों में पश्चिम को जाने वाला हूं इतने समय में जो आप को अवकाश हो सके तो मुझसे मिलिये फिर भी बात होसकती है और मैं भी आपको मिलता परन्तु अब मुझको अवकाश कुछ भी नहीं है इससे मैं आपसे नहीं मिल सकूँगा क्योंकि जैसा सन्मुख में परस्पर बातें होकर शीघ्र सिद्धान्त हो सकता है वैसा लेख से नहीं इसमें बहुत कालकी अपेक्षा है।

(१) आप का प्रश्न * आपका मत क्या है ?

(१) मेरा उत्तर ! वैदिक।

(२) आप वेद किसको मानते हैं ?

(२) संहिताओं को ?

(३) क्या उपनिषदोंको वेद नहीं मानते *

जहां जहां * ऐसा चिन्ह है वह वचन राजा शिवप्रसादका है,

जहां जहां ! ऐसा चिन्ह है वह वचन स्वामी दयानन्द सरस्वती का है,

(३) मैं वेदों में एक ईशावास्यको छोडकर अन्य उपनिषदों को नहीं मानता किन्तु अन्य सब उपनिषद् ब्राह्मण ग्रन्थों में हैं वे ईश्वरोक्त नहीं हैं ।

(४) क्या आप ब्राह्मण पुस्तकों को वेद नहीं मानते ?

(४) नहीं क्योंकि जो ईश्वरोक्त है वही वेद होता है जीवोक्त नहीं जितने ब्राह्मण ग्रन्थ हैं वे सब ऋषि मुनि प्रणीत और संहिता ईश्वर प्रणीत है जैसा ईश्वर के सर्वज्ञ होने से तदुक्त निर्भ्रान्त सत्य और मत के साथ स्वीकार करने के योग्य होता है वैसा जीवोक्त नहीं हो सकता क्योंकि वे सर्वज्ञ नहीं परन्तु जो २ वेदानुकूल ब्राह्मण ग्रन्थ हैं उनको मैं मानता और विरुद्धार्थों को नहीं मानता, हां वेद स्वतः प्रमाण और ब्राह्मण परतः प्रमाण हैं इससे जैसे वेद विरुद्ध ब्राह्मण ग्रथों का त्याग होता है वैसे ब्राह्मण ग्रन्थों में विरुद्धार्थ होने पर भी वेदों का परित्याग कभी नहीं हो सकता क्योंकि वेद सर्वथा सबको माननीय ही हैं, †

अब रहगया यह विचार कि जैसा संहिताओं को ईश्वरोक्त निर्भ्रान्त सत्य वेद मानना होता है वैसा ब्राह्मण ग्रन्थों को नहीं इसकाउत्तर मेरी बनाई ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के नवमे पृष्ठ ९ से लेके ८८ अट्ठासी के पृष्ठ तक वेदोत्पति, वेदों का नित्यत्व, और वेद संज्ञा विचार विषयों को देख लीजिये वहां मैं जिसको जैसा मानता हूँ सब लिख रक्खा है इसीको विचार पूर्वक देखनेसे सब निश्चय आपको हो जाएगा कि इन विषयों में जैसा मेरा सिद्धान्त है वैसाही जानि लीजियेगा ।

(दयानन्द सरस्वती काशी)

॥ राजा शिव प्रसादजी का दूसरा पत्र ॥

श्री काशी वाराणसी संवत् १९३७ चैत्र शुक्ला पूर्णमा ॥

श्री ५ मत्स्वामि दयानन्द सरस्वतीभ्यो नमो नमः

आपका कृपा पत्र चैत्र शुक्ला १२ का पा अत्यन्त कृतार्थ हुआ मेरेका प्रचन्ड उत्ताप अवकाश नहीं देता कि आपके दर्शनानन्द से मन ठन्डा करू तब तक आप कृपा करके पत्र द्वारा मेरे मन को सन्देह के ताप से बचावें ।

आपने लिखा "ब्राह्मण ग्रन्थ सब ऋषि मुनि प्रणीत और संहिता ईश्वर प्रणीत है" तादी कहता है जो "संहिता ईश्वर प्रणीत है" तो ब्राह्मण भी ईश्वर प्रणीत

† जहां जहां ऐसा चिन्ह है वह वचन स्वामी दयानन्द सरस्वती का है ।

है और जो "ब्राह्मण ग्रंथ सब ऋषि मुनि प्रणीत" है तो संहिता भी ऋषि मुनि प्रणीत है आपने लिखा "वेद (संहिता) स्वतः प्रमाण और ब्राह्मण परतः प्रमाण हैं' वादी कहता है जो ऐसा है तो ब्राह्मणही स्वतः प्रमाण हैं आप का संहिता परतः प्रमाण होगा (२) आपने प्रमाण एसा कोई दिया नहीं (३) जिससे जिज्ञासू की तुष्टि प्रश्न की पूर्ति और सिद्धान्त की आशा हो आपने लिखा कि "मेरी बनायी हुई ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के नवमें पृष्ठ से (९ लेके ८८) अट्ठासी के पृष्ठ तक वेदोत्पत्ति वेदों का नित्यत्व और वेद संज्ञा" विचार विषयों को देख लीजिये" "निश्चय होगा" सो महाराज "निश्चय" के पतदे में तो और भ्रान्ति में पड़ गया मुझे तो इतना ही प्रमाण चाहिये कि आपने संहिता को "माननीय" मानकर ब्राह्मण का क्यों "परित्याग" किया और वादी तो संहिता जैसा ब्राह्मण को वेद मान जो आपने "वेद" के अनुकूल लिखा अपने अनुकूल और जो कुछ ब्राह्मण के प्रतिकूल लिखा उसे संहिता के भी प्रतिकूल लिखा उसे संहिता के भी प्रतिकूल समझता है तो भी मैंने आपकी "भाष्य भूमिका" सग्रंथ के देखी पर उसमें क्या देखता हूँ कि पहले ही (पृष्ठ ९ पंक्ति ८) लिखा है 'तस्माद्यज्ञात् ... अजायत" अर्थात् उस यज्ञ से (वेद) उत्पन्न हुए पृष्ठ १० पंक्ति २९ में आप शतपथ आदि ब्राह्मण का प्रमाण देकर यह सिद्ध करते हैं कि यज्ञ विष्णु और विष्णु परमेश्वर (४) और फिर पृष्ठ ११ पंक्ति १७ में आप यह लिखते हैं कि "याज्ञवल्क्य महाविद्वान जो महर्षि हुए हैं अपनी पंडिता मैत्रेयी स्त्री को उपदेश

(२) मैं अपने पहले पत्रमें लिख चुका हूं कि "वादी को आप अपना प्रतिध्वनि समझिये।

(३) स्वामीजी महाराज प्रमाण कुछ भी नहीं देते जो आप अपने मनमानी कह देते हैं उसी को चाहते हैं कि लोग विद्वानों का वेष जानें।

(४) कैसा आश्चर्य है कि आपही तो संहिता "स्वतः प्रमाण' और ब्राह्मण को "परतः प्रमाण" लिखते हैं और फिर आपही संहिता के 'ईश्वर प्रणीत' होने के लिये परतः प्रमाण' शतपथ ब्राह्मण का प्रमाण देते हैं जैसे किसी मुद्दई का गवाह गवाही दे कि मुद्दईका तमस्सुक सच्चा है पर मुद्दाअलैहको रसीद भी मिली है मुद्दई चुक गया और मुद्दअलैह कहे कि गवाह झूठा है मुझेसे कोई पैसा नहीं पाया तमस्सुक ठीक होने के प्रमाण में उसी गवाह को लाये जो झूठा प्रमाण (सबूत) माँगे तो कहे मैं कहता हूं मेरा दावा सच्चा है।

करते हैं कि हे मैत्रेयि जो आकाशादि से भी बड़ा सर्व व्यापक परमेश्वर है उससे ही ऋग् यजु साम और अथर्व ये चारों वेद उत्पन्न हुए हैं" परन्तु आपने याज्ञवल्क्यजी का यह वाक्य क्या हो अपना उपयोगी समझ क्यों लिखा क्या इसीलिये कि ईश्वर आदी का उपयोगी है ? वास्तव तो यही है—एवम् अरेऽस्य महतो भूतस्य निश्वमित मेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेद सामवेदो ऽथर्ववाँगिरस इतिहास पुराण विद्या उपनिषद श्लोका सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानानी मूग हुतमाशित पायितमयंच लोक परश्चलोक सर्वाणिच भूतान्यस्यै वैतानि सर्वाणि निश्वसितानि अर्थात् अरी मैत्रेयी इस महाभूत के यह ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद अथर्ववेद इतिहास पुराण विद्या उपनिषद श्लोक सूत्र अनुव्याख्या व्याख्यां इष्ट हुत खाया पिया यह लोक पर लोक सब भूत सब निश्वसित हैं

(५) मुझे इस समय और कुछ वर्क वितर्क आवश्यक नहीं इतना कहना अलम् कि आपने इस प्रमाण से तो कि जो बृहदारण्यक ब्राह्मण का है जैसे वेद ईश्वर प्रणीत हैं वैसे ही उपनिषदादि सब ईश्वर प्रणीत हैं यदि इसका अर्थ यह कीजियेगा कि उपनिषद् जीव प्रणीत है तो आपके चारों वेद भी वैसा ही जीव प्रणीत ठहर जायेंगे आपने सहिता स्वत प्रमाण और ब्राह्मण को परत प्रमाण लिखा और फिर सहिता के स्वत प्रमाण सिद्ध करने को उन्हीं परत प्रमाण ब्राह्मणो का आप प्रमाण लाते हैं सो इस व्याघात से छुटने के लिये यदि कुछ उत्तर हो आप कृपा करके शीघ्र लिख भेजें तब तक मैं आपकी भाष्य भूमिका आगे नहीं देखूँगा पृष्ठों को कुछ उलट पुलट किया तो विचित्र लीला दिखाई देती है आप पृष्ठ ८१ पंक्ति ३ में लिखते हैं "कात्यायन ऋषिने कहा है कि मन्त्र और ब्राह्मण ग्रन्थों का नाम वेद है" पृष्ठ ५२ में लिखते हैं प्रमाण ८ हैं और फिर पृष्ठ ५३ मे लिखते हैं चौथा शब्द प्रमाण "आप्तों के उपदेश" पाचवा ऐतिह्य "सत्यवादी विद्वानों के कहे वा लिखे उपदेश" तो

(५) यह तो बड़ी हसी की बात है कि स्वामी जी महाराज ने जिस वचन को रौहिना "ईश्वर प्रणीत" होने के लिये प्रमाण दिया है उसमें चारों वेद का नाम ले लिया और वेदों के आगे जो उपनिषदादि का नाम लिखा है उसे सम्पूर्ण छोड़ मानो यह समझा कि हमारे सिवाय किसी ने बृहदारण्यक उपनिषद् देखा नहीं है।

आपके निकट कात्यायन ऋषि "आप्त" और सत्यवादी विद्वान" नहीं थे (६) पृष्ट ८२ में आप लिखते हैं कि ब्राह्मण में जमदग्नि कश्यप इत्यादि जो लिखे हैं सो देहधारी हैं अतएव वह वेद नहीं और संहिता में शतपथ ब्राह्मण (।) के अनुसार जमदग्नि का अर्थ चक्षु और कश्यप का अर्थ प्राण है अतएव वेद है (॥) फिर आप उसी पृष्ट में लिखते हैं कि "ब्राह्मणानीतिहासान्पुराणानिकल्पान गाथा नाराशसी" (७) "इस वचन में ब्राह्मणानिसंज्ञी और इतिहासादि संज्ञा है" तो इस युक्ति से बृहदारण्यक का वचन जो मैंने ऊपर लिखा है उसमें भी क्या उपनिषद् संज्ञी और इतिहास पुराणादि संज्ञा है अथवा ऋगादादि क्रमानुसार उनका संज्ञा वा संज्ञा है ? पृष्ट ८८ पंक्ति १२ में आप लिखते हैं कि "ब्राह्मण वेदों के अनुकूल होने से प्रमाण के योग्य तो हैं" यदि आप इतना और मान लें कि सम्पूर्ण ब्राह्मणों का प्रमाण संहिता के प्रमाण के तुल्य है अथवा पृष्ट ४२ पंक्ति ७ में आप लिखते हैं "तत्रा परा ऋग्वेदो यजुर्वेद. सामवेदो ऽथर्ववेद शिक्षा कल्पो व्याकरण निरुक्त छन्दो ज्योतिषमिति अथ परायेया तदक्षरमधिगम्यते" इसका अर्थ सीधा सीधा यह मान लेवें कि आपके चारों वेद और उनके छओ अंग "अपरा" हैं जो "परा" उससे अक्षर में अधिगमन होता है अपना फिरपट का अर्थ व अर्थाभास छोड़ दें (८) तो बड़ा अनुग्रह हो मेरा सारा परि-

---

(६) भाई ! आप ही कहो कि कात्यायन ऋषिजी को झूठ बोलने का क्या प्रयोजन था क्या कोई उनका भी मुकद्दमा किसी अंगरेजी अदालत वा कचहरी में पेश था भला वह झूठ लिखते तो उनके सहकारी लोग उसे कब चलने देते पर जो हो दयानन्दजी ने कात्यायन जी को झूठा बनाया तो मैं पूछता हूं कि जब कात्यायन जी ही झूठे ठहरे तो अब दयानन्दजी की बात यों ही कौन मान लेगा ?

(७) इसका अर्थ बहुत स्पष्ट है अर्थात् ब्राह्मण (और) इतिहास (और) पुराण (और) कल्प (और) गाथा (और नाराशसी परन्तु स्वामी जी महाराज ने पहिले (और) को जगह (अर्थात्) कल्पना कर लिया अर्थात् ब्राह्मण अर्थात् इतिहास पुराणादि !

(८) स्वामी जी महाराज अपनी भाष्य भूमिका में (पृष्ठ ४२ पंक्ति ७) इसके अर्थ यों लिखते हैं "(तत्रापरा०) वेदों में दो विद्या हैं एक अपरा दूसरी

श्रम सफल हो जावे और आपके दर्शन का उत्साह बढ़े किमधिकं तात्पर्यम् ।

आपका दास—शिवप्रसाद ।

स्वामी दयानन्द जी का पिछला उत्तर ।

राजा शिवप्रसाद जी आनन्दित रहो आपका पत्र मेरे पास आया देख कर अभिप्राय जान लिया इसमें मुझको निश्चय हुआ कि आपने वेदों से लेके पूर्व मीमांसा (९) पर्यंत किन्हीं पुस्तकों के मध्य में से किसी भी पुस्तक के शब्दार्थ सम्बन्धों को जाना नहीं है इस लिए आपको मेरी बनाई भूमिका का अर्थ भी ठीक २ विदित न हुआ जो आप मेरे पास आ के समझते तो कुछ समझ सकते परन्तु जो आपको अपने प्रश्नों के प्रत्युत्तर सुनने की इच्छा हो तो स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती व बाल शास्त्री को खड़ा कर के (१०) सुनियेगा तो भी आप कुछ २ समझ लेंगे क्योंकि वे आपको समझावेंगे तो कुछ आशा है समझ जायेंगे भला विचार तो कीजिये कि आप उन पुस्तकों के पढ़े बिना वेद और ब्राह्मण पुस्तकों का कैसा आपस में सम्बन्ध क्या २ उनमें हैं और स्वत प्रमाण तथा ईश्वरोक्त वेद और परत प्रमाण और ऋषि मुनि कृत ब्राह्मण पुस्तक हैं इन हेतुओं से क्या २ सिद्धान्त सिद्ध होते और ऐसे हुए बिना क्या २ हानि होती है इन विद्या रहस्य की बातों को जाने बिना आप कभी नहीं समझ सकते । सर्वत्

परा इनमें अपरा यह है कि जिससे पृथ्वी और तृण से लेके प्रकृति पर्यंत पदार्थों के गुणों के ज्ञान से ठीक ठीक कार्य सिद्ध करना होता है और दूसरी परा कि जिससे सर्वशक्तिमान् ब्रह्म की यथावत् प्राप्ति होती है यह परा विद्या अपरा विद्या से अत्यन्त उत्तम है क्योंकि अपरा का ही उत्तम फल परा विद्या है" निदान स्वामी जी महाराज ने इतना तो लिखा परन्तु सीधा अर्थ व आशय नहीं लिखा कि चारों वेद (संहिता) और उनके छओं अंग अपरा हैं परा उनके सिवाय अर्थात् उपनिषद् हैं ।

(९) जान पड़ता है कि स्वामी जी महाराज ने पूर्व मीमांसा ही तक देखा, है उत्तर मीमांसा नहीं देखा नहीं तो ऐसा न लिखते ।

(१०) तो जहां जहां जिसके पास माध्य भूमिका जाती है सब के पास स्वामी विशुद्धानन्द और पं० बालशास्त्री जी को जाना चाहिये अथवा उन सबको समझने के लिये दयानन्द जी के पास जाना चाहिये ।

१९३७ मि० वै० व० सप्तमी शनिवार। (दयानन्द सरस्वती *)

तत्पश्चात् वैशाख सम्वत् १९३७ में ऋग्वेदभाष्य अक १४ यजुर्वेद भाष्य अक १४ दोनों वैदिक प्रेस काशी में छपकर प्रकाशित हुए और स्वामी जी फर्रुखाबाद चले आये और यहां पहुँचकर राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द के निवेदन के उत्तर में आपने "भ्रमोच्छेदन" नाम पुस्तक रचा और छपाकर उक्त राजा साहब के पास भी पठाया जिसके बनाये जाने की मिती ज्येष्ठ शुक्ला २ गुरुवार निम्न लिखित श्लोक से विदित होती है।

मुनिरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे शुक्ले मासेऽसिते दले।
द्वितीयायां गुरौ वारे भ्रमोच्छेदो ह्यलंकृतः ॥१॥

इस पुस्तक में राजा शिवप्रसाद जी के प्रश्नों का उत्तर लिखने के बदले स्वामी जी ने उनको अनेक कुवचन लिख मारे, जो आगे चलकर देखने में आवेंगे और उनको राजा साहब ने अपने दूसरे पिछले निवेदन में स्वत लिखा है।

स्वामी जी ने फर्रुखाबाद रहते रहते ही एक पत्र अपने शिष्य शामजीकृष्ण वर्मा को संस्कृत में लिख लंडन भेजा जिसका उल्था शुद्ध देवनागरी में निम्न लिखित है॥

नमस्ते। विदित हो कि यद्यपि तुम बावजूद साबित कदमी तरीके वेद और अपनी विद्या के स्तुति योग्य हो परन्तु परम पश्चाताप की बात है कि तुमने अपने पत्र द्वारा बहुकाल से मुझको आनंदित नहीं किया अब मैं आशा करता हूं कि तुम अपने कुशल और नीचे लिखे विषयों के जवाब से मुझको बहुत शीघ्र प्रमुदित करोगे।

इङ्गलिस्तान के रहने वाले लोग किस प्रकार के हैं? और उनकी प्रकृति और ढंग व चलन कैसे हैं? वहां की पृथ्वी और वायु जल कैसा है? और सामान खाने पीने आदि आराम का वहां किसप्रकार मिलता है? जब से तुम यहां से गये हो तब से तुम्हारी शारीरक आरोग्यता की क्या दशा है? और इङ्गलिस्तान

* राजा शिवप्रसाद जी सितारे हिन्द अपनी निवेदन नाम पुस्तक में स्वामी दयानन्द जी के वै, व ७ के पत्र के अन्त पर लिखते हैं कि (स्वामी विशुद्धानन्द जी का लिखाया) राजा साहब के प्रश्नों का उत्तर दयानन्द से नहीं बना?

में तुम्हारी खास इच्छा पूरी भी होती है * वा क्या ? वहां के लोग किस प्रकार प्रेम रखते हैं और क्या क्या पुस्तकें तुमसे पढते हैं ? तुम्हारी मासिक प्राप्ति और व्यय क्या है ? और तुम्हारे अधीन मन्त्रों के पूर्वापर अवलोकन करने व विचारने और दूसरों के पढाने का समय क्या २ नियत है ? इसका क्या कारण है कि धर्मोपदेश करने में आर्य्यावर्त के अनुरूप अभीतक तुम्हारी प्रसिद्धि इङ्गलिस्तान में नहीं फैली ? कदाचित् मेरी दूरस्थिति होने के कारण मुझको तुम्हारी प्रसिद्धि के समाचार न मिलते हों ? अथवा इस काम के करने का तुमको अवकाश न मिलता हो यदि इस का कारण द्वितीय है तो अब मेरी प्रबल इच्छा यह है कि जिस वक्त तुम पढाने से निश्चिन्त हुआ करो उस समय वैदिक मत की उन्नति में जिस प्रकार हो वहां खूब यत्न करो पश्चात् यहां चले आओ क्योंकि ऐसे सर्वोत्तम और सर्वोपकारी काम में अपनी प्रसिद्धि करना रुपया पैदा करने से विशेषतर उत्तम है । हमारे मित्र प्रोफेसर मोनियर **विलियम** और **मोक्षमूलर** साहबों की वेद और शास्त्रों के विषय में श्रद्धा वहांके और विद्वानों की मेरे वेदभाष्यपर कैसी ? क्या ? सम्मति अर्थात् राय है । क्या यह सत्य है ? कि थ्यूसूफिकिल सोसाइटी ने कोई वेदमत की शाखा लन्दन में स्थापित करदीहै, कभी तुमने भरत खंडकी राज राजेश्वरी से भी सन्मान परिचय प्राप्त किया है और कभी पारलीमेंट में भी गये हो ? परम प्रीति पूर्वक इन सब प्रश्नोंका उत्तर अति शीघ्र भेजदो । और वे भी बातें लिखो जिनको तुम अपने निकट लिखने के योग्य समझो । प्रस्तुत मेरा इतनाही लेख बहुत है क्योंकि बुद्धिमानों को संकेत मात्र अपेक्षित होता है । न विस्तार । इति । तिथि ज्येष्ठ शुक्ला० ७ मङ्गलवार सम्वत् १९३७ विक्रमी ।

इधर मुन्शी बख्तावरसिंह जी (जिन्होंने केवल ३ महीने की छुट्टी लेकर स्वामीजी का प्रेम चलाया था) काम से जुदा होनेपर उदासी हुये तो समाचार पाते ही स्वामी जी ने अपनी निम्न लिखित सारांश की चिट्ठी द्वारा उनका उत्साह बढ़ाया ।

मुन्शी बख्तावरसिंह जी आप आनन्द पूर्वक काम किये जाइये सरकारी नौकरी छोड़ने में जो आपको पिन्शन का घाटा है उसके पूरा करने का प्रबन्ध हम

* हम नहीं कह सकते कि वह खास इच्छा क्या थी ?

अपने वसीयतनामे में (जो शीघ्र लिखनेका इरादा है), पूरा पूरा कर देंगे।

इस वचन का मुन्शी जी को जब पूरा विश्वास न हुआ तो उन्होंने सरकारी नौकरी छोड़देनी अनुचित जान और सात महीने की अधिक छुट्टी ले ली।

जब मुन्शी भगवानसिंह जी की सात मासकी अधिक छुट्टी भी पूरी होने पर आई तो स्वामीजी ने एक मायायुक्त निम्न लिखित चिट्ठी निज कर कमलों से लिख निज शिष्य पंडित भीमसेन के पास पठाई।

पंडित भीमसेन जी आनन्दित रहो।

अब तुमने ८ दिन पीछे चिट्ठी भेजना बन्द क्यों कर दिया? बराबर आठ दिन पीछे चिट्ठी भेजाकरो और यह लिखा करो कि इस सप्ताह में इतनी पुस्तकें छपीं और यह यह काम हुआ, और अब क्या होता है? आगे सप्ताह में कौन २ काम होने वाला है और जब २ चिट्ठी लिखा करो मुन्शी जी से पूछ देखा करो कि इन ८दिनों में कितनी पुस्तकें छपीं और जब २ छपकर तयार हुआ करें सब गिनकर संख्या लिखा करो और मुन्शीजी तो माहवारी आमदनी बिक्री के रुपयों के हिसाब की चिट्ठी लिखते ही हैं तथापि तुम भी बराबर २ सब पूछ लिया करो और मुन्शी जी से कहना कि तुमको कुछ भी शंका न करनी चाहिये आप इस्तीफा सरकारी नौकरी से दे दीजिये जब तक तुम काम करने वाले हो जब तक तुम्हारे शरीर में प्राण हैं और सामर्थ्य है तब तक आनन्द से काम किया करो और पश्चात् भी तुम्हारी सलाह से काम हुआ करेंगे और वसीयत नामा के सभासद सब आर्य्य समाज के हैं किसी प्रकार की हानि उनके लिये न करेंगे और निश्चय है कि मुन्शी जी भी ऐसे नहीं हैं कि धर्म विरुद्ध काम करें, और वसीयतनामे में यह अवकाश रक्खा है कि चाहे जिसको रजिष्टरी जितने अधिकार वा धन देने आदि के लिये मैं करा दूंगा उसका पूरा करना सभा को अवश्य होगा और अधिक न्यून अदल बदल वा दूसरा वसीयतनामा करनेका अधिकार मैंने अपना पूरा रक्खा है चाहे किसी सभासद को निकाल दूं वा किसी अन्य सभासद को भरती कर दूं इत्यादि नियम इसलिये रक्खे हैं कि जो चाहे सो हम कर सकते हैं ये सभासद मुन्शीजी के सुहृद ही हैं, और सब विद्वान

और धार्मिक हैं किसी के लिए अन्याय की वृत्ति नहीं करते तो क्या मुन्शी जी के लिये अन्यथा प्रवृत्ति करने को उद्यत हो सकते हैं, कभी नहीं क्योंकि धार्मिक लोग सदा धर्मप्रिय और अधर्म द्वेषी ही होते हैं, क्या मैं वा वे सभासद मुन्शीजी को परोपकार के लिये प्रवृत्त हुए नहीं जानते हैं इससे यह पत्र मुन्शी बख्तावर रसिह जी को एकान्त में सुना देना और इस पत्र को अपने पास रक्खा चाहे तो दे देना तुमको यह पत्र इसलिए लिखा है कि तू भी उसका साक्षी रहे और यह लेख मैंने अपने हाथ से इसलिए किया है कि यह बात गुप्त रहे और समय पर काम आवे । हस्ताक्षर दयानन्द सरस्वती*

इस चिट्ठीपर मुन्शी जी ने कुछ भरोसा नहीं किया और छुट्टी के पूरा होते ही स्वामी जी के वैदिक यन्त्रालय से पृथक् हो गये ।

पंडित गोपालराम फर्रुखाबादी के नाम दयानन्द की एक चिट्ठी की नकल

‡ पंडित गोपालराम जी आनन्दित रहो । मैं आशा करता हूँ कि जो २ बातें करनी आपके लिये नीचे लिखता हूँ सो २ आप यथावत् स्वीकार करेंगे ।

(१) जो "मीमांसकीय सभा" नियत की गई है उसके ५ सभासद निश्चित किये गये हैं एक आप १ बाबूजी २ लाला रामनाथ ३ लाला रामचरण ४ आपके लाला निर्भयरामजी ५ और इनकी अनुपस्थिति में क्रमश यथा आपके लाला नरायण दास मुख्तार । लाला हरनारायण पुरोहित । मन्नीलाल । लाला कालीचरण और लाला निर्भयराम के कोई पुत्र अर्थात् तीनों में से एक जो उपस्थित हो नियत किये गये हैं ।

(२) जहा तक बने और आप उपस्थित हों तो व्याख्यान भी समाज में दिया करें ।

(३) जो मासिक पुस्तक निकलता है वह भी आपके हाथ से बनेगा अथवा बने पर शुद्ध कर देंगे तो भी अच्छा होगा । इति । आषाढ कृष्ण०८ बुधवार सम्वत १९३७ विक्रमी. (ह० दयानन्द सरस्वती) ।

* यह चिट्ठी आर्य्यदर्पण पत्र संख्या ५ खंड ७ मास मई सन् १८८६ ई० में छपी है ।

† स्वामीजी का मायाजाल और पूर्वापर इस चिट्ठी के लेख से ही विदित होता है ।

अब स्वामी जी का भ्रमोच्छेदन पुस्तक काशीपुरी के विद्वानों ने देखा बड़े चकित हुये और स्वामी जी की विद्वत्ता पर परम उपहास्य किया, अनेक प्रकार के लेख पुस्तकादि इनके प्रतिकूल लिखे गये जिनमें से लोक रावण और प्रबोध निवारण इन दो पुस्तकों की भूमिका यहां प्रकाशित की जाती है, जिसके देखने से स्वामी जी की विद्या और बुद्धि का भी परिचय हो जायगा।

॥ लोकरावण भूमिका ॥



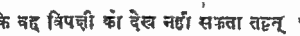
पन्यलोत्थित आदि निसे दम निशेषण विलक्षित अर्थात् बराह समान आकार और चरित्र का एक कोई भिक्षुक भेषधारी काशी में आया उसकी यह गजब धृष्टता और चाह कि यहां के विद्वान मुझसे शास्त्रार्थ करें। यह सुन भारत राजकुल रत्नायित आदि ६ विशेषण युत काशी नरेश ने कहा कि मेरी इस विद्वन्मती काशी में आकर बैठा पंडितमन्य नास्तिक यदि यहां से विमुख गया तो मेरी बड़ी भारी अपकीर्ति होगी अतः सम्वत् १९२६ के कार्तिक शुक्ला १३ मंगलवार के दिन सायंकाल के समय घटिका द्वय मात्र में पंडितों से मुंडी के प्रश्नों का उत्तर और करतालि दिलवा कर (जन करताल बहुलो सभा विसर्जन कवत राजा) जीत बताते घर आये जनक समान राजा ईश्वरीप्रसाद नारायणजी ॥लिखत गाव + ॰अन्धीत शास्त्र + अवशिष्ट साहसमा + गर्हणा पान + वेद्रुमेच्छसा + क्षुद्रमुंडी द्वारा तो भी बाती के भांति देशान्तरों में घूमता अपनी जीत बताता हुआ वह अमरीका वालों के साथ फिर एक बार काशी में आया तहाँ किसी बाग में बैठा हुआ था कि इतने में वहाँ जगत् विख्यात् यशः कर्नल अलकाट से मिलने चतुर शिरोरत्नायित राजा शिव प्रसाद गये। उन्होंने वहां इसके मत और मति की परीक्षा वेद व ब्राह्मण शब्दार्थ के बहाने से की, मुँडी की बात चीत बहुत भद्दी थी परन्तु प्रवचन प्रपंच चातुरी को लिये कटाक्ष करे तो राजा शिवप्रसाद बोले कि यों मुझ मतमतों के समक्ष में बिना लिखे नहीं आने की * मुंडी ने भी स्वीकार किया परन्तु पत्रोत्तर उसके कपट कौटिल्य, निंदा मात्सर्य और अभिमान से भरे हुये थे ‡ तो भी राजा सम्

* राजा शिवप्रसाद का आदि निवेदन इस पुस्तक में प्रथम लिख चुके हैं,

‡ थोथा चणा बाजे घणा, अथवा अधूरे जल के घट उत ‡ अब तो स्वामी जी का

रहे और उन्होंने निवेदन नाम का पुस्तक छपवा कर उसके और सर्व आर्य्य समाजियों के पास भेजी इसने उसके उत्तर में भ्रमोच्छेदन (वस्तुतः भ्रमोत्पादन) छपवाया। उसमें सपथ लिखी कि अब पर मैं कभी काशी के किसी विद्वान पंडित से शास्त्रार्थ न करूंगा। इसने यह उचित ही किया अब यह फारसी और अंग्रेजी पढ़े हुए मूर्खों को उकसाता फिरता है। मेरे चित्त को इसकी वेद प्रतारणा दुःखानी है एतदर्थ मेरा यह सब उद्योग है अन्यथा मेरी इस क्षुद्र के साथ क्या महिमा थी, सिंह, शशक व मशकों से कभी नहीं भिड़ता, परन्तु उसका जातीय स्वभाव यह है कि वह विपक्षी को देख नहीं सकता तद्वत् अधर्म निवारणार्थ इस वादानर्ह के साथ मेरी यह प्रवृत्ति जानिये। इति लोक रक्षण भूमिका ॥

॥ अबोध निवारण की भूमिका ॥



बड़े आश्चर्य्य की बात है कि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने संस्कृत वाक्य प्रबोध नामक ग्रन्थ को केवल इसी प्रयोजन से बनाया है कि साधारण जनों को संस्कृत का बोध हो और कुछ बोल चाल आवे। पर उस छोटी सी पुस्तक में इतनी अशुद्धियां हैं कि कदापि सर्व साधारण लोगों का उपकार उसमें नहीं हो सकता, हां इतनी बात तो हो सकती है कि जिन लोगों को क्रुद्ध आता है सो भी भूल जायेंगे। जब कि यह पुस्तक उसी प्रयोजन से बनाई गई है और उसमें इतनी अशुद्धियां भरी हैं तो वेदभाष्यादि पुस्तकों की शुद्धता इतने ही से जान लेनी चाहिये। वेदों का बनाना तो स्वामी जी ने व्याकरण ही की सहायता से किया है और जब उसी की यह दशा है तो कैसे उनके अर्थों पर विश्वास हो सकता है? अब इस पुस्तक में शब्दशुद्धि अर्थाशुद्धि और अनुवादाशुद्धि इतनी हैं कि कोई कहां तक लिखे पर हमारे मित्र पंडित अम्बिकादत्त व्यास ने कुछ थोड़ी बहुत यहां दिखलाई हैं, जिससे पाठक गण को सम्पूर्ण ग्रंथ का भाव जान पड़ेगा पाठकों को उचित है कि पक्षपात और द्वेष भाव को छोड़ कर सत्यासत्य का विचार करें तो

काशीपुरी में आर्य्य समाज स्थापित होगया यन्त्रालय खुल गया सम्पूर्ण मनोकामना पूरी होगई पस अब काशी के विद्वानों से शास्त्रार्थ करके और क्या लेना है?

यह भूमिका दयानन्द दिग्विजय में छप चुकी है।

शीघ्र ही स्वामी जी की विद्वत्ता प्रकट हो जायगी। भला मैं स्वामी जी से ही पूछता हूँ कि क्या इसी विद्या पर आप राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद की निन्दा करते हैं * और वृथा अपनी प्रसिद्धि के लिये काशी के प्रसिद्ध पण्डितों से शास्त्रार्थ करने को ललकारते है ?

आपके बल का ज्ञान पण्डितों को इतने ही से हो गया। बस इतना ही आपको कहते हैं कि यदि कुछ विद्या रखते हैं और अपने को पण्डित लगाते हैं तो इसका प्रत्युत्तर देकर अपने लेख को शुद्ध ठहराइए और इस अकीर्ति को मिटाइए और यदि आप सचे देशहितैषी हों तो इन स्वरचित अशुद्ध पुस्तकों को नदी में फेंकवादीजिये अथवा अग्नि देवता को समर्पण कर डालिए जिससे उनके पढ़ने से संसार में दिनो दिन अशोध की वृद्धि न हो० अब आपको अधिक क्या समझावे आप स्वयं बुद्धिमान हैं। प्यारे पाठकगण ! मुझको आशा है कि स्वामी जी लोकोपकार में बहुत दृष्टि रखते हैं इस लिए लोकाशोध निवारक पण्डित अम्बिकादत्त व्यास जी को (जिन्होंने उनके ग्रन्थ का शुद्धि पत्र बनाया) शतशः धन्यवाद देंगे और कृतज्ञों की नाईं उनका परमोपकार मानेंगे। परन्तु यदि दैवात् वे अपनी अशुद्धियों को व्याकरण से शुद्ध करने के अभिप्राय से कोई पत्र प्रकाश करें तो उनको उचित है कि जैसे मैंने इस लेख में स्वामी दयानन्द जी ऐसे ऐसे उत्तम शब्दों ही का प्रयोग किया है, वैसे ही वे भी उत्तम शब्दों ही को लिखेंगे। और यदि इतने पर भी वे गाली प्रदान करेंगे तो हम लोग समझ लेंगे कि (ददतु ददतु गालीर्गालिमन्तो भवन्त) और यदि इस शुद्धाशुद्ध के विषय में स्वामी जी कुछ विवाद करना चाहें तो इधर से काशीस्थ संस्कृत पाठशालीय दर्शन शास्त्राध्यापक पण्डित राममिश्र शास्त्री जी मध्यस्थ माने जाते हैं वे भी चाहे जिस पण्डित को मध्यस्थ मान के लेख द्वारा शास्त्रार्थ करें उनके सब संदेह मिटा दिये जायेंगे। जो सच पूछिए तो वास्तविक और उत्तम बात तो यह है कि इस को देख कर दयानन्द जी कुछ शोक और लज्जा न करें क्योंकि हाथ ही तो है, चूक गया मनुष्य ही तो हैं भूल गए उनका इतना ही लिखना बहुत है।

— कश्चिदपक्षपाती देशाहिताभिलाषी—रामकृष्ण वर्म्मा।

* देखो भ्रमोच्छेदन की भूमिका।

पूर्वोक्त भूमिका ३ पृष्ठ पर समाप्त होकर पृष्ठ ५ से पृष्ठ १८ पंक्ति १८ तक प्रथम प्रकरण में व्याकरण की भूल दिखलाई है जिनको हम ग्रन्थ बढ़ जाने के भय से पूरा नहीं लिखते जिसको देखना हो अवोधनिवारण नाम काशी भारत जीवन प्रेस का छपा पुस्तक देख ले । पृष्ठ १८ पंक्ति १८ से आगे पृष्ठ १९ पंक्ति ३ तक यह लिखा है ।

पाठकगण ! अब आप लोग प्रथम प्रकरण तो देख चुके और इसमें स्वामी जी की विद्वत्ता निस्सदेह आप पर प्रकट हुई होगी अब तनिक दूसरे प्रकरण की ओर भी दृष्टि दीजिए तो जान पड़ेगा कि स्वामी जी ने क्या क्या रंग दिखाए हैं"

पृष्ठ २१ से २२ तक दूसरा प्रकरण तथा २३ से २४ तक चिलौनी उन की नकल इस प्रकार है ।

दूसरा प्रकरण ।

प्रथम प्रकरण मे तो व्याकरण की अशुद्धिया दिखाई गई अब इस प्रकरण में अर्थाशुद्धिया और अनुवाद की अशुद्धिया कुछ थोड़ी सी दिखाई जाती हैं क्योंकि प्राय सभी पृष्ठों में तो अशुद्धियां भरी हैं कोई कहां तक इनको दिखलावे । पाठको को पढ़ते ही जान पड़ेगा कि कैसी विद्या और बुद्धि स्वामी जी ने अनुवाद करने में लगाई है । जैसे चार दो चावलों के देखने से थाली भर के चावलों का पता लग लेते हैं, वैसे ही कतिपय अशुद्धियों को देख कर ग्रन्थ भर का वृत्तान्त सब कोई जान लेंगे देखिए–

१ ८, (शरीर शुद्ध कर के ईश्वर ज्ञान के लिये सन्ध्योपासन करो), इस की संस्कृत स्वामी जी लिखते हैं कि शौचादिक कृत्वा सन्ध्योपासनमीश्वरम्) हा ! बड़ा आनर्थ है, देखिये तो "ईश्वर ज्ञान के लिये" इसकी संस्कृत क्या लिखी है ? कुछ नहीं, दूसरे आप ही लोग कहिये पाठकगण "उपासना करो" इसकी संस्कृत क्या यही है कि "उपासीश्वर्" ऐसे ऐसे विषय के स्पष्ट करने में लेखनी को बहुत परिश्रम देना व्यर्थ है, इतने ही में समझ जाइये कि जिसने लघुकौमदी भी पढ़ी होगी उन सको भी इसका पूर्णतया विवेक होगा ॥

५, १६ (आजका) इस हिन्दी की संस्कृत (नित्य) लिखी है ॥

६, २ (शाक, दाल, कढ़ी, भात, रोटी, चटनी आदि) इसका उल्था लिखा कि (शाकसूपौदश्वित्कौदनरोटिकादय) भला और जो गडबड है सो तो हो है चटनी कहा से निकाली ? हा ! यदि स्वामी जी ने आदय को आदी की चटनी समझा हो तो आश्चर्य्य नहीं ॥

१४,१ (गुड़ का क्या भाव है) इसको संस्कृत (गुडस्य को भाव) लिखा है, वाह क्या उत्तम संस्कृत है। यदि मुझसे कोई पूछे कि गुडस्य को भाव. तो मैं तो यही कहूँगा कि गुडत्वम् ॥

१४,२ आने को संस्कृत आना लिखते हैं वाह इसी प्रकार लोढे की संस्कृत लोढा बना डालिये ॥

२५,१९ (ऊपर को स्वास चलने से) इसको संस्कृत लिखते हैं कि (ऊर्द्ध-श्वासत्वात) अहा ! हा !! हा !!! कोई कैसी भी चिंता में बैठा हो इस उल्थे के सुनते ही हस पडेगा। मैं अब क्या लिखू मेरी लेखनी तो इस समय हास्यरस में डूब रही है। समझ जाइये "किमज्ञात सुबुद्धीनाम्"

३४,६ (जले पात्रे चक्षुर्निक्षिप्य विनाशितम) इसको पाठक गण शुद्ध कर लेवें। इत्यादि ॥ । बहुत हुआ इतिशम ॥

॥ चितौनी ॥

स्वामी दयानन्द जी से विनय पूर्वक प्रार्थना है कि वे अपने इन अशुद्धियों के प्रकट किए जाने से कदापि अप्रसन्न न हों प्रत्युत उनको यह उचित है कि इन सब अशुद्धियों को व्याकरण से शुद्ध ठहरावें और न कि अपने वृथा विश्वासी शिष्यों के प्रतारणार्थ एक दो को मूठ मूठ रफू कर कोरा घोप मचावें। यह बात भी स्मरण रखने के योग्य है कि भक्तित्वा और चित्वा आदि अशुद्धियों का समाधान कहीं "चिन्तेति पठितव्ये इदित्करणाच्च. पाक्षिकत्वे लिङ्गम" से न करें नहीं तो मुंह ही शब्द्ध्वनि हो क्योंकि यह सब समाधान तो सति शिष्ट प्रयोगनिर्वाहार्थ होते हैं और न कि मुँह से निकला लभति और आप आग्रह कर बैठे कि "अनुदात्तेत्वलक्षणमात्मनेपदमनित्यम्" और चर्म्मासिभ्याम तो लिखें पर जब कोई टोके तो कहें कि पाणिनि जी ने भी तो "इकोगुणवृद्धी" लिखा है। यदि ऐसा ही हो तो आप यह भी कह देंगे कि जब द्रौपदी के पाप

पति थे तो आज भी स्त्रियों को दश पति होना चाहिये, और फिर आपको क्या, आप तो अपने ऋग्वेद के वक्तव्य में लिख ही चुके हैं कि प्राय एकादश पति होनेतक कुछ भी चिन्ता नहीं है, वाह!!! क्या कहना है आप ही की लेखनी तो है जब चली तब चली जो कुछ आया आप मूढ के लिख मारा। और यदि "प्रात. कुस्कुटा भ्रुवन्ति" अथवा "हरयो हर्षन्ति" के समाधान में आप धातूनामनेकार्थत्वम् कहे, तो फिर हम यों कहेंगे कि "स्वामिन शब्दायन्ते विद्वांसश्च हसन्ति" का अर्थ यह है कि स्वामी जी व्याख्या देते हैं और विद्वान् लोग सुनके कृतार्थ होते हैं। हमारी यह प्रार्थना है कि जो कुछ वे उत्तर दें सो व्याकरण से हो और विद्वानों की नाईं लिखें न कि "मुखमस्तीति वक्तव्य दशहस्ताहरीतकी" अथवा वेद की व्याख्या करते २ कहीं रेल जो याद आई तो बोले कि हव्य अर्थात् यान, वह वहति प्रापयतीति विभुदाश्वाँसतिकोऽग्नि" *

॥ इत्यलमति पल्लवितेन ॥

तारीख ८ जौलाई सन् १८८० ई० को मेरठ आर्य्यसमाज के सभासदों की प्रार्थनानुसार स्वामी जी फर्रुखाबाद से चले और मेरठ पहुचकर मुन्शी राम शरणदास जी की कोठी में (जो छावनी मेरठ में है) डेरा जमाया और अपना एक "वसीयतनामा" + लिख रजिष्ट्री कराया, और उसमें मुन्शी बखतावरसिंह का कुछ जिक्र नहीं लिखा, और यह समाचार सुनकर उक्त मुन्शी बखतावरसिंह जी विचारने लगे कि भला हुआ मैंने सरकारी नौकरी नहीं छोडी यदि धोखे में आनकर छोड देता तो इस समय कितना बडा कष्ट सहना पडता।

जब स्वामी जी मेरठ में विराजमान थे तो यह समाचार मिला कि मुन्शी

---

* इस अनुबोध निरानन्द पुस्तक को देख स्वामी जी ने यह कहा कि यह पुस्तक (वाक्य प्रबोध) भीमसेन ने लिखा था और मैंने बिना देखे छपा दिया इस कारण अशुद्धियाँ रह गई होंगी ॥

+ इस वसीयत नामे की नकल सरकारी तौर पर तो अनेक यत्न किये गये मिली नहीं और समाजी वा अन्य किसी प्रकार के मनुष्यों के पासहै नहीं इसलिये हम यहां लिखने से लाचार रहे।

इन्द्रमणि प्रधान आर्य्यसमाज मुरादाबाद की बनाई * पुस्तकों से दुखित होकर मुसलमानों ने २२ जौलाई सन् १८८० ई० के दिन मजिष्ट्रेट मुरादाबाद की कचहरी में नालिश की और मजिष्ट्रेट महाशय ने २४ जौलाई के दिन मुन्शी इन्द्रमणि को दोषी ठहरा कर पांच सो रुपया जुरमाना किया और उन की रची पुस्तकें तल्फ (नष्ट) करा दी गईं। जब ये समाचार भारत वर्ष में फैले और उक्त मुंशी जी के इष्टमित्र तथा अन्यान्य हिन्दू लोगों तक पहुँचे तो उन को बड़ा दुःख हुआ तन मन धन तीनों द्वारा सहायता को उद्यमी हुये। इधर स्वामी दयानन्द जी ने भी समय को अनुकूल जान सम्पूर्ण आर्य्यसमाजों के लिये भेजा कि इस समय मुन्शी इन्द्रमणि जी की धन द्वारा सहायता करना सम्पूर्ण आर्य्य गण तथा हिन्दू मात्र का परम धर्म्म है और मुन्शी इन्द्रमणि जी को प्रथम तार (टेलीग्राफ) पुनः चिट्ठी द्वारा मुरादाबाद से मेरठ बुला कर कहा कि हमने आपके झगड़े में सहायता देने के लिये चन्दा एकत्रित करने का प्रबन्ध किया है, जो कुछ रुपया देशान्तर से आवेगा लाला रामसरणदास रईस मेरठ के पास जमा होगा और आप आवश्यकता होने पर उन से ले सकोगे, इस बात को मुन्शी जी ने भी स्वीकार किया और चन्दा होना गया।

इसी अवसर पर लाला ठाकुरदास भाभड़ा गुजरान्वाला निवासी ने स्वामी जी के "सत्यार्थ प्रकाश" द्वादश समुल्लास में लिखे हुए लेख से अप्रसन्न होकर एक चिट्ठी स्वामी जी के नाम आषाढ़ कृष्णा ११ सम्वत् १९३७ को लिख शहर आगरे पठाई जिसका सारांश यह है कि "आपने जो लेख निज रचित पुस्तक "सत्यार्थ प्रकाश" के पृष्ट३९६ से लेकर जैन धर्म्म सम्बन्धी लिखा है कृपा कर यह बताओ कि यह लेख आपने जैन धर्म्म के किस शास्त्र से लिया है ? क्योंकि यह लेख जैन के किसी भी ग्रन्थ में नहीं है, और मिथ्या लिखना विद्वानों को उचित नहीं, इस चिट्ठी का स्वामी जी ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया तब लाचार ठाकुरदास ने आषाढ़ शुक्ला १ को एक और चिट्ठी स्वामीजी के नाम आगरे पठाई। जिस में वे श्लोकलिं

* मुन्शी इन्द्रमणि ने सन् १८८० ई० में १ समसाम हिन्द २ हमले हिन्द ३ पादाश इसलाम ४ शाहस्त दिन्द ५ मसए दीन अहमदी ५ यह पांच पुस्तकें छपाई थी। जिनमें झगड़े की जड़ हमले हिन्द ही थी।

सकर (जो स्वामी जी ने "सत्यार्थ प्रकाश" में जैन ग्रन्थों के बतलाये हैं यह भी लिखा था कि यह चिट्ठी वतौर नोटिसके है यदि मेरे प्रश्नका यथार्थ उत्तर न दियातो मुझको अदालत में तौहीन मजहब की नालिश करनी पडेगी जिसमें आपको विशेष क्लेश उठना पड़ेगा इत्यादि० ।

पाया जाता है कि पूर्वोक्त दोनो चिट्ठी आगरे होकर स्वामी जी के पास मेरठ पहुँची जिनके उत्तर में स्वामी जी ने आनन्दीलाल मन्त्री आर्य्यसमाज मेरठ के नाम से जो कुछ लिखवाया उसमे ठाकुरदास के किसी भी प्रश्न का उत्तर नहींथा किंतु विशेष यही भरा था तुम मूर्ख हो झगडालू हो तुमको लिखना पढना नहीं आता स्वामी जी ने जो कुछ लिखा सत्य लिखा है, खबरदार चुपके होजाओ यदि न मानोगे अदालत से सीधे करदिये जावोगे इत्यादि० ।

मिती श्रावण कृष्णा० ५ सम्वत् १९३७ *

जब मुन्शी इन्द्रमणि के झगडे की सहायता के लिये चारो ओर से द्रव्यका आगमन प्रारम्भ हुआ तो स्वामी जी की नियत बदल गई और उस सम्पूर्ण द्रव्य को निजाधीन कर लेने का विचार किया । और मुन्शी इन्द्रमणि जी ने जज्जी में अपील करने की गर्ज से छ सौ रुपये का एक बैरिष्टर वकील नियत कर उस के देने के लिये लाला रामशरणदास से कहा चार सौ रुपया मेरे पास हैं यदि आप आये हुये रुपये में से दो सौ दे देवें तो कार्य्यसिद्धि हो इस पर लाला रामशरणदास ने कहा "यहाँ से तो अभी तुमको कुछ भी नहीं मिलेगा मुरादाबाद से ही तदबीर कर के भेज दो ।

मुन्शी बख्तावरसिंह मेनेजर वैदिक यंत्रालय काशी अपने जोलाई सन् १८८० ई० के आर्यदर्पण में लिखते हैं कि अभी तक आर्य्यसमाज फीरोजपुर व अमृतसर व लाहोर व जेहलम व रावलपिंडी व कानपुर व प्रयाग व दानापुर वगैरह से करीब चार हजार के चन्दा मुन्शी इन्द्रमणि के मुकदमे के लिये जमा हो चुका है और बहुधा ग्राम नगरों में हो रहा है ।

इसी अवसर पर पडिता रमाबाई । जो दक्षिणी ब्राह्मणी और लंदनादि बड़े

* यह तीनों चिट्ठी पूर्ण रूप विस्तार सहित पुस्तक "दयानन्द मुखचपेटिका" में छपी हैं ।

बड़े शहरों में घूमकर प्रसिद्ध होगई है, संस्कृत विद्या में अच्छा योग्यता रखती है) स्वामी जी से मिलने को आई, बाबू छेदीलालजी कोठी पर ठहरी, स्त्री शिक्षा के विषय में चार पांच व्याख्यान बड़े समारोहके साथ दिये, दो सप्ताह के लगभग मेरठ में रहकर देहली होती हुई निज देश को चली गई, स्वामी जी ने निज रचित "सत्यार्थ प्रकाश"—"सत्यार्थ"—"आर्याभिविनय" आदि अनेक पुस्तक और आर्य्य समाज से १२५) रुपये नकद और १०) रुपये का एक थान चलते समय भेंट किया था।

श्रावण सम्वत् १९३७ में ऋग्वेदभाष्य अंक १५ यजुर्वेद भाष्य अंक १५ ये दोनों छप कर प्रकाशित हो गये।

जो पत्र आनन्दीलाल मन्त्री आर्यसमाज मेरठ ने स्वामी जी की आज्ञा से श्रावण कृष्णा ५ को ठाकुरदास के पास भेजा था उसका उत्तर श्रावण शुक्ला १ सं० ११३७ को ठाकुरदास ने आर्यसमाज गुजरानवाला की मारफत भेजा जिसका खुलासा इस प्रकार है।

वाह जी! खूब उत्तर लिखा दूसरे की बुराई अपनी बड़ाई लिखी सो तो ठीक परन्तु हमारे इस प्रश्न का भी तो कुछ उत्तर लिखा होता कि स्वामी जी ने "सत्यार्थप्रकाश" में द्वादश समुल्लास में किस जैन शास्त्र से लेकर लेख लिखा है, जैन की दिगम्बर श्वेताम्बर दो प्रसिद्ध शाखाओं में से किस शाखा के जैनी से यह सुना था अथवा व्यर्थ कागज काले किये अथवा आपकी समझ में जैन की कोई और तीसरी भी शाखा है उत्तर के बदले व्यर्थ अभिमान की बात लिखना योग्य नहीं इत्यादि०।

जब मुन्शी इन्द्रमणि जी ने विचारा कि मेरे नाम से द्रव्य एकत्र कर स्वामी जी आप उड़ाया चाहते हैं। तब तो उन्होंने शीघ्रता के कितनेक समाचार पत्रों में यह छपा दिया कि जिन महाशयों को मेरी सहायता के लिये रुपया देना हो वह सीधा मेरे पास पठावें और स्थानों का भेजा हुआ द्रव्य मुझको नहीं मिलता।

इसके व्यतिरिक्त मुन्शी जी ने स्वामी जी को भी अनेक पत्र इस विषय के लिखे कि मुझको रुपया नहीं मिलता यह कार्य्य आपका अत्यन्त ही निन्दनीय है, इस पर कुछ सोच समझ स्वामी जी ने मुन्शी जी को निम्न लिखित पत्र पठाया था।

मुन्शी इन्द्रमणि जी आनन्दित रहो ।

आपके दो तीन पत्र आये हाल मालूम हुआ, पजाब के ढाई सौ या तीन सौ रुपये आपके पास स्यात् पहुचे होंगे । आज हम यहा के सभासदों से दरियाफ्त करेंगे कि रुपये भेजे या नहीं, अगर नहीं भेजे होंगे तो हम भिजवाते है- चार दिन हुये कि उसी वक्त हमने उनसे कह दिया था कि रुपये भेज दो अढाई सौ रुपए यहा हैं और सौ रुपये लाला शामलाल के और पजाब और फर्रुखाबाद से भी आने हैं सब मिलकर सात सौ रुपए होगए खूब होशियारी से काम करना, मिती भाद्रपद कृष्णा ६ गुरुवार सम्वत् १९३७ स्थान मेरठ ।

(दयानन्द सरस्वती)

इसके अगले दिन आनन्दीलाल मन्त्री आर्य्यसमाज मेरठ ने दो सौ रुपए के नोट एक निज पत्र के साथ (जिस मे लिखा था कि यह द्रव्य आपके झगडे की सहायता के लिये है) मुरादाबाद मुन्शी जी के पास पठाये, परन्तु लिफाफा डाक में डाल देने के पीछे ही कुछ मन में कपट ने प्रवेश किया तो अगले दिन भाद्रार्क २८ अगस्त सन् १८८० ई० को एक दूसरा पत्र इस विषय का लिखा कि दो सौ रुपये के नोट वेद भाष्य की सहायतार्थ फर्रुखाबाद भेजने थे, हमारी समाज के चपरासी की भूल से तुम्हारे पास चले गए कृपा कर उनको मेरठ ही भेज दो सो मुन्शी जी ने पत्र के पाते ही शीघ्र लौटा दिये ।

प्यारे पाठकगण ! तुम विचार करना चाहिए चपरासी की भूल से इतना हो जाना तो सम्भव है कि फर्रुखाबाद के लिफाफे में मुरादाबाद का पत्र और मुरादाबाद के लिफाफे में फर्रुखाबाद का पत्र रख दे, परन्तु यह तो देखो कि उस लिफाफे में जो चिट्ठी थी उसमें यह भी क्या चपरासी ने ही लिख दिया था कि यह नोट तुम्हारे झगडे की सहायता में लाहौर से आए थे सो भेजे जाते हैं, ? इत्यादि० ।

सितम्बर सन् १८८० ई० में कर्नल अलकाट साहब और मैडम ब्लैवट्स्की शिमले जाते हुये मेरठ में स्वामी जी से फिर मिले तो मैडम साहब ने बहुधा प्रतिष्ठित मनुष्यों के सामने ईश्वर के मानने से इन्कार किया और स्वामी जी उसके खडन करने पर उतारू हुए थे परन्तु बात अधूरी रह गई, और खडन मडन

तो कुछ भी न हुआ किंतु स्वामी जी और कर्नल अलकाट के मध्य अप्रीति का अङ्कुरारोपण हो गया।

स्वामी जी के मेरठ में रहते रहते मेरठ के आर्य्यसमाज ने एक निम्न लिखित विज्ञापन मुन्शी इन्द्रमणि जी के झगडे सम्बन्धी प्रकाशित कराया था।

विज्ञापन दिया हुआ आर्य्यसमाज मेरठ का।

विदित हो कि जो निकम सम्वत् १९३७ तदनुसार सन १८८० ई० में मुन्शी इन्द्रमणि जी रईस मुरादाबाद का मुसलमाना से विवाद होकर मुन्शी जी पर ५००) मजिष्ट्रेट मुरादाबाद ने जुरमाना किया तब उस पर आर्य्य जनों ने उस मामले को अपना समझ सहाय की थी वह मामला तभी हो चुका था परन्तु मेरठ में उस समय इसके लिये यह नियम नियत किया गया था कि मुन्शी जी के मुकद्दमें में जितना धन बचे वह अच्छे प्रतिष्ठित साहूकार के यहा ॥) व्याज पर रक्खा जाय जब कभी ऐसा ही किसी अन्य वैदिक धर्मावलम्बी आर्य का अन्य मत वादियों से धर्म विषय का विवाद होके कचहरी में मुकदमा जाय तब उसकी सहायता इस धन से हो और मुन्शी जी ने भी स्वामी दयानन्द सरस्वती जी आदि के सन्मुख मेरठ में स्वीकार कर लिया था परन्तु शोक का विषय है कि उक्त मुन्शी जी ने ऐसे उत्तम नियम को तोड़ा अब हिसाब नहीं देते और उलटा चोर कोतवाल को डाटे इसके सदृश लाला रामशरणदास रईस मेरठ और स्वामी दयानन्द सरस्वती पर मिथ्या दोषारोपण करते हैं इसकारण मेरठ आर्य्यसमाज को आय व्यय का हिसाब प्रकाश करना पड़ा जिससे मिथ्या भ्रम जैसा मुन्शी जी को हुआ वैसा किसी अन्य आर्य्य पुरुष को नहो और मुन्शी इन्द्रमणि जी का सत्यासत्य यह हिसाब और मुन्शी जी के विज्ञापन को देखकर सब पर प्रकट हो जायगा, मुन्शी जी लिखते हैं कि बहुत आर्य्य जनों ने मेरे मुकदमे की सहायता में मेरठ समाज और स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के पास धन भेजा था उसमें केवल ६००) रु० मेरे पास पहुँचे बाकी उनके पास रहे, परन्तु इस मेरठ के मितीवार क्रमानुसार हिसाब देखने से निश्चय होता है कि मुन्शी जी के पास उन्हों के मामले में ९६३॥।-)॥ मेरठ समाज से पहुँचे हैं न जाने मुन्शी

जी ने केवल ६००) रु० पाना क्यों अपने विज्ञापन द्वारा प्रकाश किये इस बात से तो मुन्शी जी की अति असत्यता प्रकट होती है, यदि मुन्शी जी का कथन सत्य है तो इन रुपयों के सिवाय लाला रामशरणदास वा स्वामी जी के पास किसी ने और रुपए भेजे होंय और उनके पास उनकी हस्ताक्षरी सहित रसीद होंय शीघ्र प्रकाश करें अथवा करायें क्योंकि साँच को आंच कहा और मुन्शी जी ने हिसाब के छपवाने में धोखा किया वा और ही कुछ राग गाने लग तो यह उनके लिये पूरा कलंक है इसके निवारणार्थ उनको अवश्य चाहिए कि जब जब जितना २ खर्च हुआ है यथावत् मितीवार छपवा देवें और शेष धन आर्य्यसमाज मेरठ में सर्वोपकारार्थ भेज दें पूर्व स्वीकृत नियम को भी सत्य करें तो बहुत अच्छी बात है नहीं तो रुपए गए हुए आ भी जाते हैं, परन्तु धर्मयुक्त कीर्ति गई हुई कभी नहीं आती (सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते) सत पुरुष को मरण से आपकीर्ति बहुत बुरी समझनी चाहिये, यदि हमारे आर्य्यजनों में विशेष कर उपदेशकों का आरम्भ से मृत्यु तक एकसा सत्याचरण रहे तो देश की बड़ी ही उन्नति हो। सर्वशक्तिमान परमात्मा आर्य्यावर्त देश पर कृपा करे जिस से हमारे आर्य्यावर्तीय उपदेशक अपने किये हुये उत्तम उपदेश को लोभादि दोषों से कलंकित न करके आद्योपान्त पर्यन्त शुभाचरण से देश की सुदशा बढ़ाया करें। अलमितिविस्तरेण बुद्धिमुद्वर्त्तयेषु ॥ पतिजीवतमानन्द ॥ विक्रमी सम्वत् १९३७ तदनुसार सं० १८८० ई०।

नकल हिसाब जो कि मेरठ के समाज और मुन्शी इन्द्रमणिजी के विषयका है।

जमा चन्दा कुल रुपया १५१६) आर्य्यसमाज मुलतान ३०) मेम्बरान व्याना १०५) आर्य्यसमाज लाहौर ११५) आर्य्यसमाज रुड़की १००) आर्य्यसमाज अमृतसर ५०) आर्य्यसमाज फीरोजपुर २३३॥=) आर्य्यसमाज फर्रुखाबाद १००) आर्य्यसमाज गुरदासपुर १५०॥—) आर्य्यसमाज जेहलम १००) लाला केवलकृष्ण ११) लाला रुक्नराय व लाला मुरलीधर औरंगाबाद से १३८॥) पाडे रामदीन सेकिंडमास्टर दानिलिंग १३६॥।) आर्य्यसमाज मेरठ २४५॥) इस रकम में मेरठ शहर के और मेरठ के जिला के तीन चार महापुरुषों का जो समाज के मेम्बर नहीं हैं चन्दा शामिल है, । खर्च कुल रुपया

९६३॥।=)॥। रजिष्टरी मुन्शी इन्द्रमणि जी के पास भेजी ता० ७ अगस्त सन् १८८० ई० ।)॥ दिये मुन्शी इन्द्रमणि जी को मा० लाला श्यामसुन्दरलाल रईस मुरादाबाद के तारीख ७ अगस्त सन् १८८० ईसवी, ३००) किराया रेल गाडी मेरठ से मुरादाबाद तक चार आदमियों का तारीख १४ अगस्त सन् १८८० ई० ११।) किराया रेलगाड़ी का बरेली से मेरठ और बरेली से मुरादाबाद तक ६) लाला शादीराम के खत का महसूल जो इलाहाबाद से आया ।-) किराया गाडी जो हुल साहिब बैरिष्टर के पास मेरठ जाते समय दिया गया ता० १४।८। ८० ई० ।।) मुकद्दमें पहिले में खर्च हुआ ७३) मुकाम मुरादाबाद इसका हाल मुन्शी जी को मालूम है, १७=)। खर्च खानगी मेरठ से इलाहाबाद तक ता० ६ सितम्बर सन् १८८० ई० । ३०७) बजरिये नोट के मुन्शी जी के पास भेजे गए १।-) रजिष्ट्री खत का महसूल, ३००) बजरिए हुन्डी के मुन्शी जी के पास भेजे गए १॥) हुन्डियावन दिया गया ३०।१०।८० ई० ३॥) किराया रेल मन्ड् नौकर मेरठ से अलीगढ़ तक मय वापिस खुराक के =) मुन्शी इन्द्रमणि जी के खत का महसूल, ५५२।-)। बाकी रहा, यह रुपया त्रैराशिक के हिसाब से ऊपर लिखे चन्दा देने वालों को मेरठ समाज ने उनकी इच्छानुसार फेर दिया।

ला० ठाकुरदास गुजरानवाला निवासी के श्रावण शुक्ला १ सम्वत् १९३७ के पत्र का उत्तर २३ दिन तक कुछ नहीं मिला सो तारीख ३० अगस्त सन् १८८० ई० को एक और पत्र रजिष्ट्री करके दयानन्द के पास भेजा उसका सक्षेप विषय यह है कि आप हमारे प्रश्नों का यथार्थ उत्तर नहीं देते, प्रथम तो चुप बैठ जाते हैं जब अधिक लिखता हूँ तो दूसरों को भिड़ाते हैं यह उचित नहीं मैं आनन्दीलाल से कुछ नहीं पूछता हूँ जो कुछ उत्तर देना है सो आप स्वत देवें, इत्यादि, इत्यादि,

जब यह पत्र स्वामी जी को मेरठ में मिला तो इसका उत्तर भी स्वामी जी ने आनन्दीलाल मन्त्री आर्यसमाज के तरफ से भिजवाया जिसका सारांश यह है कि आपके लेखों को देख २ मुझे आश्चर्य्य होता है आप पुन पुन पिष्ट पेषणवत् श्रम क्यों करते हो इस समय गुजरानवाला में आत्माराम जी उपस्थित हैं उनको स्वामी जी के सन्मुख करो जिससे सत्यासत्य का निर्णय हो जायगा, आप

लोग अपने धर्मग्रन्थों को गुप्त रख कर अपने आपको संसार में निन्दनीक ठहराये हुए हो, उनका भाषामें अनुवाद कराकर क्यों नहीं प्रकाशित कराते वाममार्गियों के सदृश क्यों छिपाते हो ? पूर्वोक्त बदनामी दूर करने के आप दो उपाय कीजिये, एक स्वामी जी के साथ तुम्हारे मत के सर्वोत्तम विद्वान् का शास्त्रार्थ होना और दूसरे अपने सब पुस्तकों को अनेक देश भाषाओं में छपवा के प्रसिद्ध करना जब तक ऐसा न करोगे तब तक पूर्वोक्त कलंक दूर न होगा, प्रथम यत्न का उपाय इतने ही पर हो जावेगा कि आत्माराम जी का और स्वामी जी का शास्त्रार्थ हो जाय, स्वामी जी से तो हमने सम्मति कर ली है, तुम आत्माराम जी से पूछो कि हमको स्वीकार करते हैं या नहीं, दूसरे तीसरे पत्र का उत्तर इसलिए नहीं दिया कि प्रथम पत्र में हमने जो लिखा वही बहुत था, तुम इतना भी नहीं समझते कि "सत्यार्थप्रकाश" स्वामी जी ने नहीं छपाया किंतु राजा जयकृष्णदास मुरादाबाद निवासी ने छपाया था, शास्त्रार्थ के समय तुम्हारे पक्ष का पंडित यदि "सत्यार्थप्रकाश" के द्वादश समुल्लास को मिथ्या सिद्ध कर देगा तो स्वामी जी पुनर्वार, के छपने पर उसको निकाल डालेंगे, इसलिए शास्त्रार्थ जितना शीघ्र हो सके करो हमारी तरफ से कुछ विलम्ब नहीं है, इत्यादि० । मिती भाद्रपद शुक्ल ८ रविवार सं० १९३७ आनन्दीलाल भक्ती आर्यसमाज मेरठ।

भाद्रपद में यजुर्वेदभाष्य अंक १६ व १७ प्रकाशित हुए उनके टाइटिल पेज पर कर्नल अल्कॉट और उनकी सोसाइटी के विषय में लेख है जिसको हम व्यर्थ समझ यहाँ संग्रह करने से वंचित रहते हैं।

१५ सितम्बर सन् १८८० ई० को स्वामी जी मुजफ्फरनगर में चले आये। और ऋग्वेदभाष्य अंक १६ व १७ सम्मिलित इकट्ठे प्रकाशित हुए और अथर्ववेदभाष्य अंक १८ व १९ इकट्ठे छपा कर उनके टाइटिल पेजों पर यह विज्ञापन दिया था।

"मास अक्टूबर सन् १८८० ई० से यह दस्तूर जारी किया
इसमें सिर्फ ऋग्वेद अंक १८ व १९ प्रकाशित किए गए, अगले
अंक १८ व १९ प्रकाशित होगा और फिर सदा
भाष्य हमारे में तो और यजुर्वेद के प्रकाशित हुआ ।"

लाला ठाकुरदास ने एक पत्र आश्विन कृष्णा ९ सम्वत् १९३७ को स्वामी जी के नाम और पठवाया जिसका सक्षेप इस प्रकार है। "आप मेरे इस प्रश्न का साफ २ उत्तर क्या नहीं देते कि जो श्लोक आपने "सत्यार्थप्रकाश" में जैनों के नाम से लिखे वे जैन के किस ग्रन्थ के हैं अथवा किस जैनी से आपने सुने इसका ठीक २ उत्तर दो नहीं आपनी भूल बताकर हमसे क्षमा मागो। इत्यादि०"।

यह पूर्वोक्त पत्र ठाकुरदास ने आर्य्यसमाज गुजरान्वाला की मारफत भेजा था। इस पत्र का उत्तर स्वामी जी ने अपने हस्ताक्षर से तो नहीं दिया परन्तु आर्य्यसमाज गुजरान्वाला ने जो ठाकुरदास को लिखा उसका खुलासा इस प्रकार है।

लाला ठाकुरदास जी नमस्ते।

जो पत्र आपने स्वामी जी के पास भेजने को इस समाज में पठवाया था, उसमें सर्वथा वे ही बातें भरीथीं जो पुरानी और व्यर्थ हैं इस लिये वह स्वामी जी के पास नहीं भेजा गया, क्योंकि स्वामी जी तो इसके उत्तर में लिखा चुके हैं, कि आत्माराम से हमारा शास्त्रार्थ हो तो सत्यासत्य का भली प्रकार निर्णय हो जाय, आपने प्रथम से ही अनुचित शब्दों का प्रचार किया यह विद्वानों को उचित नहीं आगे आपकी इच्छा, इत्यादि०॥ नमस्ते॥ आर्य्यसमाज गुजरान्वाले ने लिखा।

फिर कार्तिक ७ सम्वत् १९३७ का लिखा एक और पत्र गुजरान्वाला आर्य्यसमाज ने आत्माराम जी के नाम पठाया जिसमें लिखा था कि हमारे पास स्वामी दयानन्द जी का एक पत्र आया है, जिसमें लिखा है कि पडित आत्माराम जी से एक पत्र उन सन्देह मान बातों का जिनको वे "सत्यार्थप्रकाश" में जैन विरुद्ध समझते हैं उनके हस्ताक्षर से हमारे पास भेजो तब हम विचार पूर्वक उनका उत्तर देंगे इस लिये आप हस्ताक्षर करके पत्र पठावें तब हम शीघ्र स्वामी जी के पास भेज देवें। इत्यादि०। हस्ताक्षर नारायणकृष्ण, आर्य्यसमाज गुजरान्वाला की तर्फ से।

और आनन्दोल्लास मन्त्री आर्य्यसमाज मेरठ ने इसी विषय में अपने आर्य्य समाचार मेरठ दावत मास आश्विन सख्या १८ जिल्द २ पृष्ठ १२३-१२४-

१९५१ में मनमाने कुवचन लाला ठाकुरदास को लिख अपनी योग्यता दिखलाई है, उनकी नकल को हम व्यर्थ समझ और विस्तार के भय से यहां नहीं लिखते हैं।

पूर्वोक्त पत्र के उत्तर में २५ अक्टूबर सन् १८८० ई० को ठाकुरदास ने जो पत्र दयानन्द सरस्वती को लिखा उसका खुलासा इस प्रकार है।

महाशय जो पत्र आपने आत्माराम जी के नाम भेजा उन्होंने देखते ही मुझको देदिया क्योंकि उनको दादानुवाद से कुछ काम नहीं पत्रका शिरनामा और ऊपर आत्माराम जी का नाम देखकर तो मैंने समझा था कि आर्य्यसमाज को भ्रम हुआ जो उन्होंने मेरे नाम के बदले आत्माराम जी का नाम लिख दिया परन्तु नहीं जब पत्र का आशय पढा तो वही प्रतीत हुआ कि आर्य्यसमाज ने जान बूझकर यह भ्रांति की है, और इस भ्रांति के मूल कारण आप हो क्योंकि आप ही के आदेश से आर्य्यसमाज ने ऐसा किया। प्यारे दयानन्द जी यह बुद्धि आपको किसने दी ? यह आपको किसने समझाया ? कि आत्माराम जी के नाम पत्र भेजो ? मैंने एक प्रश्न किया है उसके सम्बन्ध में पांच छ पत्र भेज चुका हूं आपके भी दो तीन पत्र मेरे ही नाम आये फिर आत्माराम जी के सामने बिन बुलाये क्यों जापडे ? यह विद्वत्ता आपने कहां से सीखी कि जो प्रश्न करे उसका उत्तर न देना और दूसरे से जा भिड़ना ? आप प्रथम मेरे साधारण प्रश्न का उत्तर दीजिये फिर आत्माराम जी से भिड़ना, आपने छोटे से प्रश्न का उत्तर तो न दिया और व्यर्थ चार महीने व्यतीत कर दिये अब मुझको अदालत करना अवश्य होगा। इत्यादि० ॥

तत्पश्चात एक पत्र गुजरानवाला आर्य्यसमाज ने आत्माराम जी की सहायता लिये भेजा और ठाकुरदास ने आत्माराम के हस्ताक्षर कराकर समाज वालों के पास भेज दिया।

तारीख ७ अक्टूबर सन् १८८० ई० को स्वामी दयानन्द सरस्वती मुजफ्फरनगर से देहरादून पधारे और इस नगर के अनेक ब्राह्मण वैश्य मुसलमान ईसाइयों से वर्तालाप हुआ परंतु नियमानुसार शास्त्रार्थ नहीं हुआ, और लाला ठाकुरदास के पूर्वोक्त पत्र का उत्तर स्वामी जी ने देहरादून आर्य्यसमाज

के मन्त्री कृपाराम के हाथ में लिखाकर भेजा जा ता० ४ नवम्बर सन १८८० ई० का लिखा हुआ था और नारायणकृष्ण मन्त्री आर्य्यसमाज गुजरान्वाला ने अपने ता० १३-११-१८८० ई० के पत्र के साथ ठाकुरदास के पास भेजकर विदित किया कि स्वामी जी की आज्ञानुसार एक नकल इसकी लुधियाने के श्रावकों को भी भेजी गई है।

स्वामी जी के पूर्वोक्त पत्र का खुलासा यह है कि "सत्यार्थप्रकास" में जो श्लोक जैनों के नाम से लिखे गये हैं वे सब बृहस्पति मतानुयायी चार्वाक जिसके मत का नामातर लोकायत भी है" और इतना लिखकर वे श्लोक * पुन इस उत्तर में भी लिखे हैं, फिर लिखा है कि मैंने प्रथम चिट्ठी के उत्तर में लिखवा दिया था कि जैनमत की कई एक शाखा हैं, आपने उन शाखों के प्रतितन्त्र सिद्धात जाने होते तो यह भ्रम न होता, और उत्तर देने में विलम्ब इस लिये हुआ कि आपने अपने पत्र अनुचित रीति से लिखे थे यदि उचित रीति से लिखते तो उत्तर में विलम्ब न होता जैसे लुधियाने के जैनी पचों ने यथा योग पत्र लिखा तो उनका उत्तर शीघ्रता पूर्वक दिया गया, और उनको यह भी लिखा दिया गया है कि तुम लोग पडित आत्माराम जी को सर्व शिरोमणि गिनते हो सो यदि उनका और हमारा पत्र व्यवहार अथवा समागम हो तो अत्यन्त लाभ हो परतु खेदका विषय है कि हमारी रजिष्ट्री चिट्ठी का भी उत्तर उन्होंने नहीं दिया, ठाकुरदास को शुद्ध हिन्दी लिखना नहीं आता तब वह स्वामी जी के सन्मुख बात करने के योग्य क्योंकर हो सकता है आत्माराम तो अलग रहे और ठाकुरदास सन्मुख हो यह शिष्टों को योग्य नहीं यदि आप को हमसे कुछ लिखा पढी करना है तो किसी विद्वान को खडा करिये। इत्यादि०।

स्वामी दयानन्द जी ने जो पत्र आत्माराम जी के उत्तर में लिखा उसकी पूरी नकल इस प्रकार है।

प० आत्माराम जी नमस्ते

पत्र आपका तारीख ४ नवम्बर का लिखा हुआ १० नवम्बर सन् १८८०

* असल में यह श्लोक पुस्तक "सत्यदर्शनसग्रह" के हैं जो किसी गजान मनुष्य की बनाई हुई है और रचियता ने बिना विचारे जो कुछ ध्यानमें समाया स्वकपोल कल्पित लिख मारा जैन धर्मसे उक्त श्लोकों का कोई भी सम्बन्ध नहीं है।

ई० को सन्ध्या समय मेरे पास पहुंचा देखकर आनन्द हुआ अब आपके प्रश्नों का उत्तर लिखता हूँ ।

(प्रश्न) न० १ "सत्यार्थप्रकाश" समुल्लास १२ पृष्ठ ३९६ पंक्ति १६ में लिखा है कि जब प्रलय होता है तो पुंगल जुदे २ हो जाते हैं ऐसा नहीं (जवाब) मैंने ठाकुरदास जी के जवाब में एक पत्र आर्य्यसमाज गुजरान्वाला की मारफत भेजा था जो आपके पास भी पहुँचा होगा उसमें यह जतलाया गया है कि जैन बौद्ध दोनों एक ही हैं आज जगह महावीर तीर्थंकरों को बुध और बौद्ध आदि शब्दों से पुकारते हैं, और कई जगह जन, जैन, जिनवर, जैनेन्द्र आदि नाम से भी बोलते हैं, और जिनको चारबाक बौद्ध की शास्त्रों में कहते हैं, उनही को लोग बुध, खगबुध और चारबुध वगैरह कहते हैं, आप अपने ग्रंथों में देख लीजिये (ग्रंथ ढेकसार पृष्ठ ६५ प० १३) बुध बौद्ध यह एक सिद्ध अनेक सिद्ध भगवान् हैं (पृ० ११३ प० ७ पुस्तक मजकूर) चार बुध की कथा (पृ० १२७ प० ८) हर एक बुध की कथा (पृ० १३८ प०) खगबुद्ध की कथा (पृ० १५२ प० १४ चारबुध समकाल मोक्ष को गये, इसी तरह आपके अनेक ग्रन्थों में कथा साफ साफ मौजूद हैं जिसको कोई श्रावक बरियेसाफ न कर सकेंगे और ठाकुरदास की पहिली चिट्ठी में आप लोग कई श्लोक मजबूरी कर चुके हैं उस चिट्ठी की नकल मेरठ में है आपके पास भी होगी (कल्पभाष्य भूमिका) जिसमें राजा शिवप्रसाद जी ने अपने जैनमत स्थित पिता आदि महापुरुषों की परम्परा का हाल लिखा है उनकी भी गवाही देख लीजिये । इतिहास तिमिरनाशक खंड ३ पृ० ८ पंक्ति २१ से पृष्ठ ९ पंक्ति ३२ तक साफ लिखा है कि जैन और बौद्ध एक ही के नाम हैं, अब रहे बौद्ध की शाखाओं के भेद सो चारवाक अभिनाक आदि हैं, जैसे आपके यहां श्वेताम्बर आदि भेद हैं, और जैसे पुराणमत में रामानुजी आदि वैष्णवी शाखा और पाशुपति आदि शैवों में और वाममार्गी आदि दश महाविद्या की शाखें और ईसाइयों में रोमन, कैथलिक और मुसलमानों में शीया और सुन्नी आदि शाखों के चट दर चट भेद हैं, परन्तु वेद बाइबिल और कुरान के फिरकों में वह एक ही नामके जात हैं, इसी तरह बौद्ध और जैन की शाखें जुदी २ हैं, मगर जैन या बौद्ध मत एक ही है अगर आप सब

सिद्धांतों से जानकार होते और ग्रंथ देखे होते तो "सत्यार्थप्रकाश" में जो लेख उत्पत्ति और प्रलय के विषय में है उस पर शंका कभी नहीं करते (सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ ३९७ पंक्ति २४) आदमी आदि को ज्ञान है ज्ञान से वह गुनाह करता है, इसलिये उनको दुःख देने में दोष नहीं। यह बात जैनमत में नहीं (उत्तर) ग्रन्थ द्वेषसार में पृ० २२८ प० १५ से लेके पंक्ति १९ तक देख लीजिए क्या लिखा है यानी सोजन आदि समुदाय की आज्ञा जैसे दशरथकुमार ने बद्ध के हुक्म से बौद्धरूप रचना करके पमरवी नाम पुरोहित को कि वह जिनका वैरी था लात से मार के सातवें नर्क में भेजा। ऐसे ही और ७ बातें।

(प्रश्न) न० ३ सत्यार्थप्रकाश पृ० ३९९ पं० ३ उसका पद्मशिला पर बैठ कर चराचर को देखना।

(उत्तर) पुस्तक रत्नसार भाग पृ० २३ प० १७ से लेके पृ० २४१तक देख लीजिए कि महावीर और गौतम की चर्चा में क्या लिखा है।

(प्रश्न) न० ४ सत्यार्थप्रकाश पृ० ४०१ प० २३ उनके मत में नहीं वह अगर सत्पुरुष भी हो तो भी सेवा नहीं करते अर्थात् जल तक नहीं देते।

(उत्तर) पुस्तक द्वेषसार पृ० २२१ प० ३ से ले के प० ८ तक लिखा है देख लीजिये।

(प्रश्न) न० ५ सत्यार्थप्रकाश पृ० ४०१ प० २७ उनका साधु जब आता है तो जैन लोग उसकी दाढी, मूछ और शिर के बाल सब नोच लेते हैं।

(उत्तर) न० ५ ग्रंथ कल्पभाष्य पृ० १०८ प० ४ से लेकर ९ तक देख लीजिये और प्रत्येक ग्रन्थ में दीक्षा के समय अर्थात् चेला बनाने के समय पाँच मुट्ठी बाल नोचना लिखा है वह काम अपने हाथ अथवा चेला गुरु के हाथसे होता है और विशेष कर ढूंढियों में है।

(प्रश्न) न० ६ सत्यार्थप्रकाश पृ ४०२ पंक्ति २० से लेके जो श्लोक जैनियों के बनाये लिखे हैं वह जैनमत के तथा जैनमत के ही ग्रंथों के हैं।

(उत्तर) न० ६ में इसका उत्तर इससे पहिले पत्र में लिख चुका हूं आपके पास पहुंचा होगा देख लीजिए।

और अनेक यत्न भी किये परन्तु दावा खारिज होगया जिसका अपील भी नहीं हुआ।

१७ नवम्बर सन् १८८० ई० तक स्वामी जी देहरादून में रहे फिर आगरे को रवाना हुए मार्ग में मेरठ के रेलवे स्टेशन पर लाला रामशरणदास से मिले और कहा कोयल जाता हूँ फिर कोयल पहुँचकर बाबू लोताराम वकील से मिले तत्पश्चात् आगरे में पहुच कर राय गिरधरलाल साहब वकील के मकान पर सुशोभित हुए इसका सविस्तार वर्णन मुन्शी इन्द्रमणिजी के पत्रमें आगे चलकर मिलेगा।

तारीख २२ नवम्बर सन्१८८० ई० को लाला ठाकुरदास जी ने एक बड़ा लम्बा चौडा पत्र लिख रजिस्ट्री द्वारा स्वामी जी के नाम भेजा जो उक्त ठाकुरदास के लेखानुसार स्वामी जी का पता न मिलने के कारण १४ दिसम्बर को पलटा आया * जिसका सक्षेप (खुलासा) यह है कि प्रथम तो पुराना ही झगडा भरा है मध्य में ये पाच प्रश्न हैं।

(१) यह आपने चार्वाक मत को जैन मत की शाखा किस शास्त्र से प्रमाण किया व कौन से जैनी शास्त्रों मे लिखा देखा ?

(२) यह कितना काल हुआ कि चार्वाक मत जैन मत से निकला और जैन मत की शाखा निश्चित की गई ?

(३) चार्वाक मत के प्रचार देने वाला कौनसा जैनी था व किस जैन धर्म आचार्य का चेला था ?

(४) कौन कौन से ऐसे नियम हैं, जो जैन और चार्वाक मत एक हैं और आपस मे मिलते हैं और कौन कौन से नियमों को देख आप सिद्ध करते हैं कि चार्वाक और जैन मत एक है ?

(५) जैन मत की सब कितनी शाखा हैं ? उनका पृथक् पृथक् नाम पतेवार कहो ? उन शाखाओं के पृथक् २ होने में क्या प्रमाण है ? तथा चार्वाक मत उन शाखाओं से किसकी प्रति शाखा है ? इसके उपरान्त लाला ठाकुरदास ने

* हम नहीं कह सकते कि ठाकुरदास जी का यह कहना कहाँ तक सच है कि स्वामीजीका पता न लगनेसे पत्र उलटा आया क्योंकि डाक वालोंका नियम है कि जहाँ तक पते पत्र पहुंचा देते हैं।

अपने पत्र में स्वामी जी को अनेक धुड़किया दी हैं, कि हमसे माफी माँगो अपना पीछा छुड़ाओ नहीं तो पश्चाताप करोगे, आपने लुधियाने के पत्र में लिखा कि पूर्वोक्त श्लोक बहुधा जैन ग्रन्थों के भी हैं जिनको ठाकुरदास जी ने स्वीकार भी करलिया है भला स्वामी जी मैंने किस पत्र में स्वीकार कर लिया है ऐसा झूठ बोलना छल करना आपको किसने सिखलाया आप इसी प्रकार धोखेबाजी करते हैं आप स्मरण रखिये कि आपका यह सब कपट अदालत में दिखा कर, आपके यथेष्ट दंड दिला दिया जायगा, और इस पत्र का उत्तर चाहे आप भेजें चाहे न भेजें यह आपकी इच्छा है, इत्यादि०।

आगरे से स्वामी जी ने एक पत्र २४ नवम्बर को लाला रामशरणदास के नाम भेजा, और २९ नवम्बर तथा ६ दिसम्बर को एक एक पत्र लिख मुन्शी इन्द्रमणि जी के नाम पठाये उनकी यथार्थ नकल मुन्शी इन्द्रमणि जी के उत्तर में आगे चल कर उत्तरार्द्ध भाग में लिखेंगे।

शास्त्रार्थ काशी जो स० १९२६ में हुआ था इस स० १९३७ के कार्तिक शुक्ला १२ को वैदिक यन्त्रालय काशी मे पुस्तकाकार छपा और इसी सम्वत् के मार्गशीर्ष मास में, सप्रि विषय १ वेदांग प्रकाश (जिसमें, अव्ययार्थ १ आख्यातिक १ सौवर १ परिभाषिक १ धातुपाठ १ उणादिगण १ गणपाठ १ यह छ पुस्तक शामिल हैं) छपकर प्रकाशित हुए।

पौष सम्वत् १९३७ से ही यजुर्वेदभाष्य अंक २० व २१ छपकर प्रकाशित होगये, जिसके दाहिनी पेज पर कोई समाद करने योग्य विज्ञापन नहीं था।

यद्यपि आगरा गोकुलपुरे में एक आर्यसमाज पहिले ही से था परंतु शहर से यह स्थान दूर है इसलिये २६ दिसम्बर को एक खास जल्सा इसलिए किया गया कि शहर मे एक नवीन आर्य्यसमाज स्थापित किया जावे, और एक गोरक्षिणी सभा भी नियत हो इस पर स्वामी जी ने बड़ी धूम धाम से व्याख्यान दिया और ९२०) रुपया चन्दा तो उसी समय हो गया और २८ दिसम्बर के जल्से में ३००) रुपए और जमा हुए जिसमे २५) रु० एक मुसलमान ने दिए थे।

लाला ठाकुरदासजी निज लिखित पुस्तक दयानन्दमुख चपेटिका मे लिखते हैं कि जब हमारा पत्र १४ दिसम्बर को लौट कर चला आया और किसी समाज

वालों ने हमको स्वामी जी का पता नहीं दिया तब हमने २१ दिसम्बर सन् १८८० ई० को एक पत्र समाज वालों पर फारसी में लिखा जिसका आशय यह था कि स्वामी जी के पास हमारे प्रश्न का उत्तर नहीं है, इससे स्वामी जी छिपे बैठे हैं, आप उनका पता बतला दो, इसका उत्तर समाज वालों ने अट्ट का सट्ट जो चाहा सो लिखा परन्तु स्वामी जी का पता नहीं बतलाया उस समय हमने १ ली जनवरी सन् १८८१ ई० के दिन एक पत्र समाज वालों को और लिखा जिसका आशय यह था कि हम दिगम्बरी श्वेताम्बरी दोनों प्रकार के जैनी तारीख २० जनवरी सन् १८८१ ई० को स्वामी जी से शास्त्रार्थ करने अम्बाले आवेंगे तुम स्वामी जी को भी वहाँ हाजिर रक्खो और सब समाजियों में खबर दे दो तब इस पत्र का उत्तर भी समाज वालों ने उड़ा ही दिया। जब हमने फिर तारीख १२ जनवरी सन् १८८१ ई० को यही लिखा कि हम दोनों पक्ष के जैनी अम्बाले आन कर स्वामी जी से शास्त्रार्थ करेंगे और तारीख २० से २३ तक स्वामी जी से चर्चा होगी, इस पर स्वामी जी अम्बाले में नहीं आये हम उनकी राह देख अम्बाले में बैठ कर चले आये, और तारीख ६ फरवरी सन् १८८१ ई० को एक छपा हुआ निवेदन सम्पूर्ण समाजियों के नाम पर रवाना किया जिसका खुलासा इस प्रकार है।

यह बात किसी से छिपी हुई नहीं है कि स्वामी जी ने हमारे जैन धर्म्म के नाम से मिथ्या श्लोक बनाकर हमारी बहुत बड़ी निन्दा की है, और जिसका प्रमाण स्वामी जी के पास कुछ भी नहीं है, और हमारे पूछने पर स्वामीजी धमकी देने के सिवाय और कुछ नहीं कहते हमने बहुधा यह चाहा कि यह झगड़ा पत्र द्वारा ही समाप्त हो परन्तु स्वामी जी ने पत्र द्वारा इन श्लोकों को चार्वाक का बतला कर जैन और बौद्ध चार्वाक सबको एक बतला दिया और नवीन अनर्थ किया, अब आप और सुनिए।

आनन्दीलाल मन्त्री आर्यसमाज मेरठ अपने पत्र में लिखते हैं कि सम्पूर्ण आर्य्यसमाज स्वामी जी के अनुकूल हैं तुम सब जैनी भी सहमत होकर अदालत करने को उठो तुम लोगों ने सत्य वेद विद्या का नाश कर हमको बहुत हानि पहुंचाई है, इस लिए तुम्हारा तन, मन, धन भी हमारे नुक्सान को पूरा नहीं कर

सकता इत्यादि० ।

सो मैं आपसे पूछता हूँ क्या आप भी इसको प्रमाण करते हैं ? और जो ऐसा ही है तो क्या जिस जुर्म (अपराध) में स्वामी दयानन्द दोषी ठहरते हैं आप भी उसमें शामिल हुआ चाहते हैं, इस वाक्य का ठीक पता लगाने के लिए कि आनन्दीलाल का लिखना आप सर्वसमाजी मनुष्य स्वीकार करते हैं कि नहीं यह निवेदन पत्र भेजा जाता है एक मास तक इसके उत्तर की राह देखूंगा, सो इस अवसर में आप मुझको अपने सच्चे अभिप्राय से भेंदी करें और अपने आपको उस कलंक से बचावें जिसको मन्त्री मेरठ समाज ने सर्व समाजियों के शिर धरा है, नहीं तो फिर आप सम्पूर्ण समाजियों पर स्वामी जी सहित अदालत दीवानी में सम्पूर्ण जैनियों की तरफ से हतक इज्जत की नालिश की जायगी और हर्जा तथा खर्चा जो हमारा इतने दिनों से हो रहा है तुमसे भराया जायगा वगैरह ।

पूर्वोक्त छपे हुए निवेदन पत्र का उत्तर तो किसी समाज वाले ने भी इज्ज नहीं दिया परन्तु स्वामी दयानन्द सरस्वती के शिष्य पण्डित गोपाल शर्मा शास्त्री फर्रुखाबाद निवासी ने एक दयानन्द दिग्विजयार्क प्रथम भाग पुस्तक छपाई जिसके आरम्भ का दिन माघ शुक्ला ५ गुरुवार सम्वत् १९३७ और समाप्त करने का दिन ज्येष्ठ शुक्ला ९ चन्द्रवार सम्वत् १९३८ है जो निम्न लिखित श्लोकों से विदित होता है ।

७ ३ १ १
मुनिरामाङ्क भू वर्षे माघे मासे सिते दले ।
पंचम्यां च गुरौ सिद्धै ग्रन्थारम्भः कृतो मया: ॥१॥

८ ३ १ १
अक्षु रामाङ्क चन्द्रेब्दे शुक्रे मासे सिते दले ।
नवम्यां चन्द्र वारेण ग्रन्थे यं पूर्णतां गताः ॥२॥

हम नहीं, कह सकते इस पुस्तक के रचयता ने क्यों ऐसी भूल की जो छिपाए से नहीं छिपती स्वामीजी को रियासत बसूदा में जाकर दूढ़ियों से शास्त्रार्थ करने का समय आषाढ़ और श्रावण सम्वत् १९३८ है जब कि स्वामी जी वहां पधार कर विराजमान थे परन्तु जब दिग्विजय प्रथम भाग ज्येष्ठ ही में पूरा हो

गया तो मसूदा का हाल उसमें कैसे लिखा गया।

उक्त पुस्तक में लाला ठाकुरदास जी के विषय में यह लिखा हुआ है।

विदित हो कि श्रीयुत दिग्विजयी जी महाराज सर्वत्र व्याख्यानों में जैनियों के मत का भी खंडन बराबर करते हैं परन्तु अब तक कोई ऐसा प्रसंग नहीं आया कि उन लोगों ने वहीं सन्मुख बैठ शास्त्रार्थ किया हो इस सम्वत्सर में जैनियों के पुजारी लाला ठाकुरदास नगर गुजरानवाला मुलक पंजाब वाले ने कुछ छेड़छाड़ की थी उसका कुछ वृत्तान्त अनुष्टुप प्रकार से सबको विदित होने के लिये यहाँ लिखा जाता है, और वो आर्य समाचार मेरठ का सार है, भावार्थ देखो उर्दू आर्य-समाचार मेरठ संख्या २० जिल्द २ पृष्ठ ३१३ यावत् सन् १८८० ई०।

अरसा एक साल या कुछ कमवेश से हमारे एक जैनी भाई लाला ठाकुर-दास जी आपे से बाहर हो गए हैं अपना समय निरा बे मतलब तू तू मैं मैं में खोते हैं और दूसरों का भी उसके देखने सुनने से खराब कर रहे हैं कभी तो सत्यार्थप्रकाश के १० वें समुल्लास के लेख का सबूत तलब करते कभी नालिश तौहीन मजहब की धमकी देते कभी अखबारों के द्वारा यह प्रकाशित करते हैं कि स्वामी दयानन्द जी रूपोश हो गए हम उन पर इस हफ्ते में अवश्य नालिश करेंगे। पहिले तो हम लोग खामोश रहे जब उनके अत्याचार से चुप बैठना और ही कुछ भावित होने लगा तब लाचार उत्तर देना ही पड़ा वहां क्या था वे समझते थे कि हमारी मत सम्बन्धी किताबें जब हमी को बमुश्किल मिलती हैं तो स्वामी जी क्योंकर पावेंगे, आखिर कार मजबूर होकर अपना लिखा खुद काटेंगे। दूसरे यह भी जानते होंगे कि इस नाहक की तू तू मैं मैं में मेरा नाम भी मत हितैषियों में गिना जावेगा। इनका पहिला मनोरथ तो सिद्ध न हुआ, रहा दूसरा वह अच्छा नहीं तो खैर बुरा ही सही बुरे ही नाम से प्रसिद्ध हो गए, जब पहिले पत्रका उत्तर इनको मिला तो इधरसे मुँह मोड़ दूसरा ही तोड़ तोड़ लड़ाया अर्थात् अखबारों पर दांत निकाले और उसी के साथ आनन्दलाल मंत्री आर्यसमाज मेरठ पर भी क्रोधित हुए हैं इत्यादि। १।२।३। ४ आगे उस पत्र की नकल कर दी है जो कार्तिक शुक्ला ४ शनिवार सं० १९३७ को दयानन्द जी ने देहरेसे लिखाया

स्वामीजी का एक दूसरा पत्र आत्माराम जी के नाम इस प्रकार से है।

आनन्द विजय आत्माराम जी ! नमस्ते ।

आपके पत्र लिखित सब समाचार विदित हुए जो आपने लिखा कि बौद्ध और जैन के एक मानने से हमारी हतक इज्जत नहीं इससे आनन्द हुआ मगर यह तो आपने लिखा कि योगाचार आदि चार मत जिस बौद्ध के हैं वह जैन मत के एक अलग शाखा का है इसका जवाब मैं भेज चुका मजाहब में शाख दर शाख का फर्क थोड़ी बातें जुदी होने से होता है मगर बहैसियत मजहब शाखें एक ही मजाहब की होती हैं, देखिये कि उन्हीं मनकरों में चार्वाक्यादि मनकर हैं और जो आप उनका इतिहास व जीवन चरित्र पूछते हैं सो इसका जवाब भी मैं दे चुका हूँ, भावार्थ इतिहास तिमिरनाशिक के तीसरे भाग में देख लीजिये । और आप जिन बौद्धों को अपने धर्म से पृथक् लिखते हैं वह आपकी आम्नाय भेद से चाहे जुदे ही हों परन्तु धर्म से जुदा नहीं हो सकते जैसे कोई जैनी श्वेताम्बर दूसरे सम्वेगी साधुओं पर तर्क करके उनको नवीन और पृथक् मानते हैं और यह विवेकसार पुस्तक में सविस्तार लिखा हुआ है और इसी प्रकार आप लोगों ने उन पर अनेक तर्क सम्यक्त्व लगणी पुस्तक में लिखे हैं, सो इससे वे और आप बौद्ध या जैन धर्म से अलग नहीं हो सकते और न कोई विद्वान् उनके धार्मिक बर्ताव से उनको अलग मान सकता है, उनके आचार विचारमें भिन्नता तो अवश्य होगी और आपके इस कौल से कि इसमें क्या अजब है कि महावीर तीर्थंकर के समय में चार्वाक मजहब था । उनके पीछे नहीं हुआ इससे मुझको निहायत हैरानी हुई, क्या जो महावीर तीर्थंकर के पहिले २३ तीर्थंकर हुये उन सब के पहिले चार्वाक मजहब को आप साबित नहीं कर सकते ? अगर कुछ शक हो तो लीजिये मेरा प्रश्न है कि ऋषभदेव भी चार्वाक मजहब से ही चले हैं, फिर इसका उत्तर आप क्या और क्योंकर दोगे ? क्या चारवाक्य १५ प्रकार में से एक प्रकार का यह नहीं है, और उनमें एक भी शुद्ध और उक्त नहीं हुआ ? क्या वे आपके धर्माचरण और शास्त्रों से अलग हो सकते हैं ? इसके अतिरिक्त आपने भी अपने पत्र में बौद्ध धर्म को अपने धर्म में स्वीकार कर लिया है क्यों कि सर कहादि को आपने बौद्ध माना है और मैंने भी अपने पहिले पत्र में जैन और बौद्ध की ऐक्यताका लिखितप्रमाण देदिया है, फिर आपका पुन २ पूछना

व्यर्थ और निःस्वार्थ है, जहां वादी के वचनों पर ही विश्वास हो सके वहां साक्षी लेने की क्या आवश्यकता है, भला जिसके अनेक पुरुषा जैनी थे ऐसे राजा शिव-प्रसाद की साक्षी को तथा यूरोप देश के अनेक इतिहास लिखने वाले विद्वान अंग्रेजों को आप मूढ़ कह सकते हैं जिन्होंने अपनी बनाई पुस्तकों में स्पष्ट लिखा है कि कुछ बात आर्य्यों की और कुछ बौद्धों की मिल कर जैनधर्म बना है।

दूसरे प्रश्न के उत्तर में जो आपने लिखा है कि वह नमुचि नास्तिकजैन धर्म का द्वेषी साधुओं को निकालने और तकलीफ देने वाला था उसको मार कर सातवें नर्क में भेजा, क्या यह लेख आपने सत्यार्थप्रकाश के उत्तर में नहीं समझा? खयाल कीजिये कि वह नमुचि जैन धर्म्म का शत्रु था इस लिए मारा गया उसने जान बूझ कर पाप नहीं किया था, कितने खेद की बात है कि आप सीधी बात को भी उलटी समझ गए। तीसरे प्रश्न के उत्तर में जो प्राकृतका श्लोक लिख कर उसका समझना मेरे ऊपर छोड़ा इससे प्रकट है कि आप यह जानते होंगे कि मैं उसके आशयतक न पहुंचूंगा हा! मैं सब मुल्कोंकी बोली नहीं जानता सिर्फ चन्द देशों की बोली और संस्कृत जानता हूँ परन्तु मत सम्बन्धी सिद्धान्तों को विद्वानों के सत्संग से अच्छे प्रकार जानता हूँ, आप लोगोंने अपनी भाषा ऐसी बिगाड़ी है और ऐसे अप्रसिद्ध शब्द बनाये हैं ताकि दूसरा न उसे समझे जैसे किसी किसी ने शराब का नाम (तीर्थ) और मांस का नाम पुष्प आदि बना लिया है ताकि उनके सिवाय दूसरा कोई न जान ले। जो राजा न्यायवान् होते हैं वे ऐसे स्पष्ट मार्ग बनाते हैं कि अन्धा भी नियत स्थान पर बिना परिश्रम पहुँच जाय लेकिन उनके प्रतिपक्षी मार्ग को ऐसा बिगाड़ते हैं कि कोई परिश्रम द्वारा भी चल नहीं सकता आप जो पुस्तक रत्नसार को नहीं मानते तो क्या, बहुधा जैनी गण उसको धर्म ग्रन्थ मानते हैं। देखिये आप ऐसे विद्वान् होकर मूर्ख को मूरख लिखते हैं, और वाक्य शुद्धि के लिये पत्र पर हरताल भी लगाई है, कैसा दुःख का विषय है कि आप लोग संस्कृत का क्या जिक्र भाषा भी नहीं जानते। यदि यह मान लिया जाय तो कुछ डर नहीं कि अशुद्धियाँ मनुष्य ही से हो जाती हैं। चौथे सवाल का उत्तर बड़ा हैरान करने वाला है, अधिक तब सीखा जाता है जब सीखने वाले से सिखाने वाला विशेष जानता हो आप भी शायद इसे मानते होंगे।

यह बात विद्वानों की नहीं कि अपने ही मत के विद्वान को माननीय ठहराना और दूसरे मत के विद्वानों को इससे विरुद्ध । गर्ज इन छ निषेधों का कलक आपको ऐसा लिपट गया कि जब ईश्वरही चाहे तब छूटे, अब जो आपके ग्रन्थों का हमारा तौहीन मजहबी साफ २ लिखी है उसका उत्तर व वापसी डाक हवाला सफा और सतर दीजिये ।

ब्रेक सार पर प्रश्न

(१) ब्रेक० पृ० १० प० १ में लिखा है कि श्रीकृष्ण तीसरे नर्क को गया ।

(२) ब्रेक० पृ० ४० प० ८ से १० तक कि हरिहर ब्रह्मा महादेव राम कृष्ण आदि काम क्रोधी अत्यागी स्त्रियों के दोषी पाषाण की नौका समान आप डूबे औरों को डुबोने वाले थे ।

(३) ब्रेक० पृ० २२४ प० ९ से पृ० २२५ प० १५ तक में लिखा है कि ब्रह्मा विष्णु महादेव आदि सब अदेवता और अपूज्य हैं ।

(४) ब्रेक० ५५ प० १२ में लिखा है कि गंगा आदि तीर्थों और काशी आदिक्षेत्रों से कुछ भी परमार्थ सिद्ध नहीं होता ।

(५) ब्रेक० पृ० १३८ प० ३० से लिखा है कि जैनी साधु भ्रष्ट भी होय तो अन्य धर्मावलम्बी साधुओं से उत्तम है ।

(६) ब्रेक० पृ० १ से लेकर लिखा है कि जैनियों मे बौद्ध आदि शास्त्रें हैं इससे सिद्ध हुआ कि जैन मतातर गत बौद्धादि सब शास्त्रा हैं । *

*यह लेख उर्दू आर्य्य समाचार मेरठ जिल्द२ मास माघसरया२० पृष्ठ३२५से ३३० तक भी छप चुका है और इस लेख में प्रश्न ३ के उत्तर मे प्राकृत विद्या को अशुद्ध कहना तथा उस पर मनमाने व्यर्थ प्रमाण गढना, रत्नसार विवेकसार को जैन का माननीय ग्रन्थ समझना, चौथे प्रश्न के उत्तर में हर एक मजहब में विद्वानों का होना बतलाना यही सिद्ध करता है कि स्वामी जी लाल बुझक्कड से भी अधिक जानकार अभिमान मूर्ति थे ।

स्वामी जी के आगरे में रहते २ माघ सम्वत १९३७ में ऋग्वेद भाष्य अंक ०२ व ०३ प्रकाशित हुआ और इस के टाइटिल पेजपर कोई समद्द योग विज्ञापन नहीं था।

पुस्तक दयानन्द दिग्विजय प्रथम भाग में एक लेख उर्दू अक्षरों में इस प्रकार है। अखबार आफताब पंजाब तारीख १७ फरवरी सन १८८१ ई० में जो आखरी नोटिस गुजरानवाला की कौम जैनी की तरफ से छपा है उससे प्रकट हुआ कि वह पुराना झगड़ा जो उन्होंने स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के उस लेख पर जिसमें कि उन्होंने जैनियों के पुस्तक और उनके सिद्धांत पर नुक्ता चीनी की, अर्थात दोष लगाये, एक छोटी बात का बड़ा भारी तूमार अम्बाला के कोर्ट में फैसला उचित समझा है। इसलिए इन्होंने इसके उत्तर का जो ६ दिसम्बर के इसी अखबार में छपा है कुछ लिहाज नहीं किया और शर (झगड़ा) बढ़ाने पर मुस्तैद रहे, मुकाम इंसाफ है कि जब दयानन्द सरस्वती जी ने इस कौम के सवालों का जवाब तफसीलवार साफ व सतर लिखा फिर कौन सी बात बाकी रह गई, यह मुकद्दमा इस वजह का है कि स्वामी दयानन्द जी ने जो हमारे मजहब पर नुक्ता चीनी की है, वह गोया हमारी तौहीन मजहबी है, मगर हम कहते हैं, कि जिस मजहब व मिल्लत पर रूबरू पक्की बहस की जावे वह एक तरह की पक्की नुक्ता चीनी है, न तौहीन मजहब की, हां! जो बनावटी दलील केवल कपोल कल्पित हो तो जरूर हो सक्ता है, बाबा यह कि जो किसी खास मजहब पर बहस करे वह तौहीन मजहबी के इल्जाम का मुल्जिम दोषी ठहर सकताहै, नहीं तो हरगिज नहीं, बाजे पाठकजन और दूसरे लोग जैनियोंके विज्ञापनोंसेयह समझते हैं कि स्वामी जी उन से फैसला क्यों नहीं करते, यह सवाल केवल उनको असली बात के न जानने के कारण है, क्योंकि स्वामी जी ने सब पर जैन मत की सत्यता और असत्यता प्रकट करदी है, बाजे लोग कहते हैं कि जैनी कौम ऐसी वैसी नहीं जो जरासी बात पर मुकद्दमा करे, पस इसकी कुछ और वजह होगी, यकीनन खास सबब यह है कि एकही आदमी अपना नाम करने को यह चाल करता है, और अपने तमाम मतवालों को इसमें शामिल करता है, गो कि बाकी तमाम मतवाले इसे बुरा खयाल करते हैं, अब हम सब से कहते हैं कि

गारबार नालिश की धमकी न दें, बरन् जो कहते हैं सो कर दिखलावें और इस का नतीजा पावें ॥

पक्षपात इसी का नाम है कि लाला ठाकुरदास के पत्र व्यवहार से रष्टमान हो आनन्दीलाल मन्त्री आर्य्य समाज मेरठ ने अपने माघ सम्वत् १९३७ के आर्य्य समाचार मेरठ पृष्ठ ३०५ से ३१२ तक में उस रथयात्रा के मेलोंकी बुराई लिखदी जो माघ सम्वत् १९३७ तथा जनवरी फरवरी सन् १८८० ई० में शहर और छावनी मेरठ में हुए थे

राजा शिवप्रसाद जी ने एक दूसरा निवेदन पत्र छपाकर स्वामी जी के पास पठाया जो भ्रमोच्छेदनके उत्तर में था, उसकी पूरीनकल नीचे लिखी जाती है

॥ दूसरा वा पिछला निवेदन ॥

(अब इस विषय में आगे कुछ नहीं लिखा जायगा)

एक पुस्तक भ्रमोच्छेदन नाम मेरे "निवेदन के उत्तर में" श्रीमत्स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का निर्माण किया हुआ आया समझा कि अब अवश्य स्वामी जी महाराज ने यथा नाम तथा गुण दया करके मेरे प्रश्न का उत्तर भेजा होगा बड़े उत्साह से खोला तो शिवप्रसाद कम समझ, आलसी, उसको मरहट्ट विद्या से शब्दार्थ सम्बन्धों के समझने की सामर्थ नहीं, वह अयोग्य उसकी समझ अति छोटी, वह अविद्वान अधर्म कर्म से युक्त अनधिकारी उसके नेत्र फूट गये हैं उसकी अल्प समझ, वह ज्ञान के समान, जैसी उसकी समझ वैसी किसी छोटे विद्यार्थी की भी नहीं, उसकी उलटी समझ वह प्रमत्त अर्थात् पागल उसको वाक्य का बोध नहीं वह अन्धाना मध्ये काणो राजा तात्पर्यार्थ ज्ञानशून्य, पक्षपातान्धकार से विचार शून्य अशास्त्रवित् अव्युत्पन्न, व्यर्थ वैतण्डिक, अन्धा, उसकी मिथ्या आडम्बर युक्त लडकपन की बात वह वाद के लक्षण युक्त नहीं उसकी बुद्धि और आखें अन्धकारावृत, वह सन्निपाती, वह कोरे ढेके पढा वह अविद्या युक्त, बालक बधिर, विचारा संस्कृत विद्या पढा ही नहीं, ऐसे ऐसे शब्द और वाक्यों से परिपूर्ण पाया खेद की बात है क्यों वृथा इतना कागज बिगाडा मैं तो आपही अपनेको बडा ये समझ बड़ा अविद्वान बड़ा अधर्मी बडा अशास्त्रवित् बडा अव्युत्पन्न बडा अन्धा पढते में गाते हुये हू यदि इनकी जगह राम नाम जिपा होता कदाचित कुछ पुण्य

भी हो सकता (राम राम) मेरे शिर पर जाट खाट और कोल्हू चढाता है (भ्रमोच्छेदन पृष्ट १०)-(Thanks)पर मैं तो पहाड का भी बोझ सहसकता हूँ हाँ मुझको छली और कपटी जो लिखा है उसका कारण कुछ समझ में नहीं आया यदि कहे कि जो जैसा होता है वैसा ही दूसरो को भी समझता है तो ऐसी बात मनमें लाने के भी पाप का भागी मैं नहीं हुआ चाहता जो हो मैं तो अपने प्रश्न का उत्तर चाहता था प्रश्न मेरा एकही इतनाकि "आपने लिखा" ब्राह्मण ग्रथ सब ऋषि मुनि प्रणीत और सहिता ईश्वर प्रणीत है, वादी कहता है जो सहिता ईश्वर प्रणीत है, तो ब्राह्मण भी ईश्वर प्रणीतहै और जो ब्राह्मण ग्रन्थ सब ऋषि मुनि प्रणीत हैं तो सहिता भी ऋषि मुनि प्रणीत है आपने लिखा वेद (सहिता मात्र) स्वत प्रमाण और ब्राह्मण परत प्रमाण है वादी कहता है जो ऐसा तो ब्राह्मणही स्वत प्रमाण है आप का सहिता परत प्रमाण होगा (निवेदन पृष्ठ ८). "आप सहिता के मण्डन और ब्राह्मण के खण्डन का ऐसा प्रमाण दीजिये जिससे ब्राह्मण का मण्डन और सहिता का खडन न होसके केवल आपके कहने से कोई कुछ क्यों मान लेगा" (नि० पृ० ५) निदान भ्रमोच्छेदन की बाईसों पृष्ठ बाईस बार उलट डाली इसके सिवाय उसमें और कुछ उत्तरनहीं पाया कि देखिये राजाजीको मिथ्या आडम्बर युक्त लडकपन की बात को जैसे कोईकहे कि जो पृथ्वी और सूर्य ईश्वर के बनाये हैं तो घडा और दीप भी ईश्वर ने रचे हैं" औरजो सूर्य और दीप स्वत प्रकाशमान हैं तो घटपटादि भी स्वत प्रकाशमान हैं,, (भ० पृष्ठ १० और १३) भला सूर्य और घडे की उपमा सहिता और ब्राह्मण में क्यों कर घट सकती और सूर्यके सामने कोई आधघटेभी आखखोलके देखतारहे अन्धानहीं तोचक्षु रोग मैशाक्ष्य पीडित होने जेठ की धूप में नगे सिर बैठे सन्निपाती नहीं तो ज्वर ग्रस्त अवश्य हो जावे यदि अग्न्युत्तेजक काच सामने रख दें कपडा लत्ता ही जल जावे जन्म भर उछले कूदे कैसे ही बदल पर चढे कभी सूर्य तक न पहुँचे इधर कुम्हार से यदि चाक डंडा और कुछ मिट्टी ले आवे चाहे जितने घडे आप अपने हाथ धो लेवे और फिर जबचाहे तोड डाले सहिता और ब्राह्मण दोनोंग्रन्थ हैं एक से कागज पर एक सी स्याही से लिखे हुये व छपे हुये और एक से कपडों में बधे हुए जब तक बतलाया न जावे जानना भी कठिन है कि कौन सहिता है और कौन ब्राह्मण,

पर हा उस काल से लेकर कि जिससे पहिले किसी का कुछ विदित नहीं आज तक सब वैदिक हिन्दू अर्थात जो हिन्दू वेद को मानते हैं संहिता और ब्राह्मण दोनों को बराबर माननीय मानते चले आये स्वामी जी महाराज को अपने ही इस न्याय से कि "जो सैकडो आप्त ऋषियों को छोड कर एक ही को आप्त मान कर, संतुष्ट रहता है वह कभी विद्वान् नहीं कहा जा सक्ता (भ० पृष्ठ १५) ब्राह्मण का परित्याग न करना चाहिए आपस्तम्बादि मुनि प्रणीत सूत्रों के परिभाषा सूत्र मे भी "मन्त्र ब्राह्मणयोर्वेद नामधेयम" ऐसा ही लिखा है और स्वामी जी महाराज जो यह कहते हैं कि "क्या आप जैसा कात्यायन को आप्त मानते है वैसा पाणिनि आदि ऋषियों को आप्त नहीं मानते " जो उनको भी आप्त मानते हो तो मंत्र संहिता ही वेद है उनके इस वचन को मान कर तद्विरुद्ध ब्राह्मण को वेद संज्ञा के प्रतिपादक वचन को क्यों नहीं छोड़ देते" (भ० पृष्ठ १५) सो पहिले तो स्वामी जी महाराज यह बतलावें कि पाणिनि आदि ऋषियों ने कहा ऐसा लिखा है कि "मन्त्र संहिता ही वेद है" ब्राह्मण वेद नहीं है, वरन पाणिनि ने तो जहाँ मन्त्र और ब्राह्मण दोनों के लेने को प्रयोजन देखा स्पष्ट "छन्दसि" कहा अर्थात् वेद मे अर्थात् मन्त्र और ब्राह्मण दोनो मे और जहाँ केवल मन्त्र व ब्राह्मण का देखा "मन्त्रे" व "ब्राह्मणे" कहा और जहा मन्त्र और ब्राह्मण अर्थात् वेद के सिवाय देखा वहा "भाषायाम्" कहा भला जैमिनि महर्षि के पूर्व मीमांसा को तो स्वामी जी महाराज मानते हैं उसमे इन सूत्रों का अर्थ क्योंकर लगावेंगे "अथोत्तरं केषुमन्त्राख्या"—शेषे ब्राह्मणशब्द" (अ० २ पा० १ सू० ३३) इसका अर्थ बहुत स्पष्ट है कि वेद का मन्त्रो से अवशिष्ट जो भाग सो ब्राह्मण, निदान जब मैंने गौतम और कणाद के तर्क और न्याय से न अपने प्रश्न का प्रमाणिक उत्तर पाया और न स्वामी महाराज की वाक्य रचना का उसमे कुछ सम्बन्ध देखा डरा कि कहीं स्वामीजी महाराज ने किसी मेम अथवा साहब से कोई नया तर्क और न्याय रूस अमेरिका अथवा और किसी दूसरी विलायत का न सीख लिया हो फरमिस्तान के विद्वज्जन मंडली भूषण काशीराज स्थापित पाठशाला च डाक्टर टीबो साहब बहादुर को दिखलाया बहुत अचरज मे आये और कहने लगे कि हम तो स्वामी जी महाराज को बडा पंडित जानते थे पर अब उनके मनुष्य होने मे भी

सन्देह होता है (तब तो भ्रमोच्छेदन को भ्रमोत्पादन कहना चाहिये !) और अंग्रेजी न कुछ सिख भी दिया नीचे उसकी भाषा सहित छापा जाता है।

The question at issue between Raja Shivaprasad and Dayanand Saraswati is the authoritiveness of the several parts of what is commonly comprised under the name 'Veda' Dayanand Saraswati rejects the Brahmanas and Upnishads (with one exception) and acknowledges the authority of the Sanhitas only, As this procedure is not in agreement with the religious belief of the Hindus of the Present day as well as of past ages of which we have records, Dayanand Saraswati is bound to Produce convincing proofs for the validity of the distinction he makes. He mentions that the Sanhitas are इश्वरोक्त while The Brahmans and Upnishads are merely ऋषिोक्त but how does he prove this assertion ? (for as it stands it cannot be called anything but a mere assertion), The assertion of the Sanhitas being स्वत प्रमाण while the Brahmans and Upnishads are merely परत प्रमाण can likewise not be admitted before it is supported by arguments stronger than those which Davanand Saraswati has brought forward up to the present, Raja Sivaprasad is right to ask "why should not both be स्वत प्रमाण if one is so ?" or again "why should not both be परत, प्रमाण if one is so ?" and this reasoning could certainly not be employed by any one for proving that other non vedic books as well are to be considered equal to the veda, for the veda alone (including Brahmans and Upnishabs) enjoys the privilege of having since immemorial times been acknowledged by all Hindus as sacred and revealed books

With regard to the passage quoted by Dayanand Saraswati from the Satapatha Brahmana (Brihadaranyak

ऐसा है जैसा स्वामी दयानन्द जी महराज को मुसलमान कहना ।

(३) इतिहास तिमिरनाशक का आशय स्वामी जी की समझ में नहीं आया उसकी भूमिका की नकल * इसके साथ कीजाती है उससे विदित होगा कि "सग्रह" है बहुत बात खण्डन के लिये लिखी गई मेरे निश्चय के अनुसार उसमें कुछ भी नहीं है ।

(४) जो स्वामी जी जैन को इतिहास तिमिरनाशक के अनुसार मानते हैं तो वेदो को भी उसके अनुसार क्यों नहीं मानते ?

आपका—शिवप्रसाद †

श्रीमान पण्डित शिवचन्द्र जी निज रचित "मूर्तिपूजा मण्डन" पुस्तक पृष्ठ ८ पक्ति १४ मे लिखते हैं कि—

बहुधा अज्ञानी मनुष्य ऐसा कहते हैं कि चार्वाक और बौद्ध और जैन तीनो एक हैं, उनका ऐसा कहना सर्वथा असत्य है क्योंकि जब तक षट्दर्शन का ज्ञाता न होगा तब तक मत के भेदो का ज्ञाता भी न होगा और बिना जाने किसी के धर्म का एकरूप अथवा शाखा प्रतिशाखा कहना और पुस्तको मे लिखना अयोग्य और अन्याय अधर्म्म का कारण है जो लोग ऐसा कहते हैं उनको जैन धर्म्म का रहस्य कुछ मालूम नहीं किन्तु जैसा किसी से सुना वैसा ही लिख दिया इसको भेद शास्त्र ज्ञान के बिना कभी नहीं जाना जायगा, इससे जिनको जानने की इच्छा हो उनको योग्य है कि थोड़े दिन षटमत के शास्त्रो का अध्ययन कर सब मतो का रहस्य जानें और जो बिना जाने कहते है या पुस्तक में लिखते हैं जब कोई प्रश्न करेगा तो उस वक्त उत्तर देना दुर्लभ होगा जैन और बौद्ध चार्वाक इनका भेद और यथार्थ ज्ञानाख्यान न्याय शास्त्रों से जानना चाहिये और जैन बौद्ध की एकता करनी ऐसी है जैसा कि अमृतमे विष मिलाना जब मत मतान्तर का भेद ही मालूम नहीं तब उसकी जो समीक्षा करी है वो भी असत्य है

* इतिहास तिमिरनाशक की भूमिका की नकल यहाँ नहीं लिखते हैं जिसको देखना हो असल पुस्तक में देख ले।

† यह पत्र ४ अप्रैल सन् १८ साथकोड पत्र के रूप पर भी प्रकाशित हो चुका है

विचारना चाहिये कि जिसके देव, गुरु शास्त्र में तफावत हो और एक चिन्ह भी नहीं मिलै तो दो धर्म एक किस तरह हो सकते हैं चार्वाक नास्तिक मति शून्यवादी हैं और बौद्धमती क्षणिकवादी पचभूत आत्मा को मानते हैं आत्मा का परलोक मुक्ति नहीं मानते उनका देव बुध धोती दोपट्टा यज्ञोपवीत का धारक गुरु रक्ताम्बर है जीवादि सात तत्त्व को मानते हैं जैनी आस्तिक्य मति स्वर्ग नर्क मोक्ष मानते हैं जीवादि सात तत्त्व को मानते हैं उनका देव आप्त वीतराग सर्वज्ञ हितोपदेशक गुरु दिगम्बर पूर्वा पर विरोध रहित शास्त्र है और जो लिखते हैं कि अमरकोष में लिखा है कि (सर्वज्ञ सुगतो बुद्धो) इत्यादि पाठ के नाम से नाम मिलते हैं इससे हम एक समझते हैं तथास्तु प्रथम जो अमरकोष की साक्षी लिखते हैं वो उसको अप्रमाण समझते हैं यदि प्रमाणीक मानते तो देवो को नास्तिक न मानते और शब्दो का अर्थ भी नहीं बदलते दूसरे नाम की एकता से एक नहीं हो सकते जैसा कि किसी का नाम है राजा या धनपाल नृसिंह लक्ष्मीपति अमरचन्द्र इत्यादि विख्यात है तो वो मनुष्य तत्तुल्य नहीं समझा जायगा न वो उक्त नाम के समान गुणी है केवल सज्ञा मात्र जाना जायगा इस तरह बौद्धमत वालों को सर्वज्ञ समझ ना चाहिये अथवा जैसा ईशाई भी ईश्वर कहते हैं और अन्य समाज वाले भी अपने इष्ट को ईश्वर कहते हैं लेकिन दोनों मत एक किस तरह समझे जाय इसी तरह जैनमत और बौद्धमत एक नहीं न शास्त्र प्रतिशास्त्र, ससार में मुख्य षट्दर्शन अनादि काल से हैं शैव, वेदाती, नैयायिक, बौद्ध, जैन, मिमाशक, इस भाति जानिये ॥ इत्यादि० ॥

फाल्गुण मास के पूरा होने पर स्वामी जी जयपुर में पधारे और ऋग्वेद भाष्य अक १।८।५ वैदिक प्रेस काशी से छपकर निकला, लाहौरके पजाबी उर्दू अखबार मे लाला ठाकुरदास के प्रतिकूल १९ मार्च सन १८८१ ई० को निम्न लिखित पत्र प्रकाशित हुआ जिसको दयानन्द दिग्विजय के सग्रहकर्ता ने भी अपनी पुस्तक में लिखा है और आर्य्य समाचार पत्र सख्या २० मास माघ पृष्ठ ३३०।३३१ पर यह लेख मेरठ भी छप चुका है ॥

हमको मालूम हुआ है कि गुजरानवाला में जो तर्क पूज्य आत्माराम ने ठाकुर दास भाभड़े द्वारा प्रकाशित किये थे स्वामी दयानन्द सरस्वतीने उनके यथार्थ उत्तर

आत्माराम जी के हस्ताक्षरी प्रश्न पहुँचने पर ही देदिये थे कि उनका अ
बार आफताब पजाब तारीख १३ दिसम्बर सन् १८८० ई० में छप चुका है, प्र
ट में स्वामी जी ने उसमें हर एक प्रश्न का उत्तर लिखा और अंत में यह औ
साफ लिख दिया था कि और पूछना हो तो सामने होकर पूछलें, परन्तु आश्चर्य
की बात है कि न तो वह उन उत्तरों को स्वीकार करतेहैं और न स्वामी दयानन्द
जी के सन्मुख होते हैं तो मालूम होता है कि या तो भ्रम के कायल हो गये हैं या
आइन्दा हो जाने का खौफ करते हैं वरना इन बातों से दीदादानिस्ता तरह देकर
अखबारों में एक प्रकार की अत्यन्त आश्चर्यकारी और सर्वथा अनुचित बातें
प्रकाशित करने पर वह कभी कटिबद्धन होते जैसा कि अखबार आम तारीख २६
जनवरी सन १८८१ ई० में छपा है कि सरस्वती जी के नाम एक नोटिस एक
मास की अवधि का भेजा गया था परन्तु थोड़े ही दिनों में उलटा चला आया कि
दयानन्द का पता नहीं मिलता रजिस्टरी आर्य्यसमाज गुजरानवाला को दिखा
गई कि मेम्बर लोग पता बतावें परन्तु वहा से भी यही उत्तर मिला कि इस बात
की हमको भी कुछ खबर नहींहै आखिर जैनियों ने इश्तहार जारी किया कि दया
नन्द छिप गये और अम्बाले में अब इसी फैसले की गर्ज से २० जनवरी से २६
जनवरी सन् १८८१ ई० तक बड़ा भारी समारोह होगा, आर्य्य समाजियों को
उचित है कि अपने स्वामी जी को इस में भेजी करदें ताकि वे पधार कर शी
सत्यासत्य का निर्णय करें और फिर यही विषय न्यूनाधिक अखबार आम तारीख
७ फरवरी सन १८८१ ई० में छपा है, सच पूछिये तो यह बात (जो आश्चर्य
कारी और अप्रमाणीक गप्प है) पूज्य महाराज आत्माराम और उनके सेवक ठाकु
रदास की एक हसी और बदमाशी करा रही है क्योंकि स्वामी दयानन्द सरस्व
जी का पत्र जो आफताब पजाब में छपा है, उसमें साफ लिखा है कि १७ नवम्ब
सन् १८८० ई० तक देहरादून और उसके बाद आगरे में स्वामी जी का कयाम
लिखा हुआ है तो कैसे रूपोशी का गुमान हो सकता है, और इस शहर में यह
भी हर एक को मालूम है कि यहाँ के मेम्बरान आर्य्यसमाज से पूछने पर
ठीक २ पता उनको बता दिया था, किंतु एक नोटिस भी छपवा कर स्वामी जी के
पते सहित ठाकुरदास के पास भेजा और स्थान २ पर लगवा दिया था लेकिन

ठाकुरदास ने जो नोटिस यहा से रवाना किया तो देहरादून भेजा न आगरे वरु अम्बाले में भेजा, इससे टुक (जरा) शर्माना चाहिए था, न कि और भी अखबारों में धूल उड़ाना, और फिर लिखा है कि २० जनवरी से २४ जनवरी सन् १८८१ ई० तक इसी फैसले के लिये तारीख मुकर्रिर थी और इश्तहार जारी हुआ, इस फिकरे में ये खुलमखुला सुनाते हैं कि हम भी पाँचों सवारों में हैं, कोई पूछे कि यह इश्तहार कौन सा है जो समारोह अम्बाला २० जनवरी से लगायत २४ जनवरी सन् १८८१ ई० के विषय में छपा था कहो क्या वही इश्तहार नहा है ? जो सुनहरी अक्षरों में देहली के किसी यत्रालय से छप कर रथयात्रा के मेले सम्बन्धी अम्बाले के बहुधा स्थानों पर भेजा गया था, क्या यह वही तारीखें थीं जो दिगाम्बराम्नाय के जैनियों की रथयात्रा की नियत हुई थी, और क्या यह वही मेला है कि जिसमे आत्माराम जी आदि ने आदिसे अन्त पर्यंत जाने से मुख मोडाथा, और क्या यह वही इश्तहार तो नहीं कि ठाकुरदास उसको अपना गुप्त भेद प्रकट होने के भय से (कि यथार्थ मे तो यह रथयात्रा के मेले की चिट्ठी थी और ठाकुरदास उसी को स्वामी दयानद सरस्वती की रूपोशी का और अपने शास्त्रार्थ के विज्ञापन का पत्र बतलाते थे) किसी को दिखावे नहीं थे और अत को जब गुजरानवाला मे इस गुप्त भेद का भाँडा फूटा तो उनके पूज्य साहब आत्माराम की लोगों में अधिक हसी हुई, आश्चर्य है कि पूज्य साहब और उनके सेवक जन इन बातों से कुछ भी लज्जित नहीं होते।

पूज्य साहब यदि किसी कारण से स्वामी जी के सन्मुख होकर प्रश्नोत्तर करना स्वीकार नहीं कर सकते थे तो चुप ही हो जाते ऐसी २ वार्ता समाचार पत्रा में मुद्रित कराकर व्यर्थ अपनी और अपने सेवक की बदनामी करा रहे हैं, यथार्थ मे जब कि वे जैन धर्म के एक विख्यात विद्वान् हैं तो यह करना उचित नहीं है जिसमे बदनामी हो सन्मुख होकर वार्तालाप करने मे बड़ा लाभ है, दूर दूर से बखेड़ा करने मे वह अपना और अपने सेवक का क्या सुधार समझते हैं, हम कुछ स्वामी जी के तरफदार अथवा पूज्य साहब के प्रतिपक्षी नहीं हैं, हमको केवल व्यर्थ बखेडा देखकर खेद होता है, पूज्य साहब यदि किसी विशेष कारण से स्वामी जी के सन्मुख होकर बातचीत नहीं कर सकते अथवा सन्मुख होने से

कोई और कारण है, जो जैनी लोग और उनके बड़े बड़े पंडित कहां नहीं हैं, मेरठ, सहारनपुर, आगरादि जहां स्वामी जी इन दिनों विराजमान रहे हैं, सब जगह जैनी लोग और उनके अच्छे २ पंडित मौजूद हैं, पूज्य साहब यदि चाहें तो उनको पत्र द्वारा सूचित कर सकते हैं कि वह अपने किसी उत्तम पण्डित द्वारा बातचीत करके हर एक विषय को भले प्रकार सिद्ध कर लें जिसमें सब विषयों का यथार्थ और शीघ्र निर्णय होजाय, और युगल पक्ष का व्यर्थ समय नष्ट न हो।

अखबार आम व मित्रविलास में जो कभी २ सर्वथा मिथ्या और कटुक शब्द युक्त पद उनके ओर से कुछ समय से छपते हैं यह मानो उनको और उनके धर्म को बदनाम करते जाते हैं इसमें कुछ शक नहीं कि उनकी अथवा उनके सेवक की ऐसी व्यर्थ बातों से सम्पूर्ण जैनी मात्र बदनाम होते हैं, इत्यादि।

(एक गुजरानवाला)

लो और सुनो,

लाला ठाकुरदास साहब जैनी ने तारीख ९ फरवरी सन् १८८१ ई० के छपे एक इश्तहार द्वारा मुकाम गुजरानवाला बाके मुल्क पंजाब से अपना मन्शा नालिश तौहीन मजहब जैन के हस्ब मनशाय दफा २९५ ताजीरात हिन्द श्री स्वा० दयानन्द सरस्वती के नाम पर जाहिर किया है, और पूछा कि सब आर्यसमाज सत्यार्थप्रकाश के लेख को सत्य मानते हैं या नहीं? अगर मानते हों तो वह भी इस इल्जाम में शरीक हैं, जो पूर्वोक्त लेख से सिद्ध होता है, इस इश्तहार के लेख द्वारा ऐसा मालूम होता है कि यह सब आर्यसमाजों में भेजा गया, और इसके द्वारा सम्पूर्ण आर्य पुरुषों को भय उत्पन्न करने का विचार ठाकुरदास का है, इसलिए अति आवश्यक हुआ कि इसका यथार्थ वृत्तान्त प्रकाशित करूं और यहां की समाज से पूर्वोक्त नोटिस का ठीक उत्तर दूं।

प्रकट हो कि जब स्वामी जी महाराज गतवर्ष यहाँ थे तभी ठाकुरदास ने यह पूछा था कि सत्यार्थप्रकाश में जो जैनी मत की बात लिखी है वह किस पुस्तक में से लेकर लिखी है, और जैनी व बौद्ध का एक होना कहाँ से साबित, इसके उत्तर भेजे गए, और लिखा कि कोई वक्त नियत करके बातों कर लो उसका

आखिरी जवाब यह दिया कि हम नालिश करेंगे, खैर यह उनकी मरजी, हमारे समाज से यह जवाब मिला कि हम सब लोग स्वामीजी के हर तरह से साथी हैं उनके कहे की पुष्टि भी अपनी शक्ति के अनुसार करेंगे।

सत्यार्थप्रकाश के पृष्ठ ३९६ से पृष्ठ ४०७ तक जो देखेगा, साफ लाला साहिब की भूल जान लेगा। इससे प्रकट है कि उन्होंने उस को बुद्धिमानी के सूर्य्य के सामने तो नहीं परन्तु मतपक्ष के अंधेरे में पड़ कर देखा कसूर मुआफ लाला साहिब सत्यार्थ प्रकाश के समझने के अलावा कानून भी खूब समझ सकते हैं, देखिये जिस में बहुत सजा इस विषय में लिखी है उसी को ढूंढ लिया, नहीं मालूम कि लाला साहिब ने हम लोगों को दोषी ठहराने से अपना क्या मनोर्थ सिद्ध समझा वे क्या यह नहीं जानते कि अगर कोई किसी को सजा समझे, और इससे उसकी झूठी तहरीर पर (कि जिससे किसी को खिलाफ कानून कुछ रंज पहुँचा हो) सजा खयाल करे तो वह दोषी नहीं होसकता, हा शायद इंग्लिश ला अर्थात् सरकारी कानून का कोई पुराना मशलाहो जिससे हम पर भी कानून का असर पहुंचे। या कोई जैन मत की राजनीति, आश्चर्य्य की बात को नालिश किया चाहते हैं, तिसपर भी स्वामीजी की तौहीन करते, हा शायद वह अपने को कानूनी असर से बाहर समझते हों, । खैर वह जानें और उनका काम जाने, हम अपनी सभा के नियमानुसार चिताते हैं देखिये हमको दोषी ठहराने में किसकी खता है, अगर स्वामी जी की तहरीर गलत समझते होते तो क्या उस पर ऊल जलूल लिखना भले आदमियों का काम था ? खैर जो जैनमत बौद्धमत की शाखा केवल ठाकुरदास के कहने से न सही, हमने तो राजा शिवप्रसाद साहब सी० एस० आई० के इतिहास तिमिरनाशक तृतीय खण्ड पृष्ठ ८ के लेख को जो खुद जैनमत के हैं, और चन्द दलीलों से मानलिया है, जो झूठ हो, तो कोई खंडन लिखे, अगर ठीक होगा तो कोई न कह सकेगा, अगर कोई डराकर झूठ बुलवाना चाहे तो यह जीते जी होना नहीं, क्योंकि सच बोलना हमारा प्रथम धर्म है * और यों तो हम खुद अपनी नाकसारी का इकरार इस "शेर" के मुआफिक करते हैं,

* आगे चल कर मुन्शी इन्द्रमणि जी के मुकाबले में आपकी सब सचाइट मालूम हो जायगी।

जुबा खोलेंगे क्या हम पर गुर्दई बद शाअरी मे ।
कि हमने ताक भरदी उनके मुह मे खाकसारी से ॥

माराश वे मतलब शेखी लाला साहब की तरह मारना हम से नहीं हो सकता जिसको जो अच्छा लगे करे । हम तो अपने देश वालो को झूठे के झूठे दोष से जानकार करते हैं, अगर अब भी न मानें तो पश्चाताप करेंगे ।

द० आनन्दीलाल, मन्त्री आर्यसमाज मेरठ ।

जब स्वामी जी ने देखा कि काशी के पण्डित लोग सदैव काल हमारे कार्यों में विघ्न डालने की चेष्टा करते रहते हैं और इसकी रोक का कोई उत्तम प्रबन्ध नहीं हो सकता, इस लिए अपना वैदिक प्रेस (छापाखाना) १ ली अप्रेल सन १८८१ ई० व मिती चैत्र शुक्ला ३ सम्वत् १९३८ से काशी से उठाकर इलाहाबाद मे स्थापित किया, और उसी स्थान मे वैशाख सम्वत् १९३८ मे यजुर्वेदभाष्य अंक २४ । २५ प्रकाशित हुआ जिसके टाइटिल पेज पर निम्न लिखित ये दो विज्ञापन छपे थे ।

॥ विज्ञापन पत्र पहिला ॥

सब सज्जनो को विदित होकि वैदिक यन्त्रालय बनारस से प्रयाग में १ ली अप्रेल सन १८८१ ई० से आगया हैं और यहा सब काम का प्रबन्ध जो कुछ बनारस में था होगया है ।

॥ विज्ञापन पत्र दूसरा ॥

सब सज्जनों को विदित होकि श्रीमान् स्वामी दयानन्दजी से राजा शिवप्रसादजी ने जो कुछ वाद उठाया था उस विषय के प्रथम निवेदन का उत्तर स्वामी जी ने भ्रमोच्छेदन नामक पुस्तक से दिया था कि जो सब सज्जनों को विदित है, अब जो राजाजी ने द्वितीय निवेदन दिया है उस पर श्रीमत् स्वामी विशुद्धानन्द जी व बालशास्त्री जी आदि विद्वानो की सम्मति नहीं है, और स्वामी जी ने प्रथम ही यह लिखा था कि अब आगे को जबतक किसी पत्र पर विशुद्धानन्द जी व बाल शास्त्री जी की सम्मति न होगी हम उत्तर न देंगे, इस लिये हम दूसरा निवेदन का

उत्तर एक पंडितजी ने अनुभ्रमोच्छेदन नामकपुस्तक में दिया है, और वैदिकयन्त्रालय में छपवाया है मैं शुद्धता से प्रकाशित करता हूं कि श्रीयुत राजा शिवप्रसाद जी आदि सज्जन महाशय पक्षपात छोड़कर इसको देखें और सत्यासत्य का विचार करें कि जिससे परस्पर प्रीति और देशोन्नति यथावत् हो, मू० प्रति पुस्तक —)

ज्येष्ठ सम्वत् १९३८ में स्वामी जी अजमेर में विराजे, वैदिक प्रेस प्रयाग से मुद्रित होकर ऋग्वेदभाष्य अंक ३६। ३७ प्रकाशित हुआ जिसके टाइटिल पेज पर एक विज्ञापन में सन्ध्या के पंचम पुस्तक "नामक" की बहुत प्रशंसा लिखी हुई है जो प्रथम तारीख जून को छप कर तैयार हो चुका था, और स्वामी जी ने मुन्शी जगतारसिंह को हटा कर शादीराम को नियत किया था परन्तु इस विज्ञापन में वैदिक प्रेस का मैनेजर दयाराम लिखा है मालूम नहीं शादीराम भी कब और क्यों निकाले गये? और यह हम प्रथम ही लिख चुके हैं कि दयानन्द दिग्विजय प्रथम भाग का सम्पूर्ण होना उसके रचियता ने ज्येष्ठ शुक्ला० ९ सं० १९३८ लिखा है।

अजमेर से चलकर स्वामी जी खान समूना राजधानी राव बहादुरसिंह जी में पधारे, उक्त राजसाहब ने यथायोग्य आदर सत्कार किया, श्रावण के अंत तक स्वामी जी इसी स्थान पर विराजे रहे, और राजा साहब पे स्वामी जी से विशेष प्रसन्न होने का कारण यह था कि इस स्थान पर ढूंढिये * लोगों का अधिक प्रचार था सो यह लोग व्याकरण विद्या से रहित बहुधा ज्ञानशून्य भी होते हैं जो अपने गुरुत्व के घमण्ड में विद्वानों की निन्दा करने पर कटिबद्ध हो जाते हैं, स्वामी दयानन्द सरस्वती का आगमन सुन उनकी व्यर्थ निन्दा अपने स्थान पर बैठ कर निज विश्वासी मनुष्यों के सन्मुख करने लगे, यह नहीं विचारा कि स्व० दयानन्द सरस्वती संस्कृत विद्या का अच्छा जानकार है हम जैसे भाषा रसिक अल्पाभ्यासी उसकी निन्दा कर अपना ही कुछ खोवेंगे, इनकी निन्दा करने का यह फल हुआ

* सम्वेगी साधु आत्माराम को इन लोगों से बड़ा द्वेष है, वे अपनी बनाई पुस्तकों में लिखते हैं कि ढूंढिये लोग विद्याहीन व्याकरण ज्ञान शून्य अष्टाध्यायी सूत्र से गुण मुख दंतिका होने वाले जैन धर्म से पृथक् हैं, और इनमें मनीना चालचलन व्यवहारको देखकर अन्य धर्मावलम्बी जैन धर्म की निन्दा करते हैं।

कि स्वामी दयानन्द सरस्वती उनसे शास्त्रार्थ करने को खड़े हो गये, अनेक बार उनके शिष्य श्रावकों द्वारा दूदियों को बुलाया परन्तु विद्याहीनों की मजाल है जो दयानन्द सरस्वती के सन्मुख आवें, ढूँढिए लोग तो जान बचा कर छिप गए और उनके अनेक श्रावक चेले स्वामी दयानन्द सरस्वती के विश्वासी हो गए, जिससे सत्य सनातन जैनधर्म की (जिसमें अब भी अनेक विद्वान् सूर्य्य समान विद्यमान हैं) व्यर्थ निन्दा हुई ।

स्वामी जी के मसूदा में रहते रहते ही वैदिक यन्त्रालय प्रयाग से मुद्रित होकर यजुर्वेदभाष्य अंक २६ । २७ और ऋग्वेदभाष्य अंक २८ । २९ प्रकाशित हो गए और इसी अवसर पर स्वामी जी के शिष्य गोपाल शास्त्री फर्रुखाबाद निवासी ने "दयानंद दिग्विजय" का दूसरा भाग प्रारम्भ किया जैसा कि निम्न लिखित श्लोक से विदित है ।

८ ३ ६ १
वसुरामाङ्क भू वर्षेश्रावणस्य सिते दले ।
नवम्यां गुरु वारेच ग्रन्थारम्भः कृतो मया ॥ १ ॥

और फिर स्वामी जी आगे को चले और मार्ग में स्थान रायपुर इलाके राज जोधपुर में कुछ दिन विराजे परन्तु इस समयका कोई विशेष समाचार हमको नहीं मिला केवल यजुर्वेदभाष्य अंक २८ । २९ (जो भाद्रपद शुक्ला ५ को छपा) तथा ऋग्वेदभाष्य अंक ३० । ३१ (जो आश्विन शुक्ला० ५ को छपा) के टाइटिल पेज पर यह लिखा है कि स्वामी जी रायपुर इलाके जोधपुर (त्रिप्लावर से रेल का दूसरा स्टेशन) के माघो बाग में विराजमान हैं ।

इस सम्वत् १९३८ के भाद्रपद मास में स्वामीजी रचित संस्कृत पठन पाठन सम्बन्धी "कारकीय" १ "सामासिकं" १ यह दो पुस्तक वैदिक यंत्रालय में छप कर निकली तत्पश्चात् स्वामी जी स्थान बनेरा इलाके भीलवाड़े में पधारे, जिसकी साक्षी के लिए यजुर्वेदभाष्य अंक ३० । ३१ का टाइटिल पेज है जिस पर लिखा है कार्तिक शुक्ला ५ सम्वत् १९३८ को वहां विराजमान थे फिर प्रसिद्ध नगर चित्तौड़ इलाके राज उदयपुर में पधारे, ऋग्वेदभाष्य अंक ३२ । ३३ के टाइटिल पेज पर लिखा है कि मार्गशिर्ष शुक्ला० ५ तक चित्तौड़गढ़ इलाके राज उदयपुर स्थान रुही

के महादेव के मंदिर में थे। इसी मार्गशीर्ष में संस्कृत पठन पाठन की "पद्धति" नामक पुस्तक स्वामी जी की रची वैदिक यन्त्रालय में छपकर प्रकाशित हुई, और फिर स्वामी जी इदौर खंडवा होते हुए बम्बई में पधारे, इनके आने की खबर पहिले ही से मिल चुकी थी इस लिये अनेक प्रतिष्ठित मनुष्यों सहित कर्नल अलकाट साहब ने रेल के स्टेशन पर अगवानी की। और बड़ी शोभा सुश्रूषा के साथ इनका नगर में प्रवेश कराया और प्रसिद्ध बालकेश्वर गोशाला में डेरा जमाया, और स्वामी जी का वहाँ कुछ दिन ठहरना हुआ था कि गुजरानवाला निवासी ठाकुरदास को यह समाचार मिल गए और उसने मन में विचारा कि इस समय स्वामी दयानन्द सरस्वती ऐसे स्थान पर हैं जहां आत्माराम जी के अनेक धनाढ्य ओसवाल चेले रहते हैं उनकी सहायता से मेरे अनेक कार्य सिद्ध होंगे समय को अनुकूल समझ शीघ्र लाहौर नगर से एक चिट्ठी निज रजिष्ट्री करा स्वामी दयानन्द सरस्वती के पास पठाई जिसका खुलासा यह था कि बनारस, अहमदाबाद, बम्बई इन तीनों स्थानों में से जहां आप ठीक समझें वह स्थान स्वीकार करें हम शास्त्रार्थ करने को तैयार हैं, इस चिट्ठी का उत्तर शीघ्र देना पहिले जैसी भूल न करना इत्यादि०।

ता० १०—१—८० ई० *

इस चिट्ठी का यद्यपि स्वामी जी ने कुछ उत्तर तो नहीं दिया परन्तु यह खयाल अवश्य हो गया कि इस गुजरात प्रान्त के ओसवाल श्वेताम्बरी लोग बड़े धनवान और गुरुभक्ति वाले भी हैं, और विशेष करके अहमदाबाद में तो इनकी पूरी पूरी प्रबलता है, जहाँ हमारे विश्वासियों में से कोई नहीं है और होने अवश्य चाहियें, सो इसी धुनि में निमग्न हो मुम्बईमें जो सात महीने तक डेरा जमायाथा उसके मध्य ही में नौसारी सूरत, बड़ोदा आदिक कई स्थानों में घूम कर अहमदाबाद पधारे तो यहां मुम्बई सरकारी संस्कृत पाठशाला के अध्यापक पंडित भोलानाथ जी शास्त्री से शास्त्रार्थ कर पराजय पाई और शीघ्रतापूर्वक मुम्बई को लौट गये स्वामी दयानन्द सरस्वती के शिष्य गोपाल शास्त्री, फर्रुखाबाद निवासी कृत "दयानन्द दिग्विजय" का दूसरा भाग फाल्गुण शुक्ला १०-चन्द्रवार तारीख २७ जनवरी सन् १८८० ई०

* यह चिट्ठी अखबार आफताब पञ्जाब लाहौर में भी छप चुकी है।

को पूरा हुआ, जैसा कि निम्न लिखित श्लोक से विदित होता है ॥

८ ३ ६ १
वसु रामाङ्क चन्द्रेब्दे तपस्यस्य सिते दले ।
दशम्यां चन्द्र वारेच ग्रन्थोयं पूर्णतां गतः ॥ १ ॥

दयानन्द दिग्विजय पुस्तक में "थियोसाफिकल,,के विषय में यह लिखा है कि-यह एक नवीन मत देश मे आठ वर्ष स प्रचलित हुआ है, इसका जन्म दाता कर्नल अल्काट और उसके साथ एक रूमी स्त्री है सन् १८७८ ई० में मुल्क अमेरिका से यह हिन्दुस्तान मे आये थे। शहर न्यूयार्क के रहने वाले हैं बहुधा मनुष्य इनको अलौकिक प्राणी समझते हैं, अमेरिका से इन्होंने दयानन्द को लिखा था कि हमारी "थियोसोफिट" आपके आर्य्य समाज की शाखा हुई और हम हिन्दुस्तान में आपके शिष्य होने को और संस्कृत सीखने को आते हैं हिन्दुस्तान में आनकर बदल गये और किसी धर्म को भी नहीं मानते हैं, प्रथम लिखा था कि सुसायटी के सभासदों से जो फीस वसूल होगी समाज में देंगे परन्तु नहींदी, किन्तु सातसौ ७००) रुपये हरिश्चन्द्र चिंतामणि के दिये हुये भी गबप गये। मेरठ समाज के सभासदो ने भोजन वस्त्रादिक के अतिरिक्त सैकडों रुपये आदर सत्कार मे व्यय किये थे उनको भी एक किताब देकर ३०) रुपये माग लिये। स्वामी दयानन्द जी के उपकारों को न मान कर उलटा कहते हैं कि हमने दयानन्द के अनेक उपकार किये हैं, प्रथम तो दयानन्द के सन्मुख ईश्वर का होना स्वीकार किया फिर अर्थात् जब सन् १८८० ई० में जब दोनों पुरुष स्त्री मेरठ पधारेतो दोनोने मिलकर ईश्वर के मानने से मना करदी जब वे अमेरिका से हिन्दोस्तान को चल तो अपनी एक पत्र "इडिगनसेक्टर' पत्र तारीख १४ जोलाई सन १८७८ ई० में छपवाया था कि न हम बुद्धिष्टम और न हम कृश्चियन और न हम ब्राह्मण या पुराणों को मानते हैं किन्तु हम शुद्ध आर्यसमाजी हैं अब सन् १८८० ई० मे साफ लिखते हैं कि प्रथम हम बुद्धिष्टम् थे और आर्य समाजकी शाखा हमारी सुसायटी नहीं है, प्रथम जब बम्बई मे "थियोसाफिट" सुसायटी स्थापित की तो दयानन्द का भी नाम लिख लिया था। मेरठ मे यह प्रण किया था कि हम अपनी सुसायटी में आर्य समाजियों को नहीं भरेंगे परन्तु उसके प्रतिकूल उन्होने बहुधा मनुष्यो को बहका

कर दयानन्द से प्रतिकूल कर दिया तब दयानन्द ने मेरठ आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव पर साफ कह दिया था कि इनका कुछ भरोसा नहीं करना चाहिये। अतिरिक्त इसके जब दयानन्द जी दूसरी बार बम्बई पधारे अल्काट साहिब ने रेलवेस्टेशन पर अगवानी की तो तबही से दयानन्द जी ने इनसे यह प्रश्न उठाया कि हमारा तुम्हारा ईश्वर विषय में एक मत हो जाना ठीक है, पानाचन्द आनन्द जी द्वारा कहा सुनी होकर फैसले के लिये १७ मार्च सन १८८२ ई० का दिन नियत हुआ, परन्तु अल्काट साहिब ने यह बहाना किया कि मेरी मेम तुम से बात कर लेगी मैं नहीं आ सकता परन्तु मेम भी नहीं आई तब आर्यसमाज बम्बई की तर्फ से सर्व साधारण में यह छपा हुआ विज्ञापन वितरण किया गया कि 'कर्नल' स्वामी जी 'थियोसाफिकल" के प्रतिकूल व्याख्यान देंगे। इस पर भी मेम साहिबा नहीं आईं; और स्वामीजी ने अपने व्याख्यान में उनकी प्रथम की आई हुई चिट्ठी पढ़कर भली भांति पूर्वापर विरोध दिखा दिया और दयानन्द ने यह भी कहा कि कर्नल अल्काट मुझसे इस लिए प्रतिकूल हुआ कि मैंने उसको भूत प्रेत के मानने को रोका था, और कहा था कि ऐसा करना उचित नहीं अखबार विलायत भी जाता है देश की बदनामी है परन्तु अल्काट ने नहीं माना क्योंकि यह स्वार्थी मनुष्य है, इस का विश्वास करना उचित नहीं और यह योग विद्या भी बिल्कुल नहीं जानता इसकी सुसाइटी का मतलब बौद्ध मत के फैलाने का है।

किताब "पण्डित दयानन्द और उनका नया पथ" पृष्ठ ३२ पर उसके रचियता लिखते हैं कि जब कर्नल अल्काट हिंदुस्तान में आये थे तो प० दयानन्द से उनकी अत्यन्त गाढ़ी प्रीति हो गई थी और पण्डित साहब उनके स्वत अध्यापक और सभासद् बन बैठे थे, परन्तु अन्त को यह गुप्त भेद प्रकट हो गया और सरकार को "थियोसाफिकल" सोसाइटी प्रचारकों की तरफ से अनेक प्रकार की अविश्वासना व राज विद्रोहता का शक हुआ तो झट स्वामी जी ने भी यह बहाना निकाल कर कि यह ईश्वर को नहीं मानते, पृथकता स्वीकार कर ली और बुरे शब्दों से उनको कोसने लगे। और कहने लगे कि हम कभी भी उस सोसाइटी के सभासद् नहीं हुये। परन्तु इन्कार करने से क्या होता है। उन्होंने अपने रिसाले "थियोसाफिस्ट" में इसके प्रमाणार्थ कि दयानन्द जी उस सोसाइटी के सभासद् बने

थे। वह मेम्बरी का कागज छाप दिया कि जिस पर वह अपने हाथ से हस्ताक्षर कर सभासद् बने थे, और अन्यान्य भी अनेक प्रमाण प्रकाशित किये। जिनसे भली प्रकार सिद्ध हो गया कि दयानंद जी उस सोसाइटी के सभासद् थे। और उनके सत्य का भी भले प्रकार प्रकाश हुआ।

इसी सम्वत् १९३८ में पेशावरादि एक दो स्थानों पर नवीन आर्यसमाज स्थापित हुई और वैदिक यन्त्रालय प्रयाग से मुद्रित होकर पौष शुक्ला ५ को अंक ३२। ३३ यजुर्वेदभाष्य और माघ शुक्ला १५ को ऋग्वेदभाष्य अंक ३४। ३५ प्रकाशित हुये जिनके टाइटिल पेजपर समुह योग्य कोई विज्ञापन नहीं था।

जब कर्नल अल्कौट से स्वामी जी का सम्बन्ध टूटा तो उनको यह ख्याल पैदा हुआ कि अब कर्नल साहिब मेरे प्रतिकूल मनुष्यों को द्वेषी बनावेंगे और इस बम्बई में श्वेताम्बर जैनियों की अधिकता है तो उनके गुजरातवाला निवासी ठाकुर दास ने मेरे प्रतिकूल कर दिया परन्तु जैनी लोगों में जीव दया ही परम धर्म है, इस लिए इसका कोई ऐसा उपाय करू जिससे उनकी प्रतिकूलता व्यर्थ हो यह विचार निज रचित "गोकरुणा निधि" को प्रकट रूप से व्याख्यानों में सर्व साधारण को सुनाने लगे जिसका प्रथम संक्षेप यह है।

कदाचित कोई कहे कि पशु को स्वयं मार कर खाने में दोष होगा बाजार से लेकर खाने में नहीं यह भी समझ ठीक नहीं, मनुजी ने आठ प्रकार के हिंसक लिखे हैं जैसे।

अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रय विक्रयी।
संस्कर्त्ताचे पिहर्त्ताच खादकश्चेतिघातका ॥ १ ॥

(अर्थ) अनुमति (मारने की सलाह) देने मांस के काटने पशु आदि के मारने, उनको मारने के लिये लेने और बेचने, मांस के पकाने और परसने और खाने वाले ८ मनुष्य घातक हिंसक अर्थात् ये सब पाप कारी हैं, और भैरव आदि के निमित्त से भी मांस खाना मारना वा मरवाना महा पाप कर्म है, इसी लिए दयालु परमेश्वर ने वेदों में मांस खाने वा पशु आदि के मारने की विधि नहीं लिखी, मद्य भी मांस खाने का ही कारण है, इस लिये यहां संक्षेप से थोड़ासा लिखा है।

मांसाहारी और मद्यपी मनुष्य विद्यादि शुभ गुणों से रहित होकर उन दोषों में फसकर अपने धर्म्म अर्थ काम और मोक्ष फलों को छोड़ पशुवत आहार निद्रा भय मैथुन आदिक में प्रवृत होकर अपने मनुष्य जन्म को व्यर्थ कर देते हैं, इसलिए कोई भी मादक पदार्थ सेवन न करना चाहिए।

इतना लिख स्वामी जी ने गोरक्षणी सभा की नियमावली † को बतलाया और उसके प्रचार पर दृढ़ कटिबद्ध होकर निम्न लिखित दो छपे हुए पत्र सर्व साधारण में प्रचलित कराए।

ॐ ओ३म ॐ

सही करने का पत्र।



ऐसा कौन मनुष्य जगत में है जो सुख के लाभ होने में प्रसन्न और दुःख को प्राप्त होने में अप्रसन्न न होता हो। जैसे दूसरे के किए अपने उपकार में स्वयं आनन्दित होता है वैसे ही परोपकार करने में सुखी अवश्य होना चाहिए क्या ऐसा कोई भी विद्वान् भूगोल में था, है, और होगा जो परोपकार रूप अधर्म्म के सिवाय धर्म्म वा अधर्म्म की सिद्धि कर सके। धन्य वे महाशय जन हैं, जो अपने तन मन और धन से संसार का अधिक उपकार सिद्ध करते हैं। निन्दनीय मनुष्य वे हैं जो अपनी अज्ञानता से स्वार्थ वश होकर अपने तन मन और धन से जगत् में हानि करके बड़े लाभ का नाश करते हैं। सृष्टि क्रम से ठीक ठीक यह निश्चय होता है, कि परमेश्वर ने जो २ वस्तु बनायी हैं, वह वह पूर्ण उपकार लेने के लिए हैं, अल्प लाभ से महा हानि करने के अर्थ नहीं विश्व में देही जीवन का मूल है, एक अन्न और दूसरा पान इसी अभिप्राय से आर्य्य शिरोमणि राजे महाराजे और प्रजाजन महोपकारक गाय आदि पशुओं को न आप मारते न किसी को मारने देते थे। अब भी इन गाय बैल और महषि को मारने और मरवाने देना नहीं चाहते। क्योंकि अन्न और पान की बहुताई इन्हीं से होती है और इससे सबका जीवन सुख से व्यतीत हो सकता है जितना राजा और प्रजा का बड़ा नुकसान इन के मारने और मरवाने से होता है उतना अन्य किसी कर्म

† गोरक्षणी सभा की नियमावली पुस्तक बढ़ जाने के भय से यहाँ नहीं लिखी।

से नहीं । इस का निर्णय 'गोकरुणा निधि' पुस्तक में अच्छे प्रकार कर दिया है अर्थात् एक गाय के मारने और मरवाने से ४२०००० चार लाख बीस हजार मनुष्यों के सुख की हानि होती है, इसलिये हम सब लोग स्व प्रजा की हितैषिणी श्रीमती राजराजेश्वरी किन विक्टोरिया की न्याय प्रणाली में जो यह अन्याय रूप बड़े बड़े उपकारक गाय आदि पशुओं की हत्या होती है, इस को इन के राज्य में से प्रार्थना से छुड़वा के अति प्रसन्न होना चाहते हैं, यह हमको पूरा निश्चय है कि विद्या धर्म्म प्रजाहित प्रिय श्रीमती राजराजेश्वरी किन् विक्टोरिया पार्लियामेंट सभा और सर्वोपरि प्रधान, आर्य्यावर्तस्थ श्रीमान् गवर्नर जनर्ल साहिब बहादुर सम्प्रति इस बड़ी हानि कारक गाय बैल तथा भैंस की हत्या को उत्साह और प्रसन्नता पूर्वक शीघ्र बन्द करके हम सबको परम आनन्दित करें । देखिये कि उक्त गाय आदि पशुओं को मारने और मरवाने से दुग्ध घी और कृषकों की कितनी हानि होकर राजा और प्रजा की बड़ी हानि हो गई और नित्य प्रति अधिक २ होती जाती है । पक्षपात छोड़ के जो कोई देखता है तो वह परोपकार ही को धर्म्म और परहानि ही को अधर्म्म निश्चित जानता है । क्या विद्या का यह फल और सिद्धान्त नहीं है कि जिस २ से अधिक उपकार हो उस का पालन वर्द्धन करना और नाश कभी न करना ।

परम दयालु न्याय कारी सर्वान्तर्यामी सर्व शक्तिमान् परमात्मा इस संसार जगदुपकारक काम करने में एक मति करे ।

॥ विज्ञापन पत्र मिदम् ॥

सर्व आर्य पुरुषों को विदित किया जाता है कि जिस पत्र के ऊपर (ओ३म्) और नीचे (हस्ताक्षर) एसा चिन्ह लिखा है वह सही करने का पत्र है उस पर सही इस प्रकार करनी होगी कि जिस के स्वराज या मेल में ब्राह्मणादिक मनुष्यों की जितनी संख्या हो उतनी संख्या लिख के अर्थात् इतने १०० सौ १००० हजार १००००० लाख वा १०००००० करोड मनुष्यों की ओर से सर्व साधारण आर्य्य पुरुषों की सही आजायगी परन्तु जितने मनुष्यों की ओर से एक मुख्य पुरुष सही करे वह उन से सही लेकर अपने पास जरूर रखले और

जो मुसलमान वा ईसाई लोग इस महोपकारक विषय में सहमत हो उन के भी नाम सरना लिखे हमको दृढ निश्चय है कि आप परमोदार महात्माओं के पुरुषार्थ उत्साह और प्रीति से यह सर्वोपकारक महा पुण्य कीर्ति प्रदायक कार्य्य यथावत् सिद्ध होजायगा। अलमति विस्तरेण विद्वद्वर शिरोमणिषु।

(दयानन्द सरस्वती)

(ग)

पूर्वोक्त दोनो पत्र मार्च सन् १८८० ई० के अन्त तक देशान्तर में वितरण हो चुके थे और चैत्र शुक्ला १० सम्वत् १९३९ तारीख २९ मार्च सन १८८० ई० को ऋग्वेदभाष्य अंक ३६। ३७ भी वैदिक यन्त्रालय प्रयाग में छप कर प्रकाशित हो चुका था, जिसके टाइटिल पेज पर निम्न लिखित विज्ञापन छपा था।

॥ विज्ञापन पत्र मिदम् ॥

सब सज्जन उदार आर्य लोगों को विदित किया जाता है कि जो फीरोजपुर में अनाथाश्रम कई एक वर्षों से आर्यसमाजों ने स्थापित किया है यह बड़ा प्रशंसित और धर्म का काम है, और इसमे बड़े सहाय की अपेक्षा है इस लिए आप सज्जन लोगों को उचित है कि इसका सहाय करना। क्योंकि इसके होने से आर्य लोग जिनका पालन करने वाला कोई न होवे वे ईसाई व मुसलमान अथवा अन्य मत में वेदोक्त सनातनधर्म से छूट कर मिल जाते थे उनकी रक्षा के लिये यह अनाथ पालनार्थ सभा नियत की है, जिस प्रकार अर्थात् धन के सहाय करने से इसका दीर्घायु होवे सो यत्न करना चाहिए। अलमति विस्तरेणौदार्य्यादि गुण युक्तिषु।

(हस्ताक्षर दयानन्द सरस्वती)

ठाकुरदास जी अपनी पुस्तक मे लिखते हैं कि जब स्वामी दयानन्द सरस्वती ने मेरे १० जनवरी सन् १८८० ई०, के नोटिस का कुछ उत्तर नहीं दिया तो मैंने १७ अप्रैल सन १८८० ई० को एक नोटिस अहमदाबाद के "अहमदाबाद समाचार" और "बड़ोदा वत्सल" नामक दो गुजराती अखबारों में छपाकर रजिष्ट्री करा डाक द्वारा दयानन्द के पास भेजा जिसका खुलासा इस

प्रकार है ।

पंजाब देश के गुजरानवाला निवासी ठाकुरदास की तरफ से दयानन्द सरस्वती को नोटिस दिया जाता है कि तुमने सात वर्ष हुए मुरादाबाद में 'सत्यार्थ प्रकाश" नामक पुस्तक छपाया जिसमें एक स्थान पर कुछ श्लोक लिख उनको जैनाचार्यों कृत बताया सो यह बतलाना अप्रमाणीक और झूठ है और इस विषय में आपको कई बार लिखा गया परन्तु संतोष कारक कोई भी उत्तर नहीं मिला अब इस नोटिस द्वारा सूचना दी जाती है कि आप एक महीने के मध्य यह लिख भेजो कि यह श्लोक आपने जैन के किस शास्त्र से लिये हैं, जो एक मास तक इसका भी उत्तर नहीं आवेगा तो मेरे मन को जो आपके मिथ्या लेख से दुःख हुआ है उसकी चिकित्सा सरकारी प्रचलित कानूनानुसार कराई जावेगी जिसमें मेरे सर्व प्रकार के व्यय का भार भी आपको ही उठाना पड़ेगा यह निश्चय समझ लेना इत्यादि २ ।

जब पूर्वोक्त नोटिस स्वामी जी की दृष्टि गोचर हुआ मन में विचारा कि इसका उत्तर देने से बम्बई के अनेक जीव दया रसिक जैनी लोग जो गोरक्षा सम्बन्धी व्याख्यानों से राजी हो गए हैं, पलट बैठेंगे, इस लिए कुछ उत्तर नहीं दिया और चुप होकर बैठ गए ।

वैशाख शुक्ला १२ सम्वत् १९३९ को वैदिक यंत्रालय प्रयाग से स्वामी जी कृत यजुर्वेदभाष्य अंक ३६ । ३७ छप कर निकला जिसके टाइटिल पेज पर कोई समुचित योग विज्ञापन नहीं था ।

जब स्वामी दयानन्द सरस्वती ने ठाकुरदास के दोनों नोटिसों का कुछ उत्तर नहीं दिया तो अहमदाबाद के "शमशेर बहादुर" * आदि अनेक समाचार पत्रों में लेख लिखे गए परन्तु किसी ने सत्य कहा है कि जिस ऊंट पर बृहदाकार नक्कारे बज चुके हैं, उसको डुगडुगी बजा कर कौन चेत करा सकता है, स्वामी जी ने इनके लेखों पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया और ज्येष्ठ शुक्ला १४ सम्वत् १९३९ तारीख ३१ मई सन् १८८२ ई० को जो ऋग्वेदभाष्य अंक ३८ । ३९ प्रयाग

* तारीख १२ मई सन् १८८२ ई० के शमशेर बहादुर का लेख दयानन्द मुख चपेटिका पुस्तक में पूरा छपा है ।

वैदिक यंत्रालय से छपकर निकला उसके टाइटिल पेज पर इस विषय में कुछ भी लेख न था केवल स्वामी जी ने निज लेखनी द्वारा "भारत सुदशा प्रवर्तक पर फर्रुखाबाद" की बड़ाई अनेकों शब्दों में लिख कर आर्यसमाजियों का ध्यान इसके ग्राहक होने की तरफ दिलाया था।

ठाकुरदास ने लिखा है कि जब मेरे लेखों का स्वामी जी ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया तो मैंने बंबई पहुँच कर एक पोस्टकार्ड डाक द्वारा स्वामी के नाम पर भेजा तब समाज वाले मुझको बुलाकर स्वामी जी के पास ले गए और मेरा स्वा० जी से कुछ समय तक वार्तालाप हुआ + फिर स्वामी जी ने कहा कि तुम्हारे पत्र का उत्तर हमने डाक द्वारा भेज दिया है सो यह देख लेना वह पत्र मुझको मिला जिसका खुलासा इस प्रकार है।

मेघजीभाई लालूदास मंत्री आर्यसमाज बम्बई ठाकुरदास को लिखता है, कि आपने जो पत्र ज्येष्ठ शुक्ला १५ के दिन स्वामी दयानंद सरस्वती के पास पठाया था उसके उत्तर में लिखा जाता है कि तुम अपने मत का ज्ञाता तथा धर्मोपदेशक विद्वान हो उसको नियमानुसार शास्त्रार्थ करने पर उपस्थित करो स्वामीजी शास्त्रार्थ कर सत्यासत्य का निर्णय करने को तैयार हैं और इस कार्य में शीघ्रता कर उत्तर लिखो क्योंकि स्वामी जी थोड़े दिनों में चले जाने वाले हैं, और जो शास्त्रार्थ होने का आप कुछ प्रबन्ध न करसकें तो मैं खेद के साथ लिखता हूँ कि जो मनुष्य स्वामीजी के पास कुछ पूछने को आता है उसके उत्तर को स्वामीजी सायंकाल ५बजे से ९ बजे तक प्रतिदिन मिलते हैं, जो आप आने का इरादा करें तो मुझको लिख भेजें ताकि मैं भी इस समय उपस्थित हो जाऊं इत्यादि तारीख ५-६-१८८२ ई०।

इस पर ठाकुरदास ने १३ जून सन् १८८२ ई० को मिस्टर स्मिथ ऐंड फियर हाई कोर्ट के बारिस्टर की मारफा एक अंग्रेजी नोटिस स्वामीजी को दिया उसका खुलासा इस प्रकार है।

+ स्वामी जी समझते थे ठाकुरदास कोई साक्षर प्राणी होगा परन्तु निकट गये पर जाना गया कि यह बेचारा पराधीन हुआ नाचे है, तब तो देख कर ऐसे और साफ कह दिया तुम्हारे कार्ड का उत्तर डाक द्वारा भेजा गया है, (और डाक द्वारा जो उत्तर भेजा वह भी सिंडर होकर लिखा था)।

हमारे मवक्किल ठाकुरदास पंजाबी गुजरानवाला निवासी ने जो इस समय बम्बई में है हमको यह जतलाया है कि तुमने उसको जान बूझ कर धर्मसम्बन्धी दुःख देने को "सत्यार्थप्रकाश" अपने बनाये पुस्तक के बारहवें समुल्लास पृष्ठ ४०२ । ४०३ में जैन धर्म से विरुद्ध किसी अन्य धर्म से लेकर कुछ श्लोक रख दिए और उनको जैन ग्रन्थों का बतलाया है, परन्तु वे श्लोक जैन के किसी भी ग्रंथ के नहीं हैं । यह तुम भी जानते हो, और हमको यह भी मालूम हुआ है कि हमारे मवक्किल ने तुमसे अनेक बार पत्र द्वारा यह कहा है कि इन झूठे श्लोकों को जैन का बतला कर हमारा दिल दुखाना उचित न था इसकी हमसे मुआफी माग कर उन श्लोकों को निज पुस्तक से निकाल डालो परंतु आपने कुछ ख्याल नहीं किया, सो अब हम अपने मवक्किल के कहने बमूजिब तुमको बतलाए देते हैं कि इस नोटिस के पहुँचने पर आठ दिन के मध्य पूर्वोक्त श्लोकों को "सत्यार्थ प्रकाश" से निकाल कर हमारे मवक्किल तथा अन्यान्य जैनियों से बम्बई से प्रकाशित होने वाले किसी पत्र द्वारा मुआफी मागो । और जब तक उक्त श्लोक उक्त पुस्तक से पृथक् न कर दो उसको किसी के हाथ मत बेचो, यदि इसके प्रतिकूल करोगे तो फिर तुमको जवाबदेही अदालत में करनी पडेगी यह निश्चय जान लेना।

इसके उत्तर में १९ जून सन् १८८२ ई० को मिस्टर पेनी ऐंड स्लिङ्हर्ट ने जो कुछ अंग्रेजी में लिखा उसका खुलासा इस प्रकार है, ।

मिस्टर स्मिथ ऐंड प्रियर लाला ठाकुरदास के अटरनी को विदित हो कि आपका १३ जून सन् १८८२ का लिखा नोटिस जो आपने स्वामी दयानन्द सरस्वती के पास भेजा था सो उनके द्वारा हमारे पास पहुँचा और उनके कथनानुसार आपको यह उत्तर लिखा जाता है, कि तुम जो कहते हो कि यह श्लोक जैन के कौन से ग्रन्थ के हैं सो हमारे मवक्किल स्वामी दयानन्द सरस्वती यह समझ रहे हैं कि जैनमत के किसी विद्वान् के रचित ही यह श्लोक हैं, और जैन धर्म्म की अनेक शाखा प्रतिशाखा हैं जिसमें से किसी के रचित यह श्लोक होंगे हमारे मवक्किल का यह अभिप्राय नहीं है कि किसी मनुष्य का उसके धर्म्म सम्बन्धी दिल दुखावें, किंतु सत्यार्थप्रकाश करने का ही तात्पर्य्य यह विशेष है, इस लिए तुम्हारा मवक्किल या कोई दूसरा जैनी हमारे मवक्किल को यह सिद्ध कर

देगा कि पूर्वोक्त श्लोक जैन धर्म से विरुद्ध हैं तो सत्यार्थ प्रकाश पुस्तक के छपाने वाले राजा जयकृष्णदास सी० एन० आई० मुरादाबाद निवासी दूसरी बार छपने के समय उन श्लोकों को पृथक् कर देवेंगे, इसमें हमारे मवक्किल को कुछ उजर नहीं है, और हमारा मवक्किल यह भी कहता है कि आपके मवक्किल को पुस्तक सत्यार्थप्रकाश के टाइटिल पेज और राजा जयकृष्णदास के दिए विज्ञापनों को देखना चाहिए, जिनके लेखों से स्पष्ट सिद्ध है कि उक्त पुस्तक सम्बन्धी छपाने बेचने शुद्धाशुद्ध आदि करने के सम्पूर्ण अधिकार उक्त राजा साहिब ही ने स्वत अपने किए हैं, इस लिए पुन छपवाना या न छपवाना सब उनके ही आधीन है, इत्यादि *

जब स्वामी जी ने देखा कि ठाकुरदास ने बम्बई के जैनी लोगों को हमसे उदास करने का यत्न किया है इस लिए अब यहां ठहरना ठीक नहीं है, और दिन भी यहां अधिक हो गए हैं, बस स्वामी जी इसी ध्यान में चलकर खडुवा में पधारे, और आसाढ शुक्ला १५ सम्वत् १९३९ के दिन खडुवे में थे ऐसा यजुर्वेद भाष्य अंक ३८। ३९ के टाइटिल पेज पर लिखा हुआ देखा गया है, मास जौलाई सन् १८८२ ई० के रिसाला थियोजाफिस्ट और उसके क्रोड पत्र में यह प्रकाशित हो गया कि दयानन्द हमसे जुदा हो गए हैं, खडुवा में कुछ दिन ठहर कर स्वामी जी राजधानी जावरा देश मालवे में पधारे, मार्ग में आपका आत्मानन्दजी से कुछ दिनों तक समागम व वचनालाप रहता रहा फिर खडुवे से चल कर अधिक श्रावण कृष्णा १३ सम्वत १९३९ तारीख ११ अगस्त सन् १८८२ ई० गुरुवार के दिन राजधानी उदयपुर में पधारे। देखो जो ऋग्वेदभाष्य अंक ४०। ४१ अधिक श्रावण कृष्णा ३ सम्वत् १९३९ को छपकर प्रकाशित हुआ उसके टाइटिल पर लिखा है, कि इस समय स्वामी जी जावरा देश मालवा में विराजमान हैं, इससे यह सिद्ध हुआ कि दो चार दिन मार्ग चलने में बिताकर स्वामी जी जावरे से सीधे उदयपुर चले आए और महाराणा जी के नौतरा बाग

* इस लिखने से स्वामी जी का यह अभिप्राय है कि हमारा सत्यार्थप्रकाश से कुछ सम्बन्ध नहीं है जो कुछ है राजा जयकृष्णदास का है सैर—दयानन्द मुख चपेटिका पुस्तक इसी लेखपर समाप्त हुई है।

राजमहल में डेरा किया और महाराजा साहिब श्री राणा सज्जनसिंह जी ने इनको संस्कृत का उत्तम विद्वान् समझकर बड़ा अच्छा आदर सत्कार किया और स्वामी जी के पास निज चाकरों का आना जाना भी प्रारम्भ किया जिससे स्वामी का उदयपुर में भले प्रकार प्रसिद्ध हो गए।

बम्बई से जो पत्र आपने हस्ताक्षर के लिए देशांतर में पठाये थे उनका उत्तर अनेक स्थानों से संतोष जनक आया जैसा कि निम्न लिखित पत्र के लेख से विदित होता है।

श्री सत्परम गुरुभ्यो नमो नम (नम्बर ३५)

भगवन आपकी सेवा में गोरक्षा होने के अर्थ इस पत्रके साथ एक प्रार्थना पत्र ७२ सहस्र मनुष्यों की ओर से अपने हस्ताक्षर करके परम विनय पूर्वक भेजता हूँ यदि दो मास का विलम्ब हो तो सूचित किया जाऊ एक लक्ष संख्या पूर्ति हो सकती है, और यह संख्या नगर फर्रुखाबाद और फतहगढ़से जुदी है, ऐसा जानियें क्योंकि उन दोनों नगरों की संख्या समाज में आवेगी। १३-८-८१ ई०

इस पत्र का उत्तर स्वामी दयानन्द की तर्फ से यह गया था।

(ओ३म) श्रीयुत पंडित गोपाल रावजी आनन्दित रहो।

विदित हो कि गोरक्षार्थ हस्ताक्षर पत्र के सहित आपका कुशल पत्र पहुँचा पत्रस्थ समाचार के अवलोकन करने से अत्यन्त हर्ष हुआ यह आपने सर्वोपकारक धन्यवादार्ह पुरुषार्थ किया परमात्मा दिन प्रति ऐसे ही कर्मों के सिद्ध करने में उत्साही करे आशा है कि आर्य्य भाषा के प्रचारार्थ भी आप स्वपुरुषार्थ को प्रकटी करेंगे। हम उदयपुर पहुँच कर नौलखा बाग के राज महलों में ठहरे हैं, एक बार श्रीयुत आर्य्य कुल दिवाकर श्री महाराणा साहिब पधारे परस्पर प्रेम प्रीति के साथ समागम हुआ जैसे उनका नाम है वैसे ही गुण भी देखे इत्यादि० द्वितीय श्रावण १० शनि सम्वत् १९३९ (दयानन्द सरस्वती)

उदयपुर के जैनियों में श्वेताम्बरानाय की अधिकता है और इस आम्नाय के नगर में अनेक मन्दिर भी उत्तम बने हुये हैं जिस समय स्वामी दयानन्द सरस्वती उदयपुर में पधारे जैन धर्मानुसार वह समय था जब कि (चौमासे में) मुनियों का गमनागमन बन्द होता है, इस अवसर पर उदयपुर गौटी जी के जैन मन्दिर

में श्रीमान् सम्वेगी साधु "झवेर सागर" (जवाहिर सागर) जी चतुर्मासकर विराजे थे, जब उनको यह समाचार मिला कि दयानन्द जैनियों को नास्तिक बतलाता है तो उक्त साधु जी एक मनुष्य को दयानन्द जी के पास भेजकर यह पूछा कि तुम जैनियों को किस ग्रन्थ के प्रमाण से नास्तिक कहते हो यदि कोई प्रमाण रखते हो तो लिख भेजो व विदित करो नहीं रखते हो तो यह तुमको अथवा कोई भी विद्वान को उचित नहीं कि बिना प्रमाण के किसी को अनुचित शब्द कहे, इस पर दयानन्द जी ने अपने दो नवीन शिष्य सहजानन्दादि सन्यासी श्रीमुनि झवेरसागर जी' के पास पठाये जिनसे अनेक प्रश्नोत्तर के पश्चात् निम्न लिखित दो प्रश्न स्वामी दयानन्द सरस्वती के चेलों ने (श्रीमान् मुनि 'झवेर सागर जी से) किए।

(१) जैन लोगों में यह बात कैसे मान्य रूप है कि सूक्ष्म निगोद। जीव राशि जो कि सुई के अग्रभाग से भी सूक्ष्म है और उसमें अनत जीवों का रहना होता है। सोचने का स्थान है कि आधार से अधिक आधेय उसमें कैसे रह सकता है ?

(२) यह भी अल्पज्ञता का चिन्ह है कि जैनी लोग कृत्रिम वस्तु का बहुत आदर करते हैं। यह सब कोई जानता है जो मूर्ति है सो कृत्रिम है। कृत्रिम पदार्थ में देवपना कैसे मान सकते हैं ? जो वस्तु अपने हाथोसे बनाई जाने वह फिर पूज्य कैसे हो जाय ? इन दोनो प्रश्नों का उत्तर उक्त महर्षि ने यह दिया कि—

(१) जैन मत में जो सूक्ष्म निगोद राशि सुई के अग्र भाग से भी सूक्ष्म और उसमें भी अनत जीवों का रहना कहा है सो युक्ति युक्त है, और आधार से आधेय अधिक कैसे रह सके यह शका भी यत्किंचित है। सोचो तो सही कि, चिंतामणि रत्न एक छोटी सी वस्तु है, परतु उससे जो मागो वही दे सकता है, यह आधेय इस अल्प आधार में कैसे समा सका ? इस लिए यह कहना व्यर्थ है कि आधार से अधिक आधेय उस आधार भूत वस्तु में नहीं रह सकता जीव अरूपी है उसका कोई रंग रूप नहीं जैसे चिंतामणि रत्न में याचक को अनत वस्तु देने की 'सत्ता' स्थित है, ऐसे ही सूक्ष्म निगोद राशि मे अनत जीव राशि सत्ता

रहते हुए ज्ञान गम्य है ॥ यत. उक्तच ॥

सूक्ष्मं जिनोजितं तत्त्वं हेतुभिर्नैव हन्यते ॥
आज्ञा सिद्धं तु तद्ग्राह्यं नान्यथा वादिनो जिनाः ॥१॥

(२) दूसरे कृत्रिम वस्तुका आदर नहीं करना चाहिए यह कहना भी युक्त नहीं क्योंकि जैसे मूर्ति कृत्रिम वस्तु है वैसे मुनि, सन्यासी वेष भी कृत्रिम है, उसको भी न मानना चाहिए । परमहंसपरिव्राजकाचार्य्य जो दयानन्द जी हैं वे प्रथम गृहस्थ भेष मे थे । अब परिव्राजक भेष रखतेहैं भेष को कृत्रिमता स्वत सिद्ध है ।और प्रत्यक्ष प्रमाण से सबको उपलब्ध है गृहस्थावस्था में दयानन्द जी परिव्राजक न होने से अपूज्य थे, और परिव्राजक भेष धारण करने से पूज्य बन गए, इससे सिद्ध हुआ कि कृत्रिम वस्तु का आदर तुम भी करते हो । यदि तुम्हारे स्वामी दयानन्द जी को कल दिन पुलिस मैन का काला भेष पहना कर और हाथ पर सारजटी का बिल्ला लगा कर दस पन्द्रह सिपाही उनके साथ कर दिए जाय तो सम्पूर्ण उदयपुर में वह हवलदार जमादार जैसा आदर सत्कार पावेंगे । और सन्यासी तो तभी समझे जायगे कि जब परिव्राजक भेष धारण कर तुमको साथ ले एक स्थान पर बैठेंगे । विचार करो कि पुलिस मैन के भेष मे और परिव्राजकाचार्य्य के भेष मे स्वामी जी तो वही थे तो फिर एक अवस्था मे पूज्य और एक मे अपूज्य किसने बनाया ? कहोगे भेष ने बनाया तो भेष कृत्रिम है और कृत्रिम वस्तुका आदर करना यह स्वामी दयानन्द जी की आज्ञा के विरुद्ध है इस लिए यह प्रश्न तुम्हारा तुमको ही बाधक हो गया । और इससे कृत्रिम वस्तु का आदर करना स्वत सिद्ध हो गया । मूर्ति मे पूजक का भाव साक्षात् ईश्वर पने का आरोपित है, इस लिये ये मूर्तिपूजक को साक्षात ईश्वर सेवा का फल देती हैं, यह उत्तर सुन कर स्वामी जी के दोनों चेले चुप होकर चले गये और कुछ दिनो पीछे श्री भंवेर सागर जी ने फिर दयानन्द जी के निकट एक मनुष्य भेज कर यह कहलाया कि आपने जो निज रचित "सत्यार्थप्रकाश" के द्वादश समुल्लास में जैनों के नाम से झूठे श्लोक लिखे हैं, सो या तो उनको निज पुस्तक से निकाल डालो । और जो उनको किसी जैन शास्त्र से सिद्ध करने की रखते हो तो हमसे सन्मुख होकर शास्त्रार्थ कर लो । यह समाचार सुन

कर स्वामी जी के छक्के छूट गये, मन मे विचारा ठाकुरदास तो पराया बहकाया अल्पज्ञ पने ही से भिड़ने को उद्यमी था यह मातर पुरुष शास्त्रार्थ को स्वत उद्यमी हुआ अब क्या करिये। बस इस बात के घमण्ड मे आन कर कि उदा के महाराणा साहब हमारे रागी है, "श्री झवेर सागर जी" के प्रश्न का कुछ भी उत्तर नहीं दिया, जब यह समाचार "श्री झवेर सागर जी" को विदित हुए तो उन्होने एक विज्ञापन माटे अक्षरो से लिखा और काष्ठ की तख्ती पर लगा कर अपने उपाश्रय के दरवाजे पर (जहा सर्व साधारण की दृष्टि पड़े) लटका दिया उसमे लिखा कि "दयानन्द सरस्वती ने अपने बनाये पुस्तक 'सत्यार्थप्रकाश' में कुछ नास्तिक मत के श्लोक लेकर उनको जैन मत का कह दिया है, इस विषय मे हम दयानन्द सरस्वती से शास्त्रार्थ करना चाहते है, और यह प्रण भी करते हैं कि यदि शास्त्रार्थ मे हमारी पराजय हुई तो हम दयानन्द जी के शिष्य हो जावेंगे, और जो हमारी विजय होगी तो दयानन्द जी को हमारा शिष्य होना पड़ेगा इत्यादि।"

जिस दिन से यह साइनबोर्ड (तख्ती) लटकाई गई, स्वामी दयानन्द जी को बड़ा कष्ट हुआ "श्री झवेर सागर जी" के विषय मे मनमाने अपशब्द बोलने लगे अनेक प्रकार के भय दिखलाये परन्तु जब कुछ कार्य कारी न हुए तो महाराणा जी से ही कहना पड़ा कि आपके अखड प्रताप सबल राज मे हमको "झवेर सागर" सम्बेगी ने विज्ञापन लगाकर दुख दिया इस विज्ञापन के तख्ते को जब तक हटाया नहीं जायगा हमको महान कष्ट है, इसको महाराणाजी ने स्वीकार कर लिया तब एक "श्री झवेर सागर जी" का शिष्य श्रावक जो उस समय दयानन्द जी के पास उपस्थित था इस समाचार को सुनकर चल पड़ा और "श्री झवेर सागर जी" के पास आनकर कहने लगा कि आप यह विज्ञापन का तख्ता स्वतः उतार लेवें तो ठीक है नहीं तो महाराणा जी की आज्ञा से उतारना पड़ेगा आज दयानन्द जी ने उनसे आपकी बहुत बुराई की है, तब "श्री झवेर सागर जी" ने कहा कुछ चिंता नहीं सब कार्य ठीक हो जायगा। "श्री झवेर सागर जी" प्रातः और सायकाल दिन मे दो बार जङ्गल जाया करते थे सो उस दिवस यह उस तरफ पधारे जहाँ उदयपुर के एजेंट साहब की कोठी थी दिशा जंगल होकर सीधे एजेंट साहब के बगले पर चले गये, पहरे वाले ने साहब बहादुर को खबर दी कि

कोई फकीर बाहर खड़ा है, साहब बहादुर बाहर आए "श्री ऋवेर सागर जी" को सलाम किया कुरसी पर बिठला कर पूछा, पूज्य साहब क्योंकर आना हुआ तब 'श्री ऋवेर सागर जी' ने कहा हुजूर आपके स्वतन्त्र निर्मल राज्य में एक अनुचित कार्य तो यह हो गया कि दयानन्द जी ने हमारे धर्म सम्बन्धी झूठे श्लोक नास्तिक मत के लेकर उनको हमारा कह कर हमारा दिल दुखाया है, दूसरा अनर्थ यह होने वाला है कि मैंने एक पाटिये (साइन बोर्ड) पर एक विज्ञापन इस विषयका लिखकर अपने मकान पर लटकाया है कि स्वामी दयानन्द जी ने जो श्लोक अपने पुस्तक में जैनियों के कह कर लिखे हैं, वह जैन के किसी ग्रंथ के भी नहीं हैं, सो, दयानदजी को हमसे शास्त्रार्थ करना चाहिये जो हम हारेंगे उनके शिष्य होंगे, वह हारे हमारा शिष्य हो जाय, इस पर दयानन्द शास्त्रार्थ तो नहीं करता किन्तु राना जी से कह कर वह तख्ता (साइन बोर्ड) हटाना चाहता है, सो क्या वह अन्याय नहीं है । इस पर साहब बहादुर ने कहा हम समझ गए तुम कुछ भय मत करो हमारे देखे बिना तुम्हारा साइन बोर्ड (तख्ता) नहीं हटेगा, और कल प्रात काल हम उसको अवश्य देखेंगे "श्री ऋवेर सागर जी" निज स्थान पर चले आये, प्रात काल निज वचनानुसार एजेंट साहब "श्री ऋवेर सागर जी" के उपाश्रय पर आये, विज्ञापन को पढा, और कहा इसमें राज विरुद्ध कोई लेख नहीं है, और अपने सत्य की रक्षार्थ सब कोई ऐसा कर सक्ता है यह नोटिस राज के हुक्म से नहीं उतारा जायगा, और इन्होंने तो अपने निज स्थान पर ही लगाया है इसमें राज्य का कुछ हर्ज नहीं, बराबर लगा रहने दो यह कह कर एजेण्ट साहब चले गये, और स्वामी दयानन्द जी को चुप हो जाना पड़ा मन मे अनेक तर्क वितर्क उठे परन्तु कुछ बन नहीं पड़ा और विशेष खेद इस लिये हुआ कि एक छोटे से कार्य्य में बहुत बड़े प्रतिष्ठित महाराना साहब की सहायता चाही और अफल हुई । उदयपुर में स्वामीजी ने आत्मानन्द सहजानन्द दो शिष्य किये, और वैदिक यन्त्रालय प्रयाग से यजुर्वेदभाष्य अंक ४० । ४१ छपकर प्रकाशित हुआ अब आगे स्वामी जी ने अपनी पूर्वोक्त सम्पूर्ण रचना तथा व्याख्यानो का विश्वास त्याग एक नवीन "सत्यार्थप्रकाश" लिखना था इस लिए अब इसी स्थान पर पुस्तक 'दयानन्द छल कपट दर्पण"

थम भाग का पूर्वार्द्ध पूर्ण होता है, क्योंकि अस्यौपरान्त स्वामी जी ने नवीन सत्यार्थप्रकाश" के व्यतिरिक्त और कुछ नहीं बनाया और सम्वत् १९४० मिती कार्तिक कृष्ण ३० को पचत्व को पधार गये थे ॥ इति

इति श्री अग्रवाल वंशावतंश अनेक महत्पदालंकृत
परम विद्वान् राजमान सुज्ञ विज्ञ ज्योतिष
रत्न दिवाकर जक्तविख्यात् श्री पंडित्
जैनी जीयालाल जी चौधरी रईस
फर्रुख नगर जिला गुरगांव
कृत दयानंद छल कपट
दर्पणके प्रथम भागका
पूर्वार्द्ध समाप्त
॥ हुआ ॥



॥ श्री जिनधर्मोजयति ॥

दयानंद छल कपट दर्पण

प्रथम भाग का उत्तरार्द्ध ।

॥ दोहा ॥

दयानन्द नित नित नये मत सिद्धान्त विचार ।
सदाकाल चलत रहे तऊ न पाया पार ॥ १ ॥
अन्त समय लों ना हुआ काहू थल विश्वास ।
उनसठ वर्ष व्यतीत कर जग से भए उदास ॥ २ ॥

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भाद्रपद शुक्ल पक्ष सम्वत् १९३९ में नवीन "सत्यार्थप्रकाश" का प्रारम्भ किया जिस की यथार्थ समालोचना इस द्वितीय भाग में लिखेंगे। परन्तु उक्त पुस्तक की पूर्व भूमिका पर अपनी पूरी समीक्षा और यथा योग्य पूर्वोक्त सम्पूर्ण पुस्तक के अनेक विषयों पर भी संक्षिप्त समालोचना व स्वमन्तव्य प्रकाश करते हैं ।

(ट) "नवीन सत्यार्थप्रकाश की भूमिका"

जिस समय मैंने यह ग्रन्थ "सत्यार्थप्रकाश" बनाया था उस समय और उससे पूर्व संस्कृत भाषण करने, पठन पाठन में संस्कृत ही बोलने और जन्म भूमि की भाषा गुजराती होने के कारण से मुझको इस भाषा का विशेष परिज्ञान न था इससे भाषा अशुद्ध बनगई थी । अब भाषा बोलने और लिखने का अभ्यास होगया है इसलिये इस ग्रन्थ की भाषा व्याकरणानुसार शुद्ध कर के दूसरी वार छपवाया है । कहीं २ शब्द, वाक्य रचना का भेद हुआ है सो करना उचित था क्योंकि इसके भेद किए बिना भाषा की परिपाटी सुधरनी कठिन थी परन्तु अर्थ का भेद नहीं किया गया है किन्तु विशेष तो लिखा गया है । हां जो प्रथम अपने

कहीं २ भूल रही थी, वह निकाल शोध कर ठीक २ कर दी गई है। यह ग्रंथ १४ चौदह समुल्लास अर्थात् चौदह विभागों में रचा गया है। इसमें १० दश समुल्लास पूर्वार्द्ध और ४ चार उत्तरार्द्ध में बने हैं परन्तु अन्त के दो समुल्लास और पश्चात् स्व सिद्धान्त किसी कारण से प्रथम नहीं छपसके थे अब वेभी छपवा दिये हैं—

(समीक्षक) पाठक गण आपको याद होगा कि प्रथम बार के छपे "सत्यार्थप्रकाश" पर राजा जयकृष्णदास ने यह विज्ञापन छपवाया था कि "यह पुस्तक स्वामीजी ने मेरे व्यय से रची है और मेरे ही व्यय से यह मुद्रित हुई है, उक्त स्वामीजी ने इसका रचनाधिकार मुझको दे दिया है, और उसका अधिष्ठाता मैं हूं और मेरी ओर से इस पुस्तक की रजिष्ट्री कानून २० सन १८६७ ई० के अनुसार हुई है, सिवाय मेरे व मेरी आज्ञा के इस पुस्तक के छापने का किसी को अधिकार नहीं है" और स्वामीजी ने जो पत्र अपने अटरनी द्वारा बम्बई में लाला ठाकुरदास ने अटरनी को लिखा था उसमें स्पष्ट रूप से यह दर्शाया था, कि सत्यार्थप्रकाश' का छपाना बेचना राजा जयकृष्णदास जी के स्वाधीन है, हमारा कोई सबध नहीं, परन्तु दूसरी बार छपने की आज्ञा लिये बिना स्वामी जी को इसके शोधन करने और छपाने का अधिकार कहा से मिला कुछ पता नहीं लगता ? तथा स्वामी जी प्रथम बार के छपे सत्यार्थप्रकाश की भाषा अशुद्ध होने के कारण उसको बदल गये तो उससे पहिले की छपी वेदभाष्यभूमिका को भी अशुद्ध ठहराकर पुन क्यों नहीं लिखा ? क्या उसकी भाषा किसी दूसरे मनुष्य की लिखी हुई थी ? ऐसा कभ माना जा सकता है कि जब एक ही मनुष्य दो पुस्तक रचे उनमे पहिले की भाषा शुद्ध और दूसरे की अशुद्ध समझी जाय और रचियता स्वत यह लिखे कि इस समय से पहिले मुझको शुद्ध देव नागरी लिखना नहीं आता था इस लिये भाषा अशुद्ध बन गई थी इत्यादि।

पुस्तक 'मगलदेव पराजय' पृष्ठ २० पं० २१ मे लिखा है कि "बुद्धिमान्" लोग पूर्व 'सत्यार्थप्रकाश' और नवीन 'सत्यार्थप्रकाश' का पाठ करके परीक्षा कर लें कि स्वामी जी के इस मिथ्या भाषण में कितना सत्य है, मन में उनतालीस सेर घूर शेष आटा ही आटा, वास्तव तो यह है कि प्राय विषयों मे पूर्व 'सत्यार्थ

प्रकाश की अपेक्षा नवीन' सत्यार्थप्रकाश' मे इतना अर्थ भेद है, कि नवीन 'सत्यार्थप्रकाश' पूर्व 'सत्यार्थप्रकाश' का विरोधी ही है, इत्यादि० ।

फिर नवीन 'सत्यार्थप्रकाश' की भूमिका पृ० २ पं० १४ मे स्वामी जी लिखते हैं कि—

मेरा इस ग्रथ के बनाने का मुख्य प्रयोजन सत्य २ अर्थ का प्रकाश करना है अर्थात् जो सत्य है उसको सत्य और जो मिथ्या है उसको मिथ्या ही प्रतिपादन करना सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है । वह सत्य नहीं कहाता जो सत्य के स्थान में असत्य और असत्य के स्थान मे सत्य का प्रकाश किया जाय किंतु जो पदार्थ जैसा है उसको वैसा कहना लिखना और मानना सत्य कहाता है । जो मनुष्य पक्षपाती होता है वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मत वाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत होता है, इस लिये वह सत्य मत को प्राप्त नहीं हो सकता इस लिये विद्वान् आप्तो का यही मुख्य काम है कि उपदेश व लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने सत्यासत्य का स्वरूप समर्पित कर दें, पश्चात् वे स्वय अपना हिताहित समझ कर सत्यार्थ का ग्रहण और मिथ्यार्थ का परित्याग करके सदा ग्यानन्द मे रहे । मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य का जानने वाला है तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि हठ दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से सत्य को छोड असत्य मे झुक जाता है परन्तु इस ग्रथ में ऐसी बात नहीं रक्खी हैं, और न किसी का मन दुखाना व किसी की हानि पर तात्पर्य है । किंतु जिससे मनुष्य जाति की उन्नति और उपकार हो सत्यांऽसत्यको मनुष्य लोग जानकर सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करें क्योंकि सत्योपदेश के बिना अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है ।

(समीक्षक) पूर्वोक्त लेख सत्य है अथवा असत्य, इसको हम पाठक वृन्द तथा विद्वानों के भरोसे पर छोडते हैं क्योंकि स्वामी जी के नवीन और प्राचीन "सत्यार्थ प्रकाश" को जो कोई विद्वान् न्याय दृष्टि से देखेगा स्वत विचार लेगा कि स्वामी जी का लिखना कहा तक सत्य है ।

अब हम कुछ थोडा सा नवीन व प्राचीन (सत्यार्थप्रकाश) का अन्तर दिखाते हैं और पुनरुक्त दोष तो इन दोनों ग्रन्थों मे इतना है । कि जिसके समझ

करने में ही एक नवीन ग्रन्थ बन जाय परन्तु हमको यहां केवल साराश ही से प्रयोजन है।

प्रथम बार के छपे "सत्यार्थ प्रकाश" पृष्ठ १८ पंक्ति १० मे लिखा है (जो गणों का नाम सधातो का अर्थात सब जगतों का ईश नाम स्वामी होने से परमेश्वर का नाम गणेश है) इसके प्रतिकूल पृष्ठ २४ पक्ति २२ मे श्री गणेशाय नम ऐसा लिखने वाले को मिथ्या लेखी कहा है। और इसी प्रकार नवीन "सत्यार्थ प्रकाश" पृष्ठ २१ पक्ति ११ मे (गण संख्याने) इस धातु से "गण" शब्द सिद्ध होता इसके आगे "ईश वा" पति शब्द रखने से "गणेश" और "गणपति" शब्द सिद्ध होते हैं। ये प्रकृत्यादयो जडाजीवाश्च गण्यन्ते सख्यायन्ते तेषामीश "स्वामी पति पालकोवा" जो प्रकृत्यादि जड और सब जीव प्रख्यात पदार्थों का स्वामी वा पालन करने हारा है इससे उस ईश्वर का नाम "गणेश" वा "गणपति" है। यह लिखकर पृष्ठ २५ पक्ति १० में इसके प्रतिकूल लिखा है। *

तथा प्रथम बार के छपे "सत्यार्थ प्रकाश" पृष्ठ २० पक्ति ७ में लिखा है कि सब कल्याण गुणों से सदायुक्त रहने से परमेश्वर का नाम शिव है। फिर पृष्ठ २४ पक्ति २३ मे "शिवायनम" ऐसा लिखने वाले को मिथ्या विश्वासी बतलाया है।

इसी प्रकार नवीन "सत्यार्थ प्रकाश" पृष्ठ १० पंक्ति १५ मे मगलाय और सबका कल्याण कर्ता होने से "शिव" नाम ईश्वर का है। तथा पृष्ठ २४ पंक्ति ३ (डुकृञ्करणे) "शम्" पूर्वक इस धातु से "शङ्कर" शब्द सिद्ध हुआ है "य शङ्कं स्वाणं सुखं करोति स शङ्कर" जो कल्याण अर्थात् सुख का करने हारा है इससे उस ईश्वर का नाम "शकर है"

तथा पृष्ठ २४ पंक्ति १६ में (शिवकल्याणे) इस धातु से "शिव" शब्द सिद्ध होता है "बहुलमेतन्निदर्शनम" इससे शिव धातु माना जाता है जो। कल्याण

* पृष्ठ २० पक्ति १५ नवीन "सत्यार्थप्रकाश" में "दयालु" शब्द को ही ईश्वर माना है, इससे स्वामीजी चाहते हैं कि संसारी लोग "दयानन्देश्योनमः" यही शब्द सदैव उच्चारण करें।

स्वरूप और कल्याण करने हारा है, इस लिये उस परमेश्वर का नाम "शिव" है।

तथा पृष्ठ २४ पंक्ति ६ "महत" शब्दपूर्वक "देव" शब्द से "महादेव" सिद्ध होता है "योमहता देव स महादेव" जो महान् देवों का देव अर्थात् विद्वानों का भी विद्वान् सूर्यादि पदार्थों का प्रकाशक है इस लिये उस परमात्मा का नाम "महादेव" है।

तथा पृष्ठ १९ पंक्ति २१ (गृशब्दे) इस धातु से "गुरू" शब्द बना है। "योधर्म्मान् शब्दान् गृणात्युपदिशति स गुरू।

सपूर्वेषामपिगुरुः कालेनानवच्छेदात्। योगसू०।

जो सत्यधर्म प्रतिपादक सकल विद्यायुक्त वेदों का उपदेश करता, सृष्टि की आदि में अग्नि, वायु आदित्य, अङ्गिरा और ब्रह्मादि गुरुओं का भी गुरु और जिस का नाश कभी नहीं होता इस लिये उस परमेश्वर का नाम "गुरू" है।

तथा पृष्ठ २२ पंक्ति ७ (सृगतौ) इस धातु से "सरस" उससे "मतुप्" और "ङीप्" प्रत्यय होने से "सरस्वती" शब्द सिद्ध होता है, "सरोविविधज्ञान विज्ञाने यस्या चित्तौसा सरस्वती" जिस को विविध विज्ञान अर्थात् शब्द अर्थ सम्बन्ध प्रयोगका ज्ञान यथावत् होने इससे उस परमेश्वर का नाम 'सरस्वती' है।

तथा पृष्ठ १८ पंक्ति ४ में लिखा है कि "जल और जीवों का नाम नारा है वे अयन अर्थात् निवास स्थान हैं जिस का इसलिये सब जीवों में व्यापक परमात्मा का नाम "नारायण है" अब पूर्वोक्त लेख के प्रतिकूल स्वामीजी अपने नवीन "सत्यार्थप्रकाश" पृष्ट २५ पंक्ति १० में यह लिखते हैं कि—

जो आधुनिक ग्रथों में 'श्री गणेशायनम,' 'सीतारामाभ्यानम' 'राधाकृष्णाभ्यानम' 'श्री गुरुचरणारविन्दभ्यानम' 'हनुमतेनम' दुर्गायैनम' 'शिवायनम' 'भैरवायनम' 'शिनायनम' सरस्वत्यैनम' 'नारायणानम' इत्यादि लेख देखने में आते हैं इनको बुद्धिमान् लोग वेद और शास्त्रों से विरुद्ध होने से मिथ्याही समझते हैं, इत्यादि०*

* और पृष्ट ७२ पंक्ति १४ में लिखा है कि "राम, कृष्ण, नारायण, शिव, भगवती गणेशादि नाम स्मरण करने से पाप दूर होने का विश्वास पाखंडियों के उपदेश से है।

फिर देखा पुराने 'सत्यार्थप्रकाश' पृष्ठ ३१ पंक्ति २६ में सूर्य्य चन्द्रमा को जड़ लिखा है और नाम करण संस्कार विषय में सूर्य्य के सन्मुख खड़ा होकर जल से अञ्जलीभर प्रार्थना करनी लिखी है, सो यदि सूर्य्य चन्द्रमा जड है तो जड़ पदार्थ के सन्मुख ईश्वर की प्रार्थना करने को क्यों लिखा।

फिर देखो पुराने 'सत्यार्थप्रकाश' पृष्ठ ३८ पंक्ति ९ में लिखाहै कि 'कन्याओं का यज्ञोपवीत कभी न करना चाहिये' और इस के प्रतिकूल पृष्ठ १३९ पंक्ति १८ में लिखा है कि 'मनुष्यों के बीच में स्त्री और पुरुष जो सूर्य्य हो उनका यज्ञोपवीत भी हुआ होय।

तथा सम्वत् १९३३ की छपी संस्कारविधि के पृष्ठ १०७ पंक्ति ८ में लिखा है कि 'कन्या' भी सुन्दर वस्त्र से शरीरको आच्छादित और यज्ञोपवीत धारण करके विवाह शाला में आवे।

पुराने 'सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ ४० पंक्ति १७ में वेदी १२ अंगुली की और पञ्च महायज्ञ विधि के पृष्ठ ३६ में १६ अंगुल की लिखी, फिर नवीन 'सत्यार्थप्रकाश' पृष्ठ ४० पंक्ति २९ में १२ व १६ अंगुल दोनों का ग्रहण कर लिया है।

पुराने 'सत्यार्थप्रकाश' पृष्ठ ४७ में मरे पितृजनों के श्राद्ध, तर्पण की विधि लिख थोड़े ही दिन पीछे भुला गये। इस विषय में सविस्तर लेख पूर्वार्द्ध में लिखा जा चुका है।

नये 'सत्यार्थप्रकाश' में गाय का निषेध और प्रथम बार के छपे हुए के पृष्ठ ४५ में गाय आदि में प्राण संयम करने की आज्ञा लिखी है।

फिर देखा पृ० ४३ में पूर्व मुख करके देव तर्पण करना लिखा और पृ० ३०७ प० १५ में लिखा है कि देवता हिमालय में रहते थे जो उत्तराखण्ड में है। और नवीन 'सत्यार्थप्रकाश' में जो स्वमन्तव्य लिखा उसकी संख्या ७० में 'देव' नाम विद्वान् का लिख दिया है।

फिर देखो पृ० ५० पंक्ति १ में शूद्र लोगों को वेद-पढ़ने की आज्ञा नहीं लिखी किन्तु, भाष्यभूमिका पृ० ३१० व ३११ में सबको वेदाधिकार लिख दिया।

फिर देखा पृ० ७५ प० ६ में लिखा है कि 'पूर्वमीमांसा-कर्म और वैशेषिक दर्शन में प्रत्यक्ष और अनुमान दो प्रमाण माने हैं।

इसके प्रतिकूल आप 'आर्य्योद्देश्य रत्नमाला' के ८३ संख्या में प्रत्यक्ष अनु मान, उपमान, शब्द, एतिह्य, अर्थापत्ति, सम्भव, अभाव यह आठ प्रमाण माने और नवीन 'सत्यार्थप्रकाश' के अंत में जो स्वमन्तव्य प्रकाश किया उसकी संख्या ३७ में भी यही लिखे हैं।

फिर पृ० १०७ प० ८ में 'शीघ्रबोध' पर तर्क किया है इसका उत्तर हम दूसरे भाग में लिखेंगे, फिर देखो पृ० १२४ प० १६ में जो यह श्लोक लिखा है-

पाखंडिनो विकर्मस्थान् वैडालव्रतिकाशठान्।
हेतुकान्बकवृत्तिंश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत्। १।

इस श्लोक का अर्थ ऐसा झूठा और मनोक्त लिखा है कि जिसको व्याकरण का कुछ भी ज्ञान न होगा वह स्वामी जी के झूठ को स्पष्ट रूपसे जान लेगा।

फिर देखो पृ० १२५ पंक्ति १९ से 'सत्यार्थप्रकाश' में लिखा है कि-जो कोई सदाव्रत क्षेत्र कर्ता है, उसमें सज्जन व सत्पुरुष कोई नहीं जाता इसमें उन गृहस्थों का पुण्य कुछ नहीं होता किंतु पाप होता है, इसके प्रतिकूल फीरोजपुर बरेली के अनाथालयों की बड़ी प्रशंसा निज लेखनी से लिखी है, और आपने स्वत भी जो मथुरा जी में जोशी धापा के धर्मक्षेत्र में अधिक समय तक भोजन खाया उसको भूल गये।

फिर देखो पृ० १३१ की अंतिम पंक्ति में जो 'पितृ' शब्द है उसका अर्थ पिता किया और इसी प्रकार पृ० १३२ पंक्ति ९ में भी लिख दिया है।

फिर देखो पृ० १४० पंक्ति ९ व १० में स्त्री को केवल एक पति की ही आज्ञा दी है।

फिर देखो पृ० १४७ में 'यद्वै किंचन मनुरवदत्तद्भैषजभेषजताया' लिखके इस को स्वामीजी छान्दोग्य उपनिषद् की श्रुति कहते हैं सो यह कहना उनका सर्वथा झूठ है और इसी लिये नये पुस्तक में इसका अभाव कर दिया है।

फिर देखो पृ० १४९ पंक्ति १४ में लिखा है कि मांसके पिंड देने में कुछ पाप नहीं है।

फिर देखो पृ० १५२ पंक्ति २६ में लिखा है कि 'परमेश्वर ने तो सब जीवों को स्वतंत्र रचे हैं' पुन इसी पुस्तक के पृ० २३२ पंक्ति १० से लिखा है

कि 'जब जीवों को ईश्वर ने रचा तब विचार के सब को स्वतन्त्र ही रच दिया' फिर इसी पृ० की पंक्ति १९ में लिखा है कि 'कर्मों के करने और पुण्यों के फल भोगने में जीव स्वतन्त्र है और पापों के फल भोगने में पराधीन है'। पुन इसी पृ० की पंक्ति २१ में लिखा है कि 'जीव जैसा करेगा वैसा ही ईश्वर ने ज्ञान से निश्चय पहिले ही किया है'। इस परस्पर के विरोध को ज्ञानवन्त स्वत विचार लेंगे।

फिर देखो पृ० १६१ पंक्ति ६ मे लिखा है, (श्लोक)

प्रजापत्यांऽनिरूप्येष्टिंसर्ववेदसदक्षिणाम् ।

आत्मन्यग्नीन्समारोप्यब्राह्मणःप्रव्रजेद्गृहात् ॥मनु०॥

पूर्वोक्त श्लोक का स्वकपोल कल्पित झूठा अर्थ लिख दिया जो अप्रमाणीक है।

फिर पृ० १६४ पंक्ति २७ में श्लोक लिख कर उस का खुलासा यह लिखते हैं कि जब गाँव में धूम न दीख पड़े मूसल या चक्की का शब्द न सुन पड़े किसी के घर में अंगार न देख पड़े सब गृहस्थ लोग भोजन कर चुकें और भोजन कर के थाली और सकोरे बाहर फेंक देवें उस समय सन्यासी गृहस्थ लोगों के घर में भिक्षा के लिये नित्य जाय और जो ऐसा कहते हैं कि हम पहिलेही भिक्षा करेंगे यह उनका पाखंड ही जानना क्योंकि गृहस्थ लोगो को पीडा होती है, और जो विरक्त होके वैरागी लोग आदिक अपने हाथ से करते हैं वे बड़े पाखंडी हैं,

इस पर मुरादाबादी लाला जगन्नाथदास अपनी बनाई 'दयानन्द मत परीक्षा प्रथम भाग पृ० १८ पंक्ति १३ में समीक्षारूप यह लिखते हैं कि

स्वामीजी ने तो सन्यास धर्म का सर्वथा ही त्याग कर दिया था क्योंकि आप उक्त काल में गृहस्थ लोगों के घर में भिक्षा के वास्ते नहीं जाते किंतु रसोइया से धनाढ्य गृहस्थों के समान इच्छानुसार भोजन बनवाते थे और सबसे पहिले ही खाते थे, अब आपका यह लेख (कि जो ऐसा कहते हैं कि हम पहिले ही भिक्षा करेंगे यह उनका पाखंड ही जानना) किसका पाखंड दिखलाता है, और किस को पाखंडी ठहराता है, फिर यह वाक्य कि जो विरक्त होके वैरागी आदिक अपने हाथ से रोकर करते हैं वे बड़े पाखंडी हैं, बतलाइए कि जो सन्यासी

होकर रसोइया से इच्छानुसार भोजन बनवाते हैं वे छोटे पाखंडी हैं व बड़े पाखंडी से भी बड़े ?

फिर देखो पृष्ठ १७१ में लिखा है कि यज्ञ के वास्ते जो पशुओं की हिंसा है सो विधि पूर्वक हनन है।

तथा इसी पृष्ठ की पंक्ति २४ में धर्म अधर्म दोनों एक रस लिख दिए हैं।

फिर देखो पृष्ठ २०४ पंक्ति २५ में लिखा है कि—

और जो तू सत्य ही बोलेगा तो गंगा व कुरुक्षेत्र में प्रायश्चित्त करना व राज्यगृह में दण्ड अथवा परलोक परजन्म में नरकादिक सर्व दुःखों की प्राप्ति तुझ को कभी न होगी, इससे तुझको सत्य ही बोलना चाहिए मिथ्या कभी नहीं।

इस लेख में स्वामी जी ने गंगा और कुरुक्षेत्र को पाप निवारक स्थान मान लिया परन्तु नवीन "सत्यार्थ प्रकाश" में केवल यही लिख दिया है कि गंगा २ कहने से पाप कभी नहीं जाते हैं और तीर्थ इत्यादि पांच छः सौ वर्ष से प्रकट हुए हैं।

फिर देखो पृष्ठ २३५ पंक्ति ३ में लिखा है कि

"जितने जीव हैं उनको ईश्वर ने तुल्य पदार्थ दिए हैं पक्षपात किसी का भी नहीं किया।

पाठक वृन्द दृष्टि करो कि दो जीव भी तुल्य पदार्थों के भोगी देखने में नहीं आते इस विषय में स्वामी जी का लेख सर्वथा अनुचित है।

फिर देखो पृष्ठ ३०२ में लिखा है कि कोई भी मांस न खाय तो जानवर पक्षी मत्स्य और जलजंतु इतने हैं उनसे शत सहस्र गुणे हो जाय, फिर मनुष्यों को मारने लगें और खेतों में धान्य ही न होने पावे फिर सब मनुष्यों की आजीविका नष्ट होने से सब मनुष्य नष्ट हो जाय।

तथा पृष्ठ ३०३ में गोमेधादिक में बन्ध्या गाय और बैल आदि नर पशुओं का मारना लिखा है, तथा पृष्ठ ३९९ में लिखा है कि पशुओं को मारने में थोड़ा सा दुःख होता है परन्तु यज्ञ में चराचर का अत्यंत उपकार होता है।

इसके प्रतिकूल पुस्तक "गोकरुणा निधि" में तथा गौरक्षिणी सभा के स्थापित करते समय के व्याख्यानों में मांस का निषेध कर दिया और नवीन "सत्यार्थ प्रकाश" के तो पृष्ठ ३४ पंक्ति २२ पृष्ठ २६६ पंक्ति ६ व २८ इत्यादि

अनेक स्थान पर मासका निषेध लिखा है। इसी प्रकार प्रथमवार के छपे 'सत्यार्थ-प्रकाश' का थोड़े से ही में पूर्वापर विरोध दिखाया, अब नवीन 'सत्यार्थ प्रकाश' का थोड़ा सा हाल लिखते हैं, पूरी समालोचना तो दोनों ग्रन्थों की 'दयानन्द छल कपट दर्पण' के दूसरे भाग में होगी।

नवीन * 'सत्यार्थ प्रकाश' पृ० १ पंक्ति १२ तक प्रथम लिखा गया। पृ० २ पंक्ति १३ तकचतुर्दशसमुल्लासोंका सूचीपत्र है, पृ० २ पंक्ति १४ से पृ० ४ पंक्ति १७ तक भूमिका में कोई आलोचना करने योग लेख नहीं है, तत्पश्चात् पृ० ४ पंक्ति १७ से पृ० ५ पंक्ति २८ तक 'जैनधर्म्म' सम्बन्धी लेख है जिसकी समीक्षा आगे चलकर करेंगे फिर पृ० ५ पंक्ति २९ से पृ० ६ के अन्त तक भूमिका पूरी करी है, और पृ० ७ से २४ तक 'ईश्वर नाम व्याख्या' पृ० २५ से २६ तक मंगलाचरण समीक्षा लिख प्रथम समुल्लास पूरा किया इसकी यथार्थ समालोचना दूसरे भाग में होगी।

द्वितीय समुल्लास पृ० २७ पंक्ति १७ से लिखा है कि :

रजो दर्शन के पांच दिवस से लेके सोलहवें दिवस तक ऋतुदान देने का समय है उन दिनों में से प्रथम के चार दिन त्याज्य हैं, रहे १२ दिन उनमें एकादशी और त्रयोदशी रात्रिको छोड़के बाकी १० रात्रियों में गर्भाधान करना उत्तम है, और रजोदर्शन के दिन से लेके १६ वीं रात्रि के पश्चात् न समागम करना पुनः जब तक ऋतुदान का समय पूर्वोक्त न आवे तब तक और गर्भस्थिति के पश्चात् एक वर्ष तक संयुक्त न हो।

फिर पृ० २८ पंक्ति १३ में लिखा है कि 'क्योंकि प्रसूता स्त्री के शरीरके अंश से बालक का शरीर होता है। इसी से स्त्री प्रसव समय निर्बल होजाती है, इस लिये प्रसूता स्त्री दूध न पिलावे। दूध रोकने के लिये स्तन के छिद्र पर उस

* यह बात भी पाठक वृन्दों को ध्यान में रखनी चाहिये, कि नवीन "सत्यार्थ प्रकाश" जो स्वामी जी ने संवत् १९३६ में बनाया था, सन् १८८७ में तीसरी बार वैदिक यन्त्रालय प्रयाग में छपा था जो हमारे पास मौजूद है, सो हम जहाँ जहाँ नवीन "सत्यार्थ प्रकाश" का प्रमाण देवेंगे वहाँ इसी के पृष्ठ पंक्ति समझना।

औषधि का लेप करे जिसमे दूध स्रावित न हो ऐसे करने से दूसरे महीनेमें पुनः पियुषवती हो जाती है । तब तक पुरुष ब्रह्मचर्य्य से वीर्य्य का निग्रह रक्खे' ।

इसके प्रतिकूल पृ० ११९ पंक्ति ४ से लिखा है कि 'और गर्भवती स्त्री से एक वर्ष समागम न करने के समय में पुरुष व स्त्री से न रहा जाये तो किसी से नियोग करके उसके लिये 'पुत्रोत्पत्ति' कर दे ।

बड़े आश्चर्य की बात है कि जबस्त्री प्रथम ही गर्भवती है तो और दूसरे से नियोग करके उसके लिये पुत्रोत्पत्ति कैसे करेगी ।

क्योंकि किसी वैद्यक ग्रन्थ में ऐसा लिखा देखने में नहीं आया कि एक स्त्री अनेक पुरुषों से जुदे जुदे गर्भ एक गर्भ के होते हुए धारण कर सके, और जो यही मान लिया जाय कि स्वामीजी का लिखना पत्थर की लकीर है तो यह शंका उत्पन्न हो जायगी कि कोका पंडित के कथनानुसार दो मास का गर्भ होने पर स्त्री को मैथुन करने की अधिक रुचि होती है तो क्या एक गर्भ के दो मास पूरा होने पर वह नियोग द्वारा दूसरा गर्भ धारण कर लेगी । और इसी प्रकार दो दो मास पूरे होने पर नियोग द्वारा गर्भ धारण करते रहने में उसका सम्पूर्ण जीवन समय मुर्गी के समान बच्चे देने और भोग करने ही में पूरा होगा जो विद्या और बुद्धि दोनों के प्रतिकूल है । और जो उस गर्भवती स्त्री से एक वर्ष तक रहा न जाय तो क्या निज पति से भोग करने में कुछ दोष है जो नियोग द्वारा मुह काला करने की आज्ञा दी ।

फिर देखो पृ० ३३ पंक्ति २७ से लिखा है कि 'किसी को अभिमान न करना चाहिये छल कपट व कृतघ्नता से अपना ही हृदय दुखित होता है, तो दूसरे की क्या कथा कहनी चाहिये । छल और कपट उसको कहते हैं जो भीतर और बाहर और रख दूसरों को मोह में डाल और दूसरे की हानि पर ध्यान न देकर स्वप्रयोजन सिद्ध करना, 'कृतघ्नता' उसको कहते हैं कि किसी के किये हुए उपकार को न मानना' ।

फिर देखो पृ० ४० पंक्ति ०९ मे लिखा है कि 'संध्योपासन जिसको ब्रह्मयज्ञ भी कहते हैं । 'आचमन' उतने जलको हथेली में लेके उसके मूल और और मध्य देश में ओष्ठ लगाकर करे कि वह जल कंठ के नीचे हृदय तक पहुँचे

न उससे अधिक न न्यून। उससे कण्ठस्थ कफ और पित्त की निवृत्ति थोड़ी सी होती है पश्चात 'गारजन' अर्थात् मध्यमा और अनामिका अंगुली के अग्रभाग से नेत्रादि अंगों पर जल छिड़के उससे आलस्य दूर होता है जो आलस्य और जल प्राप्त न हो तो न करे।'

फिर देखो पृ० ४१ पंक्ति १ से स्वामी जी वेदी, प्रोक्षणीपात्र, प्रणीता-पात्र, आज्यस्थाली, चमसा, इन पांचों का चित्र बनाकर "सत्यार्थप्रकाश" के पाठकों को समझाते हैं कि इस प्रकार के सोने चांदी वा काष्ठ के बनवाकर काम में लाओ। हम पूछते हैं कि एक जड़ वस्तु के ज्ञान कराने में तो आपको उसकी मूर्ति का सहारा लेना पड़ा भावार्थ उसकी मूर्ति द्वारा पाठकों को बोध कराया फिर पृ० ३०८ से ३१६ तक मूर्ति पूजा का खण्डन किया यह किस बुद्धिमानी का काम है।

फिर पृ० ४३ पंक्ति ८ में लिखा है कि "और जो कुलीन शुभ लक्षण युक्त शूद्र होतो उसको मन्त्र संहिता छोड़ के सब शास्त्र पढ़ावे शूद्र पढ़े पर उसका उप नयन न करे यह मत अनेक आचार्यों का है।"

इसके प्रतिकूल पृ० ७४ पंक्ति ११ में शूद्र को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं यह लिख दिया।

फिर पृ० ५० पंक्ति १७ में लिखा है कि "जो वेद और वेदानुकूल आप्त पुरुषों के किये शास्त्रों का अपमान करता है उस वेद निन्दक नास्तिक को जाति पंक्ति और देश से बाहर कर देना चाहिये।"

इस पर स्वामी जी ने एक मनुस्मृति का श्लोक भी लिखा है और इस "सत्यार्थ प्रकाश" में मनुस्मृति के अधिक प्रमाण दिए हैं, परन्तु इसके कुछ भाग को वेदानुकूल कहकर ग्रहण करना और शेष भाग को नहीं मानना इसको न्याय वान विचार सकते हैं कि जाति, पंक्ति, और देश से निकाले जाने लायक सत्शास्त्रों का अपमान करने वाला नास्तिक कौन ठहर सकता है।

पृ० ६८ पंक्ति ५ में 'सारस्वत' चन्द्रिका, कौमुदी, मनोरमा को कुग्रंथ लिखा और इसी पृ० की पंक्ति १५ में अमरकोश को नास्तिक कृत लिखा परन्तु पृ० ४१९ पंक्ति २३ में इसी के प्रमाण पर लेख किया है।

और पृ० ६८ पंक्ति १९ में मनुस्मृति, वाल्मीकीय रामायण, और महा भारत को प्रमाणीक माना परंतु उनके अंतरगत लेख को स्वामी जी नहीं मानते इस विषय में हम आगे चलकर स्पष्ट लिखेंगे ।

पृ० ७० पंक्ति १० में लिखा है कि "गान्धर्व वेद कि जिसको गानविद्या कहते हैं उसमें स्वर, राग, रागिनी, समय, ताल, ग्राम तान, वादित्र, नृत्य, गीत आदि को यथावत् सीखे" ।

फिर पृ० १४४ पंक्ति २ से लिखा है कि "गाना बजाना, वा नाचना, वा नाचकराना, सुनना, और देखना, वृथा इधर उधरघूमते रहना, ये दश कामो त्पन्न व्यसन हैं, ।

पाठक वृन्द खयाल करने का स्थान है कि स्वामीजी को बालकपन का गीतनृत्य अब तक याद है । क्यों न हो इस विद्याने तो घर से ही निकाला दिया, और यदि स्वामीजी युवा होकर इस कार्य्य को बुरा समझते तो ये तो अब उनके शिष्य गण साप्ताहिक जलसो में गला फाड फाड राग भजन क्यों गाते हैं ? ।

पृ० ७१ पंक्ति १२ से लिखा है कि 'अब जो परित्याग के योग्य ग्रन्थ हैं उन का परिगणन संक्षेप से किया जाता है अर्थात् जो २ नीचे ग्रन्थ लिखेंगे वह २ जाल ग्रन्थ समझना चाहिये । व्याकरण में का तत्र सारस्वत, चन्द्रिका, मुग्धबोध, कौमुदी, शेखर, मनोरमादि । कोश अमरकोशादि छन्दो ग्रन्थ में वृत्त रत्नाकरादि । शिक्षा में अथ शिक्षा प्रवक्ष्यामि पाणिनीयमतं यथा । इत्यादि । ज्योतिष में शीघ्रबोध मुहूर्त चिंतामणि आदि । काव्य में नाय का भेद, कुवलयानन्द, रघुवंश, माघ, किरा तार्जुनीयादि, मीमांसा में धर्मसिन्धु अन्नंभट्टादि । वैशेषिक में तर्कसंग्रहादि । न्याय में जागदीशी आदि । योग में हठ प्रदीपिकादि । सांख्य में सांख्यतत्व कौमुद्यादि । वेदान्त में योगवासिष्ठ पंचदश्यादि । वैद्यक में शार्ङ्गधरादि । स्मृतियों में एक मनुस्मृति इस में भी प्रक्षिप्त श्लोक अन्य सब स्मृति, सर्वतंत्र ग्रन्थ पुराण सब उपपु राण तुलसीदासकृत भाषा रामायण, रुक्मणीमंगलादि और सर्व भाषा ग्रन्थ ये सब कपोल कल्पित मिथ्या ग्रंथ हैं ।

प्यारे पाठक गण स्वामीजी ने आदि आदि शब्द सब के साथ लगादिया । जिसमें व्याकरण, कोश, शिक्षा, ज्योतिष, काव्य, मीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग

सांख्य, वेदांत, वैशेषिक, स्मृति, तन्त्र, पुराण, उपपुराण के जितने ग्रंथ पृथ्वीपर प्रचलित है सब परित्यागके योग्य हो गये। और मनुस्मृति तो इस लेख से प्रत्यक्ष ही अप्रमाण हो चुकी है। इस के प्रतिकूल पृ० ६०४ पंक्ति १ में पुराण को ग्रहण कर लिया है, सो यदि यही समझ लिया जाय कि मनुस्मृति को यहां यथावत् वेदोक्त माना है अब उसे अक्षरोपांत नहीं मानते और लिखित मृत पुरुषों के श्राद्धादि कर्मों को धर्म्म नहीं जानते किंतु उसके अनेक विषयों को वेद विरुद्ध कहते और उन के खंडन पर उद्यमी रहते रहे, विद्वानों का यह काम नहीं है कि जिसे यथावत् वेदोक्त बतलावें फिर उसी को वेद विरुद्ध ठहरावें। असल बात तो यह है कि स्वामीजी किसी ठिकाने पर स्थिर नहीं रहते, यदि उनको मनुस्मृति के लेखों में कुछ भाग वेद विरुद्ध जान पड़ा था तो (नवीन "सत्यार्थप्रकाश" पृ० ७२ पंक्ति ७ के इस लेखानुसार "असत्य मिश्र सत्य दूरतस्त्याज्यमिति। असत्य से युक्त मंदरा सत्य को भी वैसे छोड़ देना चाहिये जैसे विषयुक्त अन्न को) मनुस्मृति का सर्वथा त्याग चाहिये।

फिर पृ० ७९ पंक्ति १८ में कैसी कन्या से विवाह करना चाहिये इस विषय में यह लिखा है "नक्षत्र अर्थात् अश्विनी भरणी रोहिणीनाम रेवतीवाली चित्राआदि नक्षत्र नाम वाली। तुलसीआ, गेंदा, गुलाबी, चंपा, चमेली, आदि वृक्ष नाम वाली, गंगा यमुना आदि नदी नाम वाली, चांडाली आदि अन्य नाम वाली, विन्ध्या हिमालया पार्वती आदि पर्वत नाम वाली, कोकिला, मैना आदि पक्षी नाम वाली नागी भुजंगी आदि सर्प नाम वाली माधोदासी, मीरादासी आदि प्रेष्य नाम वाली और भीमकुमारि चंडिका काली आदि भीषण नाम वाली कन्या के साथ विवाह न करना चाहिये क्योंकि ये नाम घृणित और अन्य पदार्थों के भी हैं।

पाठकवृन्द टुक ध्यान देना चाहिये कि स्वामीजी ने तीर्थों को नदी और पुष्पों को वृक्ष बना कर लिख दिया, और क्या इसी लेखानुसार वसुदेव की स्त्री का नाम रोहिणी, महादेव की स्त्री का नाम पार्वती यह दोनों मूर्ख थे वा उन कन्याओं के पिता आदि मूर्ख थे? और इस श्लोक का शब्दार्थ भी वह नहीं है जो स्वामीजी ने लिखा है।

फिर पृ० ८० पंक्ति ७ से लिखा है,।

(प्रश्न) विवाह का समय और प्रकार कौनसा-अच्छा है, (उत्तर) सोलहवें वर्ष से लेकर ४८ वें वर्ष तक पुरुष का विवाह समय उत्तम है, इस में जो सोलह और पचीस में विवाह करे तो निकृष्ट अठ्ठाहर बीस की स्त्री तीस पैंतीस वा चालीस वर्ष के पुरुष का मध्यम चौबीस वर्ष की स्त्री और अटतालीस वर्ष के पुरुष का विवाह होना उत्तम है ।

प्रिय पाठको २४ वर्ष की कन्या और ४८ वर्ष के पुरुष का विवाह करना उत्तम लिखा है सो विचार करना चाहिये कि चौबीस वर्ष की अवस्था वाली लडकी की गणना (शुमार) कन्या में होगी वा तरुणा (जवान) स्त्री में होगी। एव ४८ वर्ष का पुरुष बालक कदापि न कहावेगा किंतु बराबर जवान (युवा) कहा जायगा ।

फिर पृ० ८२ पक्ति ३ से मनु के प्रमाण पर लेख लिखा है कि—

कन्या रजस्वला हुए पीछे तीन वर्ष पर्यन्त पति का खोज करके अपने तुल्य पति को प्राप्त होने जब प्रति मास रजोदर्शन होना है तो तीन वर्षों में ३६ बार रजस्वला हुए पश्चात् विवाह करना योग्य है, इसमे पूर्व नहीं ।

अब न्याय वालो को विचारना चाहिए कि प्रथम लेख से इस लेख मे कितना विरोध है, प्रथम लिखा है कि कन्या का विवाह २४ वर्ष की अवस्था म करे तो श्रेष्ठ है । अब उसी विषय को पुन यहा लिखते हैं कि रजस्वला हुए पीछे तीन वर्ष मे पति को ढूढ ले तो क्या स्वामी जी यह समझ रहे हैं कि २१ वर्ष की अवस्था से पहिले स्त्री रजस्वला * नहीं होती ? धन्य महाराज धन्य न्याय लिखा ।

पृ० ८४ प० १९ मे लिखा है कि "वर्णव्यवस्था भी गुण कर्म स्वभाव के अनुसार होनी चाहिए" ।

पुन इसी पृ० की पक्ति २५ मे लिखा है कि 'जो उत्तम विद्या स्वभाव वाला है, वही ब्राह्मण के योग्य है और मूर्ख शूद्र के योग्य होता है' ।

पुन पृ० ८६ प० ९ मे लिखा है कि 'जो नीच भी उत्तम वर्ण के गुण कर्म स्वभाव वाला होवे तो उसको भी उत्तम वर्ण मे और जो उत्तम वर्णस्थ होके

* वर्तमान काल में १० वर्ष से पीछे १२ वर्ष से पहिले कन्या अवश्य रजस्वला हो जाती है ।

नीच काम करे तो उसको नीच वर्ण में अवश्य गिनना चाहिए ।

पुन पृ० ८७ प० २३ मे० लिखा है कि अर्थात् चारो वर्णों म जिस २ के वर्ण सदृश जो २ पुरुष व स्त्री हो वह २ उनी वर्ण म गिना जाव' ।

पुन पृ० ८८ प० १४ मे लिखा है कि "यह गुण कर्मो मे वर्णो की व्यवस्था कन्याओ की सोलहवें वर्ष और पुरुषों की पचीसवें वर्ष की परीक्षा म निश्चय करनी चाहिए' ।

पुन पृ० ९० प० १४ मे लिखा है कि 'य सक्षेप से वर्णों के गुण और कर्म लिखे, जिस जिस पुरुष मे जिस जिस वर्ण के गुण कर्म हो उस उस वर्णका अधिकार देना' ।

इन सबका भावार्थ यही है कि कन्याओ की १६ व और पुरुषों की २५ वें वर्ष परीक्षा करे और जैसा २ गुण कर्म स्वभाव जिस २ स्त्री व पुरुष में हो उस उस स्त्री व पुरुष को उसी गुण कर्म स्वभाव वाले वर्ण मे प्रविष्ट करना । परन्तु १६ वे वर्ष से पहिले स्त्री २५ वें वर्ष से पहिले पुरुष को किसी वर्ण मे न गिना जायगा ।

इनके प्रतिकूल पृ० ३७ प० २ पुनश्च सस्कारविधि मे लिखा है कि जन्म दिन से लेके १० वी १२ वीं रात्रि महीना सिवा एक सम्वत्सर में बालक का नाम धरे । और इसी पुस्तक के पृ० ३९ प० १० मे लिखा है कि ब्राह्मण के नाम के अत मे शर्मन् क्षत्रिय के वर्मन् वैश्य के गुप्त और शूद्र के दास जैसे भद्रशर्मा, भद्रवर्मा, भद्रगुप्त, भद्रदास इस प्रकार से नाम रक्खे ।

पाठकवृन्द ! विचार करो कि जब २५ व वर्ष मे परीक्षा कर के गुण कर्म स्वभाव के अनुसार वर्ण निश्चय करनेको "सत्यार्थप्रकाश" में लिखा है तो यहाँ दसवें बारहवें महीने एव एक वर्ष के भीतर उन बालकों में गुण कर्म स्वभाव कहाँ से आ गया जो वर्ण निश्चय होकर उनके नाम शर्मन्, वर्मन, गुप्त, दास रक्खे जाते हैं । और पृ० ९३ प० २७ इसी 'सत्यार्थप्रकाश' मे सस्कारविधि के अनुसार नाम करण सस्कार करना लिखा है ।

पुन पृ० ८८ प० ९ मे यह प्रश्नोत्तर लिखा है कि—

(प्रश्न) जो किसी के एक ही पुत्र व पुत्री हो वह दूसरे वर्ण मे प्रविष्ट

हो जाय तो उसके माँ बाप की सेवा कौन करेगा और वंशच्छेदन भी हो जायगा इसकी क्या व्यवस्था होनी चाहिए ? (उत्तर) न किसी की सेवा का भंग और न वंशच्छेदन होगा, क्योंकि उनको अपने लड़के लड़कियों के बदले स्वयंवर के द्वारा दूसरे संतान विद्यासभा और राजसभा की व्यवस्था से मिलेंगे, इस लिए कुछ भी अव्यवस्था न होगी ।

पाठक महाशय को विदित हो कि पूर्वोक्त लेख का अभिप्राय यह हुआ कि यदि ब्राह्मण के लड़के व लड़कियों में शूद्र के गुण कर्म पाए जाय और शूद्र के लड़के लड़कियों में ब्राह्मण के गुण कर्म हों तो विद्या सभा और राज सभा की व्यवस्था से ब्राह्मण के लड़के व लड़किया शूद्र को और शूद्र के लड़के व लड़किया ब्राह्मण को दिये जाय ।

अब यहां पर प्रथम यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि ग्रन्थकर्ता ने यह किस वेद की श्रुति का आशय लिखा है ।

दूसरे बुद्धिमान् मनुष्य विचार करें कि कोई ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य इस बात को प्रसन्नता से स्वीकार कर सकता है कि अपने लड़के व लड़की शूद्र को दे दें और उनके बदले में शूद्र के लड़के व लड़की ले ले । यह तो सर्वथा विचार से बाहर है वरन् कोई शूद्र भी ब्राह्मणादिकों को अपने बालक पुत्र और कन्या को दे कर बदले में उनके लड़के लड़कियों को लेना प्रसन्नता पूर्वक कदापि स्वीकार न करेंगे ।

हमारे स्वामीजी महाराज ने तो लड़के लड़कियों को धातु पाषाणादि के भांडे (बर्तन) बनाया कि पुराने वा टूटे फूटे बर्तन बदल डाले और बदले में नवीन ग्रहण कर लिए हा ! अति आश्चर्य ।

पुन पृ० ८५ पंक्ति २७ से गीता के श्लोक का भावार्थ लिखा है कि "जो भागने से वा शत्रुओं को धोखा देनेसे जीत होती हो तो ऐसा ही करना" ।

शौर्यंतेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धेचाप्यपलायनम् ।
दानमीश्वर भावश्चक्षत्र कर्म स्वभावजम् ॥ १ ॥

उक्त श्लोक गीता के अ० १८ का ४३ वा है उसके इस पदका (युद्धे चाप्यपलायनम्) अर्थ यह है कि 'युद्ध में पीठ नहीं दिखाना' परन्तु स्वामीजी ने

उस का अर्थ (युद्ध में भी इट नि शक रह क उससे कभी न हटना न भागना अर्थात् इस प्रकार से लडना कि जिससे निश्चय विजय होवे आप बचे जो भागने से वा शत्रुओं को धोखा देने से जीत होती हो तो ऐसा ही करना) मन माना लिख दिया ।

पुन पृ० ९१ पक्ति १५ में विवाह की विधि का वर्णन किया सो वर्तमान काल के ईशाईयों के समान मूर्ति (फाटोग्राफ) को देखकर सबध करने का वर्णन किया क्या यह भी किसी वेद का वचन है ?

पुन पृ० ९२ पक्ति १२ मे लिखा है कि "जब वीर्य्य का गर्भाशय मे गिरने का समय हो उस समय स्त्री पुरुष दोनो स्थिर और नासिका के सामने नासिका नेत्र के सामने नेत्र अर्थात् सूधा शरीर और अत्यत प्रसन्न चित्त रहे टिगें नहीं पुरुष अपने शरीर को टाता छोडे और स्त्री वीर्य्य प्राप्ति समय अपान वायु को ऊपर नीचे योनि को ऊपर सकोच कर वीर्य्य का ऊपर आकर्षण करके गर्भाशय में स्थित करे ।

प्यारे पाठक गण क्या सन्यासी लोग शोक कला में भी प्रवीण होते हैं ? और स्वामीजा का यह लेख भी किसी वेदानुकूल है ?

पुन पृ० ९५ पक्ति ६ में लिखा है कि "दिन रात में जब जब प्रथम मिले वा पृथक् हो तब २ प्रीति पूर्वक "नमस्ते" एक दूसरे से करें"

इस पर 'गगतादेव पराजय' पृ० ८ पक्ति ७ में लिखा है कि मुन्शी इन्द्रमणि जी ने हरिद्वार छलेश्वर आदि के वार्तालाप मे स्वामीजी से कहा था कि आप मिलने के समय जो "नमस्ते" करते हो यह अयोग्य है, हरिद्वार में स्वामी जी ने पडित भीमसेन को मध्यस्थ किया उन्होने स्वामी जी के सम्मुख स्पष्ट कह दिया कि मुन्शी जी ठीक कहते हैं परस्पर 'नमस्ते' का कहना अयोग्य है, परन्तु स्वामी को अपने कथन का आग्रह ही रहा फिर मुरादाबाद मे इस विषय पर तीन दिन स्वामी जी से मुन्शी जी का पूर्ण वार्तालाप हुआ पडित भीमसन ने बहुत मनुष्यों के सम्मुख कहा कि हम स्वामी जी से नमस्ते कहते हैं परन्तु वे उत्तर में किसी को नमस्ते नहा कहते अन्त मे स्वामी जी ने मुन्शी जी से कहा कि आपका कथन सर्वथा ठीक है नि सन्देह परस्पर नमस्ते का कहना अयोग्य है, परन्तु फिर भी

नवीन "सत्यार्थ प्रकाश" मे लिख दिया ।

पुन पृ० १०१ पक्ति १ पर जो श्लोक मनुस्मृतिका लिखा उसका अर्थ मन माना लिखा शब्दार्थ और अक्षरार्थ मे प्रतिकूल है ।

पुन पृ० १०३ पक्ति २७ मे पृ० १०४ पक्ति ४ तक यह लेख है, ।

अतपास्त्वनधीयानः प्रतिग्रहरुचिर्द्विजः ।
अम्भस्य श्मप्लवेनैव सह तेनैव मज्जति ॥ १ ॥ मनु०

एक (अतपा) ब्रह्मचर्य्य सत्य भाषणादि तप रहित । दूसरा (अनधीयान) बिना पढा हुआ तीसरा (प्रतिग्रहरुचि) अत्यन्त धर्म्मार्थ दूसरो से दान लेने वाला ये तीनों पत्थर की नौका से समुद्र मे तरने के समान अपने दुष्ट कर्मों के साथ ही दुःख सागर मे डूबते हैं । वे तो डूबते ही हैं परन्तु दाताओ को साथ डुबा लेते हैं ।

इसके प्रतिकूल पडित गौरीशकर वैद्यराज सम्पादक पीयूषवर्षिणी धर्म्म सभा फर्रुखाबाद अपने मासिक पत्र सख्या ४५ भाग ४ मास ज्येष्ठ शुक्ला १५ सम्वत् १९४८ पृ० १५ पक्ति १९ से लिखते हैं कि "न्यायकारों को विचारना चाहिये कि पूर्वोक्त लेखानुसार उक्त ग्रन्थकर्ता किस गति को प्राप्ति हुआ होगा, क्योंकि उससे अधिक अत्यन्त धर्मार्थ दान लेने वाला कोन होगा क्योंकि उसने यहा ताई अत्यन्त धर्म्मार्थ दान लिया है कि कोपीनाधारी से लखपती हो गया था यहा तक तृष्णा प्रबल हुई कि सम्पूर्ण रत्न स्वर्णादि दान देने सन्यासी ही के लिये अपने ग्रन्थ मे लिखे जिसके प्रमाण मे स्वकपोलकल्पित अर्द्ध श्लोक— भी मनु के नाम से धर दिया *

पुन पृ० १०४ पक्ति १५ मे आगे जो लिखा है उसका भी भावार्थ यही है ।

पुन पृ० ११० पक्ति २४ में मनुका निम्न लिखित श्लोक और उसका अर्थ यह लिखा है ।

यौस्त्रीत्वच्छतयोनिः स्याद्गतप्रत्यागतापिद्या ॥
यौनभर्त्रेनभर्त्रासा पुनः सस्कार मर्हति ॥ १ ॥

* यह आधा श्लोक नवीन "सत्यार्थप्रकाश" पृष्ठ १३३ पक्ति २० में लिखा है जिसका वर्णन आगे आयेगा ।

(अर्थ) जिस स्त्री वा पुरुष का पाणिग्रहण मात्र सस्कार हुआ हो और सयोग न हुआ हो अर्थात् अक्षत योनि स्त्री और अक्षत वीर्य पुरुषको उनका अन्य स्त्री वा पुरुष के साथ पुनर्विवाह (*) होना चाहिये किंतु ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य वर्णों में क्षत योनि स्त्री क्षत वीर्य्य पुरुष का पुनर्विवाह न होना चाहिये।

पुन पृ० १११ पक्ति ६ म लिखा है कि द्विजों मे पुनर्विवाह वा अनेक विवाह कभी न होने चाहिए।

पुन पृ० ११३ पक्ति ३० मे लिखा है कि "द्विजो में स्त्री और पुरुष का एक ही बार विवाह होना वेदादि शास्त्रो मे लिखा है द्वितीय वार नहीं"।

पाठक गणो? पक्षपात रहित न्याय करो कि एकही ग्रथमे प्रथम यह लिखा कि अक्षत योनि स्त्री और अक्षत वीर्य्य पुरुष का अन्य स्त्री वा पुरुष के साथ पुनर्विवाह होना चाहिये फिर यह लिखा कि द्विजो में स्त्री और पुरुष का एक ही बार विवाह होना वेदादि शास्त्रों मे लिखा है अब खयाल करने की बात है कि इस लेख में परस्पर कितना विरोध है।

पुन पृ० ११५ पक्ति २७ में जो आधा श्लोक मनुस्मृति का लिखा उसका अर्थ भी मन माना लिख दिया स्वामी जी लिखते हैं कि—

"तामनेन विधानेन निजो विन्देत देवर ॥ मनु० ॥

स्वामी जी का किया हुआ इसका अर्थ यह है कि "जो अक्षत योनि स्त्री विधवा हो जाय तो पति का निज छोटा भाई भी उससे विवाह कर सकता है"

और यथार्थ बात यह है कि यह पूरा श्लोक मनुस्मृति अध्याय ८ का ६९ वा है जो अर्थ सहित इस प्रकार ठीक है।

यस्या म्रियेत कन्याया वाचासत्येकृते पतिः ॥
तामनेन विधानेन निजोविन्देत देवरः ॥ १ ॥

(अर्थ) जिस कन्या को जिस किसी पुरुष को जिह्वा से देनी कह चुके अर्थात् सम्बन्ध जिससे कर चुके और वह पुरुष जिसको कि देने कह चुके यह

(*) जहा यह निशान है वहा तीसरी बार के छपे "सत्यार्थ प्रकाश में" "न" यह विशेष अक्षर स्वामी के शिष्यों ने सर्व साधारण को धोखा देने के लिये बना दिया है असल में नहीं है।

विवाह के प्रथम मृत्यु हो जाय तो उसका निज भ्राता (सगा भाई) उस कन्या से इस विधान करके विवाह करे ।

पुन पृ० ११७ पंक्ति २ में लिखा है कि (प्रश्न) नियोग मरे पीछे ही होता है व जीते पति के भी (उत्तर) जीते भी होता है ।

इसका पादरी टी० गिल्यर्म्स मैनेजर मिशनहौस रिवाड़ी ने निम्न लिखित उत्तर और खण्डन किया है ।

"सत्यार्थ प्रकाश" पुस्तक के जो १८८४ में छपके निकला है ११८ पृ० में दयानन्द यह प्रश्न करता है "क्या पति के जीते जी जैसा उसके मृत्यु के पीछे नियोग हो सकता है ?" वह आपही उत्तर देता है कि हां पुरुष के जीते जी नियोग होता है । हमको विदित है कि दयानन्द का नियोग से क्या अभिप्राय है अर्थात् जब स्त्री और पुरुष नि सन्तान हैं तो वह जो निर्बल नहीं है (इस स्थान में स्त्री का अर्थ है) सन्तान उत्पन्न करने के अभिप्राय से किसी पुरुष के सग प्रसग करे । इस पद्य के पूर्व भाग में उसने बतलाया कि जब उसका पति मर जावे स्त्री को क्या करना चाहिये तब आगे बढ के वह आज्ञा देता है कि अपने पति के जीते जी यदि वह सन्तान उत्पन्न करने के योग्य न होवे तो स्त्रीको क्या करना पड़ता है । वह यह अयोग्य शिक्षा देता है कि नि सन्तान पुरुष की स्त्री अपने पति के जीते जी दूसरे विवाहित पुरुष के सग भोग करे जिससे उसके सन्तान उत्पन्न होवें । इस विलक्षण शिक्षा के प्रमाण वह मनु से नहीं देता ऋग्वेद ही से लिया चाहता है वह उस वेद के मण्डल १० ऋचा १० पद १० के विषय में लिखता है कि यह उसका भारी और निरा प्रमाण है । मैं नहीं कह सकता हूँ कि ऋग्वेद में कोई अनुचित बात नहीं है क्योंकि मैं ऐसी बातों को प्रकट कर सकता हूँ, परन्तु आर्य्य समाज के आदि कर्त्ता दयानन्द ने यह ममता की कि ऋग्वेद ही में यह अनुचित शिक्षा है कि यदि उसका पति निर्बल होवे तो वह स्त्री दूसरे विवाहित पुरुष के सग भोग करे यह भी मैं नहीं कहता हूँ कि हिन्दुओं ने दयानन्द के पहिले यह शिक्षा नहीं सुनी है क्योंकि सैकड़ों वर्ष से वे यह दुष्कर्म करते चले आये । लोग प्रयाग के पण्डे ब्राह्मणों पर यह दोष लगाते हैं और वल्लभाचार्य्य के पन्थ के महाजनों की भी इसी कारण से

बुरी चर्चा फैल रही है। परन्तु मुझे कहना पड़ता है कि दयानन्द से पहिले किसी ने इस निकृष्ण शिक्षा को वेदों से निकालने की ममता नहीं की है वरन आर्य्य समाज के आदि कर्ता ने अपने वेद की इतनी निरादरता की है। परन्तु दयानन्द की यह ममता कि ऋग्वेद में यह घृणित शिक्षा मिलती है निरी मिथ्या है जब दयानन्द ऋग्वेद को जो वह ईश्वरोक्त पुस्तक कहता है ऐसा गुठलाता है और मानो कीचड़ में धमाट लेता है तो उस के विषय में क्या कहना उचित है।

आपको विदित होगा कि दयानन्द के प्रमाण में अर्थात् ऋग्वेद १० मण्डल १० ऋचा १० पद में वक्ता भ्राता है और वह स्त्री जिससे वह बोलता है उसकी भगिनी है। यम अपनी भगिनी वा अपनी यमज भगिनी यमी से सम्भाषण करता है। वर्तमान काल तक कोई हिंदू ऐसा उन्मत्त नहीं हुआ कि ऋग्वेद से यह शिक्षा निकालता क्योंकि जो हिंदू वेद को पढ़ सकता था सो जानता था कि इस पद में यम अपनी यमज भगिनी यमी से बोलता है परन्तु दयानन्द उसपर यह टीका करता है कि वक्तापति और वह स्त्री जिससे वह बोलता है उसकी पत्नी है ऐसा कहने में दयानन्द समझ बूझ कर मिथ्या बोलता है मैं कहता हूं कि इस में सदेह नहीं कि दयानन्द जानता था कि उसके प्रमाण में यम अपनी यमज भगिनी यमी से सम्भाषण करता है सो इस मिथ्या बातों से उसको लिखना पाप है पाप तो है क्योंकि वह उस पुस्तक को गुठलाता है जिसके विषय में वह कहता है कि वह ईश्वरोक्तशास्त्र है और मैं उसका मानने वाला हूँ।

यदि दयानन्द इस दोष से छुटकारा प्राप्ति करना चाहे तो वह केवल इस रीति से हो सकता है कि वे यह वचन सिद्ध करें कि पूर्वोक्त पद में न यम वक्ता है और न यमी से बात करता है परन्तु उस प्रतिवाद को मैं अभी खण्डन करता हूँ।

पहिले पदही को छोड़कर सब से प्राचीन प्रमाण यास्क है। वह अपने निरुक्त ६।५।१० में इस सूक्त के १३ पद का प्रमाण के लिये लिखता है और उसका टीका कार अपनी टीका इस प्रकार से आरम्भ करता है अर्थात यमी यम से बोलती है। कदाचित कोई कहेगा कि टीका कभी आचार्य्य के मूलार्थ के विरोध से होती है इस निमित्त मैं यास्क के निज वचन लिखता हूँ निरुक्त ११।३।१३ में ऋग्वेद के १० मण्डल के १० सूक्त के १३ पद का यह वर्णन करता है कि "यमी

यमचकमेतामप्रत्याचक्त्त" अर्थात यमीने यम के सग भोग करना चाहा उसने अस्वीकार किया । यह साक्षात है क्योंकि यास्क और उसका टीकाकार दोनो मानते हैं कि पूर्वोक्त पद यम और यमी की बात चीत से हैं जिसमे यमी ने यमसे मागा कि यम उस के सग प्रसग करे पर यमने अस्वीकार किया । तो इस ऋचा में निर्बल पति जो अपनी पत्नी को पराये पुरुष के पास भेजे उसका वर्णन कहा है । यास्क के टीका कारने लिखा है कि यम यमी का भ्राता है। आपसे कहना आवश्यक नहीं कि यास्क का निरुक्त वेदाग है इस लिये वह वेद के सदृश प्रमाणित है तो दयानन्द, ऐसा साहस क्यो करता है कि यास्क का जिस का प्रमाण वह मानता है विरोध करता है और कहता है कि इस ऋचा में निर्बल पति का वर्णन है ।

दूसरे यास्क के प्रमाण से कात्यायन के प्रमाण को कुछ कम प्रबलता नहीं रखता है । उसकी ऋग्वेद की सर्वानुक्रमणिका को जिसमे प्रत्येक सूक्त का ऋषि और देवता लिखा है सब लोग प्रमाणित मानते हैं । यह शत पथ ब्राह्मण के श्रौत सूत्रों का आचार्य है और व्याकरण के विषय में पाणिनि के तुल्य है क्योंकि पतञ्जली के महा भाष्य का अभिप्राय यह है कि वह इसी कात्यायन के वार्तिक का अर्थ प्रकाश करे जो उसने पाणिनि के व्याकरण पर लिखा है इस कारण यदि कात्यायन का वचन प्रबल न ठहरे तो किस का प्रमाण मानेंगे अपने सर्वानुक्रमणिका में उसने लिखा है कि ऋग्वेद म १० सूक्त १० का न ऋषि है न देवता वरन् वह विवस्वत के पुत्र और पुत्री यम और यमी का सम्वाद है । (वैवस्वतोर्यमयम्यो सम्वाद) हे महाशय ऋचा के प्रमाण को छोड कर यास्क और कात्यायन के सदृश क्या प्रमाण ठहरेगा । परन्तु हम अभी ऋचा ही का प्रमाण लाते हैं ।

तीसरा–यम और यमी के व्यक्ति वाचक नाम इस सूक्त मे तीन तीन बार मिलते है । १३ पद मे यम का और १४ पद में यमी का सम्बोधन मिलता है ये दोनो पिछले पद है । पद पाठ से विदित होता है कि सम्बोधन कारक को छोड़ और कारक का पता इन पदों मे नहीं मिलता । इससे सम्बोधनों के नाम अर्थात् यम और यमी विदित होते हैं ।

उनके सम्बन्ध के विषय मे २ पद मे यम यमी को अपनी सलक्ष्मा कहता है अर्थात् कुटम्बिनी, फिर चौथे पद में यों लिखा है कि 'गन्धर्वो अप्स्वप्याचयोषा

मानो नाभि परम जामिनन्नौ' अर्थात् गन्धर्व और उसकी अप्सरा पत्नी उनमें हम दोनों की उत्पत्ति हुई इस कारण हम परम जामि अर्थात् सगोत्र हैं। पांचवें पद में यमी कहती है कि स्रष्टा ने हम दोनों को गर्भ में पति और पत्नी बनाया (गर्भे नुनीजनिताद्म्पतीकरेवमत्वष्टा) और इस कारण कि वे मिथुन हैं उनका स्वामी और स्त्री होना चाहिये। फिर सातवें पद में यमी कहती है कि 'दिवा पृथिव्या मिथुना सम्बन्धू' अर्थात् स्वर्ग और पृथ्वी पर मिथुन का बड़ा सम्बन्ध है और फिर वह चाहती कि यम से ऐसा व्यवहार करे कि मानो वे सगोत्रवा जामी नहीं थे। १० पद में यम उत्तर देता है कि 'यत्र जामय कृण्वन्नजामि' अर्थात् अभी से सगोत्र लोग वह कर्म करेंगे जो गोत्र धर्म का अयोग्य है। ११ पद में यमी यम का उलाहना करती है कि वह भ्राता होने पर भी उसकी सहायता नहीं करता है और यद्यपि वह उसकी स्वसा व भगिनि है तथापि वह उस पर विपत्ति आने देता है। १२ पद में यम अपनी भगिनी के सग प्रसग करने से मुकर जाता है क्योंकि वह कहता है कि 'पापमाहुर्य स्वसार निगच्छात न से भ्राता सुभगेवष्टयेतत्' अर्थात् लोग उसको पापी कहते हैं जो अपनी भगिनी के सग गमन करता है तेरा भ्राता हे सुन्दरी इसको नहीं चाहता। यह सूक्त अथर्व वेद में भी मिलता है और उसमें इस पद का अधिक विस्तार है और यम का मुकर जाना दृढता और गभीरता के साथ लिखा गया है। इस लिये मैं कहता हूं कि यदि कोई यम और यमीके सम्बध के विषय में सदेह करे तो उसको सिड़ी कहना चाहिये।

इस प्रकार से मैंने स्पष्ट प्रकट किया है कि इस सवाद में वक्ता यमज भ्राता और भगिनी है। यमी अभिलाषी है कि उसका भ्राता यम उसके सग भोग करे। यम इस कुकर्म से मुकर जाके उसको जताता है कि ऐसा करने से पाप होगा पर उससे कहता है कि वह दूसरे पुरुष की अभिलाषा करके उसके सग प्रसग करे। यही पद स्वामी दयानन्द उल्लेखन देता और मिथ्या अनुवाद करता है और यह शिक्षा देता है कि जब उसका पति निर्बल है तो स्त्री को उचित है कि वह किसी विवाहित पुरुष के सग सतान उत्पन्न होने के निमित्त प्रसग करे।

पुन नवीन "सत्यार्थप्रकाश" के पृ० ११७ प० १ में ऋग्वेद के नाम से यह आधा मत्र लिखा "अन्यमिच्छस्वसुभगेपतिमत्" और इसका अर्थ तो ओ सन

मे आया सो लिख मारा । खैर हम विशेष लिखना उचित नहीं समझते सारा पूरा पूरा पादरी टी० विल्यम्स साहब के पूर्वोक्त लेख मे भले प्रकार आचुका है।

पुन पृष्ठ १४७ प० १७ मे मनु का यह श्लोक लिखा है।

प्रोषितो धर्म्मकार्य्यार्थं प्रतीक्ष्योऽष्टौनरः समाः ।
विद्यार्थं षड्यशोऽर्थंवा कामार्थं त्रीस्तुवत्सरान् ॥ १ ॥

इसका मन माना अर्थ यह लिखा कि "विवाहित स्त्री जो विवाहित पति धर्म के अर्थ परदेश गया हो तो आठ वर्ष विद्या और कीर्ति के लिए गया हो तो छ, और धनादि कामना के लिये गया हो तो तीन वर्ष तक बाट देख के पश्चात् नियोग करके सन्तानोत्पत्ति कर ले जब विवाहित पति आवे तब नियुक्त पति छूट जाय" ।

प्रिय पाठक महाशयो ! विचार तो करो उपरोक्त श्लोक मे किस अक्षर से नियोग और सन्तानोत्पत्ति तथा नियुक्त पति के त्याग का अर्थ निकलता है।

प्रकट हो कि पूर्वोक्त श्लोक मनुस्मृति के नवमाध्याय का ७६ वा है, इसका भावार्थ बिना ऊपर के ७४ । ७५ श्लोक शामिल किये नहीं निकलता इस लिये उनका भी अर्थ लिखते हैं।

कार्य वाला पुरुष स्त्री का अनाज कपड़ा आदि प्रबन्ध कर के परदेश जाय अन्न वस्त्र के अभाव में शीलवती भी बिगड़ ही जाती हैं । मनु० अ० ९ श्लोक ७४

भोजन वस्त्र का प्रबन्ध कर के गए पति की स्त्री शृङ्गारादि क्रिया से रहित होकर अपना गुजारा करे दूसरे के मकान पर न जाय और जो कदाचित् पति अन्न वस्त्रादि का प्रबन्ध नहीं भी कर गया हो तो चर्खा सूत कात चक्की पीस कर गुजारा करे । मनु० अ० ९ श्लोक ७५

अब श्लोक ७६ का अर्थ भी ठीक २ इस प्रकार है सुनिये—

धर्म कार्य के अर्थ गए पति की स्त्री आठवर्ष तक पूर्वोक्त आश्रयसे गुजारा करे विद्या पढने के अर्थ गए पति की स्त्री छ, वर्ष तक जो रोजगार के लिये गया हो तो तीन वर्ष राह देखकर फिर जहां उसका पति हो वहां चली जाय ॥ ७६ ॥

अब न्यायवान् विचार लेवें कि स्वामी जी ने कैसा तात्पर्य लिया है।

पुन पृष्ठ १८० प० १ मे पराशरस्मृति के वचनों का झूठा और स्वार्थी

मनुष्यों का किया माना है परन्तु उनके झूठ होने का कोई भी प्रमाण नहीं लिखा।

पुन पृ० १२६ प० ८ में लिखा है कि "जो देहधारी है वह सुख दुःख की प्राप्ति से पृथक् कभी नहीं रह सकता और जो शरीर रहित जीवात्मा मुक्ति में सर्व व्यापक परमेश्वर के साथ शुद्ध होकर रहता है तब उसको सांसारिक सुख दुःख प्राप्त नहीं होता"।

इसके प्रतिकूल पृ० २८१ प० २० में लिखा है कि—

मुक्ति में जाना वहाँ से पुन आना ही अच्छा है। क्या थोड़े से कारागार से जन्म कारागार दंड वाले प्राणी अर्थात् फाँसी को कोई अच्छा मानता है? जब वहां से आना ही न हो तो जन्म कारागार से इतना ही अन्तर है कि वहां मजूरी नहीं करनी पड़ती और अन्त राय होजाना समुद्र में डूब मरना है। आहा! क्या अच्छी समझ है। और इस लेख से यह भी सिद्ध होता है कि सर्व शक्तिमान परम पूज्य परमेश्वर भी सदैव के लिये कारागार में है।

पुन पृ० १३० पंक्ति २९ में मनुस्मृति के प्रमाण से लिखा है कि "मुक्ति रूप अक्षय आनन्द का देने वाला सन्यास धर्म है"

पुन पृष्ठ २३९ पंक्ति १४ में गीता के प्रमाण से लिखा है कि "मुक्ति नहीं है कि जिससे निवृत्ति होकर पुन संसार में कभी नहीं आवा (उत्तर) यह बात ठीक नहीं क्योंकि वेद में इस बात का निषेध किया है।

पुन पृष्ठ ३३१ पंक्ति २६ में लिखा है कि "वेद शास्त्र विरुद्ध असत्य बात लिखना व्यास सदृश विद्वानों का काम नहीं किंतु यह काम विरोधी स्वार्थी अविद्वान लोगों का है"।

पुन पृष्ठ ३३० पंक्ति १५ से लिखा है, कि "क्योंकि व्यास कहते हैं, वारपार की मध्य रेखा को अर्थात् ऋग्वेद के आरम्भ से लेकर अथर्व वेद के पार पर्य्यन्त चारों वेद पढ़े थे—और शुकदेव तथा जैमिनि आदि शिष्यों को पढ़ाये भी थे।"

फिर पृष्ठ ३५२ पंक्ति १ में लिखा है कि "व्यास मुनि ने शारीरिक सूत्रों में सब ज्ञानकाण्ड यथानुक्रम लिखा है"।

अब न्यायी पुरुषों को पक्षपात रहित शुद्ध हृदय और विमल बुद्धि से

ध्यान पूर्वक विचारना चाहिये कि जब व्यास जी का चारो वेदके पूर्ण विद्वान होना और उनके शारीरिक सूत्रों में सब ज्ञानकाण्ड वेदानुकूल लिखना स्वीकार किया है तो फिर व्यासकृत शारीरिक सूत्र के पूर्वोक्त वचन को वेद विरुद्ध ठहराना प्रत्यक्ष परस्पर विरोध है वा नहीं ।

इसके अतिरिक्त मनुस्मृति को भी "सत्यार्थ प्रकाश" में वेदानुकूल स्वीकार किया है, और उसी के प्रमाण से मोक्ष को अक्षय माना है, फिर उसी को वेद विरुद्ध कह दिया भला कहो तो सही मनुस्मृति की वेदानुकूलता क्योंकर स्थित रही ।

और जब मोक्ष अक्षय है जैसा कि निश्चय में है तो फिर पृ० २४० पंक्ति १९ में जो लिखा है कि महाकल्प के पश्चात मुक्ति सुख को छोड़ के संसार में आता है यह लिखना किस आधार पर है मालूम नहीं ? और इससे अक्षय शब्द का अर्थ तो सर्वथा नष्ट हो गया ।

पुन पृ० १३० पंक्ति ३० व पृ० १३१ पंक्ति १ में यह लिखा कि "संन्यास ग्रहण का अधिकार मुख्य करके ब्राह्मण का है" ।

इस पर हमारा यह प्रश्न है कि ब्राह्मण गुण कर्म वाला होगा कि जाति कर्म वाला यह स्पष्ट और शुद्ध लिखना था ।

पुन पृ० १३३ पंक्ति २० । २१ में निम्न लिखित आधा श्लोक मनु के नाम से लिखा ।

विविधानिच रत्नानि विधिरूपपादयेत् ॥

प्रथम तो यह पद मनुस्मृति में किसी स्थान पर भी नहीं है उक्त पुस्तक आज कल घर घर में मिलता है और सब कोई उसको देख सकते हैं, दूसरे यह कितने आश्चर्य की बात है कि प्रथम बार के छपे पुस्तक "सत्यार्थ प्रकाश" में तो मनुस्मृति के लेखानुसार सन्यासी को भिक्षा पात्र तथा वृक्ष मूल निवासी लिखा और अब नवीन पुस्तक में नवीन अर्द्ध श्लोक लिखकर यह सिद्ध किया कि "नाना प्रकार के धन रत्न सुवर्णादि सन्यासियो को देवे" इस स्थान पर स्वामी जी इतना लिखना भूल गये कि यह अर्द्ध श्लोक नवीन शुद्ध मनुस्मृति का है जिससे पाठक चक्कर में आकर चकित होते ।

पुन पृ० १३४ पक्ति २७। २८ मे एक चाणक्य नीति शास्त्र के श्लोक का अर्थ बदलें कर विद्वान नाम सन्यासी का ही माना है क्या जो मनुष्य गृहस्थाश्रम मे रहकर उत्तम विद्या पढे वह विद्वान नहीं कहलाता ?

पुन. पृ० १३७ के प्रथम से ही आर्य्य कुल कमल दिवाकर श्रीमान राणा-साहिब उदयपुराधीश को पार्लियामेण्ट नियत करने की चाट लगाने की चाह मे जो कुछ मन में आया अन्धाधुन्ध लिख मारा है।

पुन पृ० १३८ पक्ति १३। १४। १५ मे ऋग्वेद का मंत्र लिख उसके अर्थ मे लिखा है कि ईश्वर उपदेश करता है कि हे राज पुरुषो तुम्हारे आयुध तोप बन्दूक, धनुष, बाण तलवार आदि २।

इस विषय में पूर्वार्द्ध भाग में यथार्थ और सविस्तार लेख लिख कर हमने यह स्वत सिद्ध कर दिया है कि स्वामी जी का किया अर्थ यथार्थ नहीं है इस लिये अब इस स्थान पर विशेष लिखना व्यर्थ समझते हैं।

पुन पृ० १४८ पक्ति ४ से लिखा है कि "आप सर्वदा राज कार्य्य मे तत्पर रहे अर्थात् यही राजा का सन्ध्योपासनादि कर्म है जो रात दिन राज कार्य मे प्रवृत्त रहना और कोई राज काम बिगड़ने न देना।

धन्य महाराज! बडा ही सुन्दर उपदेश है नवयुवक राजकुमारों को कर्म्म रहित करने का इससे उत्तम और क्या उपदेश होगा परन्तु ध्यान रहे कि श्रीमान् महाराणा साहिब सज्जनसिंह पर इस लेख का कुछभी प्रभाव न हुआ क्योंकि प्रथ-मतो वह स्वत ही जानकार और कर्मेष्टी पुरुष थे। दूसरे उनके राज प्रबन्ध मे ऐसे २ उत्तम कर्मचारी गण हैं जो सदैव काल महामान्य महाराणा जी को शुद्ध सना-तन कुलाम्नाय धर्म्म पर चलने का परामर्श देते रहते थे।

पुन पृ० १६५ पर राजा लोगो को न्याय करने की रीति मनुस्मृति के लेख नुसार वर्णन की किंतु यह न समझा कि कल्युग मे पराशर स्मृतिका बचन प्रमाण विशेष है और इसमे उसमे अनेक बातो का भेदाभेद है।

पुन पृ० १८१ पक्ति १६ मे यह प्रश्नोत्तर लिखा है कि (प्रश्न) ईश्वर सर्वशक्तिमान है या नहीं ? (उत्तर) है परन्तु जैसा तुम सर्व शक्तिमान शब्द का अर्थ जानते हो वैसा नही ॥ इत्यादि ॥

पाठक वृन्द, ध्यान करना चाहिये कि जो सर्व शक्तिमान है उसको कोई क्योंकर बदल कर पृथक् शक्तिमान सिद्ध कर सक्ता है, जो अर्थ स्वामीजी ने इस सर्वशक्तिमान शब्द से सिद्ध किया है उससे तो ईश्वर की शक्ति नष्ट प्राय होती है, और इसके प्रतिकूल पृ० १९२ पंक्ति २१ मे लिख दिया कि जीव कर्म करने मे स्वतन्त्र है।

पृ० ११ पंक्ति १९ मे "अग्नि" नाम लौकिक पदार्थ का कहा था उसके प्रतिकूल पृ० १८३ पंक्ति १७ मे "अग्नि" नाम ईश्वर का ही बाची कहा है और इसी प्रकार सम्पूर्ण पुस्तक में अनेक स्थान पर माना गया है।

पुन पृ० १८६ पंक्ति १८। १९ में यह लिखकर कि–

समाधिनिर्धूतमलस्यचेतसो निवेशितस्यात्मनियत्सुखंबहिः।
नशक्यते वर्णयितुं गिरोतदा स्वयन्तदन्तःकरणेन गृह्यते ॥१॥

पंक्ति २० में लिखा है कि यह उपनिषद का वचन है परन्तु यहं लिखना स्वामी जी का सर्वथा गूढ पूर्वोक्त बचन दशो उपनिषदों में कहीं भी नहीं है।

पुन पृ० १९३ पंक्ति १८ में लिखा है कि "ईश्वर को त्रिकाल दर्शी कहना मूर्खता का काम है।

न्यायवानों को विचार करना चाहिये, कि ईश्वर त्रिकाल दर्शी नहीं तो और कौन है ?

पुन पृ० १९५ पंक्ति १७ मे लिखा है कि–

यआत्मनितिष्ठन्नात्मनोन्तरोयमात्मान वेद यस्यात्मा
शरीरम्। आत्मनोन्तरोयमयति सत आत्मान्तर्याम्यमृतः ॥१॥

इसको स्वामी जी लिखते हैं कि यह "बृहदारण्यक" का वचन है महर्षि याज्ञवल्क्य अपनी स्त्री मैत्रेयी से कहते हैं कि मैत्रेयी जो परमेश्वर आत्मा अर्थात् जीव मे भिन्न और जीवात्मा से भिन्न है ॥ इत्यादि ॥

प्यारे पाठकगण! यह लिखना भी स्वामी जी का सत्य नहीं है, क्योंकि पूर्वोक्त श्रुति बृहदारण्यक की नहीं, किन्तु शतपथ की है।

पुन पृ० १९० पंक्ति २५ से लिखा है कि–

जीवेशौचविशुद्धाचिद्विभेदस्तुनयोर्द्वयोः ।
अविज्ञातचितोर्योगः षडस्माकमनादयः ॥ १ ॥
कार्योपाधिरयंजीवः कारणोपाधिरीश्वरः ।
कार्य्यकारणताहित्वापूर्णबोधोऽवशिष्यते ॥ २ ॥

स्वामी जी लिखते हैं कि ये सक्षेप शारीरिक भाष्य मे कारिका है परन्तु यह लिखना स्वामी जी का सर्वथा झूठ है क्योंकि पूर्वोक्त कारिका सक्षेप शारीरिक और शारीरक भाष्य मे कहीं भी नहीं है।

पुन पृ० २०४ पक्ति २३ मे लिखा है कि "जिस मन्त्रार्थ का दर्शन जिस २ ऋषि को हुआ और प्रथम ही जिसके पहिले उस मत्र का अर्थ किसी ने प्रका शित नहीं किया था" दर्शन साकार वस्तु का होता है शब्दार्थ निराकार है, मालूम नहीं यह क्या गोल माल है।

पुन पृ० २०५ पक्ति १६ मे लिखा है (प्रश्न) वेद की कितनी शाखा हैं (उत्तर) एकसौ सत्ताईस।

प्रथम जब ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका छपी उसमे बिना किसी प्रमाण के ११२७ ही वेद की शाखा बचन की थी और वेदार्थ प्रकाश के पचम भाग 'नामक' के पृ० ३ पर लम्बा चौडा लेख लिख वेद की ११३१ शाखा सिद्ध की अब प्रश्न यह है कि इनमे से किसको प्रमाण किया जाय ? इसका उत्तर यदि कोई इस प्रकार देवे कि पिछले लेखों को छोडकर नवीन "सत्यार्थ प्रकाश" को ही सत्य मानो, सो देखो यही सही अब इसी के पृ० ६०१ पं० १५ मे वेदों की ११२७ शाखा लिखी है सो क्या यह पूर्वापरि विरोध नहीं है ?

पुन पृ० २०९ पं० २६ मे जो यह श्रुति लिखी है "तद्यथावटु न्यग्रो जायेति" स्वामी जी इसको तैत्तिरीयोपनिषद् का वचन लिखते हैं सो सर्वथा झूठ है क्योंकि उक्त श्रुति छान्दोग्य की है।

पुन पृ० २११ पं० २६ से लिखा है कि "सोकामयत्ता और कामना करता हुआ कि मैं बहुरूप अर्थात् जगदाकार हो जाऊ सकल्प मात्र मे सब जगद्रूप बन गया"। इसके प्रतिकूल अनेक स्थान पर ईश्वर को इच्छा कामना रहित सिद्धान्त

है, देखो पृ० २१७ पं० ५ । ६ आदि० ।

पुन पृ० २२४ पं० ७ से प्रश्नोत्तर लिखा है कि—

(प्रश्न) मनुष्यों की आदि सृष्टि किस स्थल पर हुई ।

(उत्तर) त्रिविष्ट अर्थात् जिसको तिब्बत कहते हैं ।

(प्रश्न) फिर वे यहाँ से कैसे आए ?

(उत्तर) जब आर्य और दस्युओं में अर्थात् विद्वान् जो देव अविद्वान् जो असुर उनमे सदा लड़ाई बखेडा हुआ किया जब बहुत उपद्रव होने लगा तब आर्य लोग सब भूगोल मे उत्तम इस भूमि के खड को जान कर यहा आकर बसे इसीसे इस देश का नाम आर्यावर्त हुआ ।

इसके प्रतिकूल पृ० ६०४ पं० २३ से लिखा है कि "आर्यावर्त" देश इस भूमि का नाम इस लिए है कि इसमें आदि सृष्टि से आर्य लोग निवास करते हैं, परन्तु इसकी अवधि उत्तर में हिमालय दक्षिण मे विन्ध्याचल पश्चिममे अटक और पूर्व में ब्रह्म पुत्रा नदी है इन चारों के बीच में जितना देश है उसको "आर्यावर्त" कहते और जो इनमें सदा रहते हैं उनको भी आर्य कहते हैं ।

अब विचारवान् पुरुषो को विचारना चाहिए कि एक ग्रन्थ और अनेक प्रकार की सम्मति फिर किस पर विश्वास किया जाय ।

पुन दूसरी बार की छपी सस्कारविधि के पृ० १२९ में लिखा कि पृथ्वी स्थिर है और नवीन "सत्यार्थप्रकाश" पृ० २२८ पं० २९ में चित्रलिया घूमती है ।

पुन पृ० २२९ पं० १ से लिखा है कि—

(प्रश्न) कितने ही लोग कहते हैं कि सूर्य घूमता है और पृथ्वी नहीं घूमती दूसरे कहते हैं कि पृथ्वी घूमती सूर्य नहीं घूमता इसमें सत्य क्या माना जाय ?

(उत्तर) ये दोनों आधे झूठे हैं क्योंकि वेद में लिखा है कि—

अयंगौपृश्निरक्रमी दस दन्मातरंपुरः । पितरं च प्रयन्त्स्वः ।

यजु० अ० ३ मं० ६॥-

अर्थात् यह भूगोल जल के सहित सूर्य के चारो ओर घूम जाता है इस लिए भूमि घूमा करती है ।

पाठकवृन्द ! स्वामीजी महाराजने पूर्वोक्त मन्त्र के अर्थ को ऐसा भ्रष्ट किया कि जो संस्कृत में सारस्वत मात्र को भी जानता होगा तो वह स्वामी जी के इस छल से वञ्चित न रहेगा, देखिये अर्थ बदला सो बदला अनेक शब्द भी छोड़ दिये, भला कहो तो सही उक्त मन्त्र में 'मानस्पुर पितर, स्व' यह जो लिखा है इसका अर्थ क्यों छोड़दिया, इस विषय मे विस्तार सहित दूसरे भागमें लिखा जायगा ।

पुन स्वामी जी पृ० २३६ मे लिखते हैं कि जीव मुक्त होकर सुखको प्राप्त होता है ।

और ब्रह्म रहता है और जीव की मुक्ति यह है कि दुखों से छूट के आनन्द स्वरूप सर्व व्यापक अनन्त परमेश्वर मे जीव का आनन्द में रहना, इसमे हमको शंका होती है कि वह मुक्त जीव ईश्वरकी ज्योति में मिल जाता है या उसीमे व्याप्त रहता है पर देश मे या सर्व देश मे मिल जाता है, और निराकार ईश्वर मे साकार जीव किस तरह मिल सकता है । और मुक्ति का लक्षण लिखा है वो भी हमारी समझ में ठीक नहीं है क्योंकि सुख दुःख दोनों ही कर्माधीन हैं और ईश्वर भी जीव को सुख दुःख कर्माधीन देता है जब ये जीव दुःख देने वाले कर्म से छूट गया तथापि आपके कथन से सुख देने वाले कर्मों से नहीं छूटा तो मुक्ति किस तरह समझी जाय यदि कहोगे कि सर्व कर्म से छूट के अतीन्द्रिय सुख भोगता है तो सम्पूर्ण कर्म से रहित सिद्ध हुआ पश्चात् संसार मे किस तरह आ सकता है और ईश्वर किस तरह ला सकता है क्योंकि जीव को ईश्वर कर्म के बिना सुख दुःख नहीं दे सकता और मुक्ति होने के बाद जीव के कोई कर्म बाकी नहीं रहते न उस स्थान पर नवीन कर्म का बन्ध, क्योंकि मोक्ष मे जीव निष्काम और अशरीर है तब कर्म बन्ध के बिना जीव को ईश्वर मुक्ति से संसार में सुख दुःख देने के लिए क्योंलाया? बिना अपराधके कोई सामान्य राजा भी किसी को दंड नहीं देता तो फिर जिसका नाम न्यालु न्यायकारी ईश्वर है वह ऐसा अन्याय क्योंकर करे ?

पुन पृ० २५९ प० ८ मे लिखा है "ब्राह्मण के सोलहवें, क्षत्रिय के बा ईसवें और वैश्य के चौबीसवें वर्ष में केशान्त कर्म और मुण्डन होजाना चाहिये अर्थात् इस विधि के पश्चात् केवल शिखा को रख के अन्य दाढी मूछ और शिर के बाल सदा मुंडवाते रहना चाहिये अर्थात् पुन कभी न रखना और जो शीत

प्रधान देश हो तो काम चार हैं चाहें जितने केश रक्खे और जो अति डण्ण देश हो तो सब शिखा सहित छेदन करा देना चाहिये क्योंकि शिर में बाल रहने से उष्णता अधिक होती है और उससे बुद्धि कम हो जाती है डाढी मूछ रखने से भोजन पान अच्छे प्रकार नहीं होता और उच्छिष्टभी बालों में रहजाता है।

अब हम पूछते हैं क्या पूर्वोक्त लेख में गोलमाल के व्यतिरिक्त किसी कार्य की सिद्धी भी है, और उसका कौनसा वचन मानने योग्य है।

पुन पृ० २१३ पुराने "सत्यार्थप्रकाश" तथा नवीन के पृ० २६४ प० २० तथा पृ० २७० प० १९। २०। २१। २२ में यह आज्ञा की है कि चारों वर्ण के प्राणियों का एक ही स्थान पर साथ भोजन होना चाहिये चौका धोती छूआछूत व्यर्थ है" परन्तु इस लेख में किसी वेद शास्त्र का प्रमाण नहीं दिया।

पुन पृ० २६६ प० २८ में यह वचन लिख कर "बर्जयेन्मधुमांसं च" मनु०।

इस का अर्थ यह लिखा है कि "जैसे अनेक प्रकार के मद्य, गाजा, भग, अफीम आदि" प्यारे पाठक गण पूर्वोक्त पद का स्पष्ट अर्थ यह है कि शहद और मांस त्यागने, देखो गाजा, आग, अफीम तो स्वामीजी ने शहद का अर्थ लगाया परन्तु मांस का अर्थ कहा गया? इस की बनावट कुछ अवश्य करनी चाहिये थी।

पुन पृ० २७८ प० १४ में स्वामीजी "मेक्समूलर साहिब" के विषय में लिखते हैं कि वह हमारे देश की सुनी सुनाई टूटी फूटी संस्कृत जानता है और जर्मन देश में संस्कृत चिट्ठी का अर्थ करना किसी को नहीं आता, यह वचन स्वामीजी का मान के उदय और द्वेष के कारण से है।

प्रथम बार के छपे "सत्यार्थप्रकाश" में अनेक ठिकानों पर मांस खाने की और होम करने की आज्ञा दी अब नवीन "सत्यार्थप्रकाश" पृ० २८७ प० ५ में लिखते हैं कि मांस भक्षण करने, मद्य पीने, परस्त्री गमन करने आदि में दोष नहीं है यह कहना छोकड़ा पन है क्योंकि बिना प्राणियों के पीड़ा दिये मांस प्राप्त नहीं होता और बिना अपराध के पीड़ा देना धर्म्म का काम नहीं। प्रथम बार की छपी "आर्य्याभिविनय" के पृ० ३७ पर लिखा है कि हे ईश्वर (मनसावाचा कर्मणा, अज्ञान से जो पाप हम से हुआ उन को क्षमा कर इस के प्रतिकूल नवीन "स

स्वार्थप्रकाश' पृ० ३२६ प० ५ में लिखदिया कि 'पाप कभी नहीं कहीं छूट सकता, बिना भोगे अथवा नहीं कटते' बस जब पाप बिना भोगे कटते वा छूटते नहीं फिर तो प्रार्थना करनी सर्वथा व्यर्थ है।

पुन पृ० ३३८ प० ६ में भागवत के प्रमाण से लिखा है कि प्रहलाद के बाप हिरण्यकश्यपने 'एक लोहे का खंभा आगी मे तपा के उसमे बोला जो तेरा इष्ट देव राम सर्वा हो तो तू इस को पकडने से न जलेगा प्रहलाद पकडन को चला मन में शका हुई जलने से बचूगा वा नहीं? नारायण ने उस खंभे पर छोटी २ चीटियो की पक्ति चलाई'।

यह लिखना स्वामीजी का सर्वथा झूठ है भागवत मे लोह का खम्भा और उस पर चीटियों का चलना कहीं भी नहा लिखा।

पुन पृ० ३३८ पक्ति २८ में 'रथेनवायुवेगेनजगामगोकुलप्रति' यह पद भागवत का बतला कर उस पर मन मानी टीका की है परतु हमको आश्चर्य्य इस बात का है कि यह वचन स्वकपोल कल्पित बनाकर स्वामीजी को क्या लाभ हुआ वर्तमान समय मे भागवत घर २ मिलता है, और उक्त पुस्तक म उक्त पद कहीं भी नहीं है।

पुन पृ० ३४३ पक्ति १६ पर "छायत्यर्कमिन्दुर्निधुर्भूमिभा" इस पद को लिख कर स्वामीजी यह वचन सिद्धान्त शिरोमणि का बतलाते हैं, परतु सिद्धात शिरोमणि मे यह पद कहीं भी नहीं है।

सम्वत १९३३ की छपी सस्कारविधि पृ० १४९ पक्ति २४ मे यह मत्र

नमः शभवाय च मयोभवायच नमः शकरायच
मयस्करायच नमः शिवायच शिव तरायच॥

उक्त मत्र में शिव को ईश्वर मान कर नमस्कार किया और इस के प्रतिकूल नवीन "सत्यार्थप्रकाश" पृ० ३०५ म "अग्नय शिवाय" इस को बुग लिख दिया।

जिन शिष्य लोगों की सहायता से स्वामी जी ने आर्यसमाज लाहौर और अमृतसर में स्थापित होकर सम्पूर्ण पञ्जाब म उन्नति का पाया उनके प्रथम गुरु प्रसिद्ध श्री नानक साहब को नवीन "सत्यार्थप्रकाश" पृ० ३६२ प० १० मे मलीन

शब्दों में लिख कर दम्भी तक बतलाया सो नेकी का बदला यही था ।

पुन पृ० ३९६ पक्ति ५ में पृ० ४०० तक स्वामीजी ने एक "आर्य्यावर्त्त देशीय "राज वशावली" लिखी है उसकी समीक्षा आगे चलकर दूसरे भाग में लिखी जयगी ।

अब तो पृ० ४०१ से पृ० ४७० तक (द्वादश समुल्लास) के अतिरिक्त पृ० १ से लेकर पृ० ६०८ तक जो कुछ जैन धर्म्म के विषय में स्वामीजी ने लिखा है इसका उत्तर लिखा जाता है, इसके पीछे पृ० ४७१ से लेकर पृ० ६०८ तककी समीक्षा लिख यह लेख पूरा करेंगे ।

इस स्थान पर यह लिख देना भी उचित है कि नवीन "सत्यार्थ प्रकाश" पृ० ४ पक्ति १७ से पक्ति २९ तक स्वामी जी ने सर्व दर्शनादि व्यर्थ पुस्तकों द्वारा जो गडबडाध्याय मचाया है सो सर्वथा व्यर्थ ही समझना चाहिये यह लेख यह है ।

यद्यपि जो १२ (बारहवें) समुल्लास में चार्वाक का मत जो इस समय क्षीणाऽवस्था है और यह चार्वाक बौद्ध जैन से बहुत सम्बन्ध आप्तेश्वर वादादि में रखता है यह चार्वाक सबसे बडा नास्तिक है उसकी चेष्टा का रोकना अवश्य है क्योंकि जो मिथ्या बात न रोकी जाय तो ससार मे बहुत से अनर्थ प्रवृत्त हो जाय चार्वाक का जो मत है वह बौद्ध और जैन का मत है वह भी १२ वें समुल्लास में सक्षेप से लिखा गया है, और बौद्धों तथा जैनियों का भी चार्वाक के मत के साथ मेल है और कुछ थोडा सा विरोध भी है, और जैन भी बहुत से अश में चार्वाक और बौद्धों के साथ मेल रखते हैं और थोडी सी बातों मे भेद है । इस लिये जैनों की भिन्न शाखा गिनी जाती है यह भेद बारहवें समुल्लास मे दिखलाया है यथायोग वहीं समझलेना जो इसका भिन्न है सो २ बारहवें समुल्लास में दिखलाया है बौद्ध और जैन मत का विषय भी लिखा है इनमे से बौद्धो के दीप वंशादि प्राचीन ग्रन्थों में बौद्धमतसग्रह सर्वदर्शनसग्रह में दिखलाया है, उसमें से यहा लिखा है ।

पाठक वृन्द अब हम नवीन "सत्यार्थप्रकाश" की भूमिका से लेकर अत तक फिर तुम्हारा ध्यान दिलाना चाहते हैं, परन्तु इसमें केवल उसी लेख पर ध्यान दिलाया चाहते हैं जो "जैनधर्म्म से" सम्बन्ध रखता है ।

छोटे २ ग्रामों के रहने वाले बहुधा सीधे सादे अनेक मनुष्य अपने ग्रामकी चौपाड़ में बैठकर उसी ग्राम के किसी मुखिया मनुष्य से जब कभी यह प्रश्न करें कि आज कल हमारे देश में राज किसका है ? और सबसे बड़ा हाकिम कौन है ? तब वह मुखिया मनुष्य यद्यपि बिल्कुल चाहे कुछ भी न जानता हो परन्तु मुखिया होने के अभिमान से आनकर उत्तर देता है कि सम्पूर्ण हिन्दुस्तान और लन्दन में कम्पनी साहिब का राज है और कम्पनी साहिब एक स्त्री है जो लन्दन ही में रहती है, उसके दो पुत्र हिन्दुस्तान में रहते हैं एक बड़ा जंगी लाठ दूसरा छोटा मुल्की लाठ है, बड़ा कलकत्ते छोटा सिमलामें रहता है, जंगी लाठ फौज सिपाह का बन्दोबस्त रखता है, मुल्की लाठ धरती का रुपया जिमीदारों से छोटे हाकिमों द्वारा वसूल कराकर लन्दन भेजता रहता है, ॥ इत्यादि ॥

इसी प्रकार नवीन 'सत्यार्थप्रकाश' पृ० ४ प० २९ से आगे का निम्न लिखित लेख जो स्वामीजीने जैन धर्म्म विषय में लिखा सो जानना लेख यह है, ।

जैनियों के निम्न लिखित सिद्धान्तों के पुस्तक हैं उन में से ४ चार मूल सूत्र जैसे १ आवश्यक सूत्र २ विशेषावश्यक सूत्र ३ दशवें कालिक सूत्र और ४ पाक्षिक सूत्र। ११ ग्यारह अङ्ग, जैसे १ आचाराङ्ग सूत्र, २ सुयंटाँग सूत्र, ३ थाणाग सूत्र ४ समवायाग सूत्र, ५ भगवती सूत्र, ६ ज्ञाता धर्म कथासूत्र ७ उपासक दशासूत्र ८ अन्तगड़दशा सूत्र, ९ अनुतरोववाई सूत्र १० विपाक सूत्र, और ११ प्रश्न व्याकरण सूत्र, १२ बाहर उपाग, जैसे १ उपवाई सूत्र २ राजप्सैनी सू० ३ जीवाभिगम सूत्र, ४ पन्नगणा सू० ५ जम्बूद्वीप पन्नति सूत्र ६ चन्दपन्नति सूत्र ७ सूरपन्नति सू० ८ निरियावली सूत्र ९ कप्पिया सू० १० कप्पवडीसया सू० ११ पुप्पिया सूत्र १२ पप्प चूलिया सू०। पांच कल्प सू० जैसे १ उत्तराध्यन सू० २ निशीथ् सू० ३ कल्प सू० ४ व्यवहार सू० और ५ जीतकल्प सू०। ६ छ छेद, जैसे १ महा निशीथ् वृहद्वाचना सू० २ महानिशीथ् लघुवाचना सू० ३ मध्यम वाचना सू०४ पिंडनिरुक्ति सू० ५ ओघनिरुक्त सू० ६ पर्य्यूषणा सू०। १० दश पयन्न सू० जैसे १ चतुस्सरण सू० २ पचखाण सू० ३ तंदुल वैयारिक सू० ४ भक्ति परिज्ञान सू० ५ महा प्रत्याख्यानसू० ६ चंदाविजय सू० ७ गणी विजय सू० ८ मरण समाधि सू० ९ देवेन्द्रस्तन सू० १० संसार सू० तथा नन्दी सू० योगोद्वारा

सू० भी प्रमाणिक मानते हैं । ५ पञ्चाङ्ग जैसे १ पूर्व सब ग्रंथों की टीका २ निर्युक्ति ३ चरणी ४ भाष्य ये, चार पदयव और सब मूल, सिद्ध के पचांग कहाते हैं इन में बृद्धिया अवयवों को नहीं मानते और इनमें भिन्न भी अनेक ग्रथ हैं कि जिनको जैनी लोग मानते हैं । इनका विशेष मत पर विचार १२ बारहवें समुल्लासम देख लीजिये । जैनियो के ग्रन्थों मे लाखों पुनरुक्त दोष हैं और इनका यह भी स्वभाव है कि जो अपना ग्रन्थ दूसरे मत वाले के हाथ मे हो वा छपा हो तो कोई २ उस ग्रंथ को अप्रमाण कहते हैं यह बात उनकी मिथ्या है क्योंकि जिसको कोई माने कोई नहीं इससे वह ग्रथ जैन मानस ग्राह्य न हो सकता । हा जिसको कोई न माने, और न कभी किसी जैनीने माना हो तब तो अप्रमाण हो सकता है परन्तु ऐसा कोई ग्रन्थ नहीं है कि जिसको कोई भी जैनी न मानता हो इस लिये जो जिस ग्रन्थ को मानेगा उसे ग्रंथस्थ विषयक खण्डन मण्डन भी उसी के लिये समझा जाता है । परन्तु कितने ही ऐसे भी हैं कि उस ग्रन्थ को मानते, जानते हों तो भी सभा वा सम्वाद में बदल जाते हैं इसी हेतु से जैन लोग अपने ग्रन्थों को छिपा रखते है दूसरे मतस्थ को न देते, न सुनाते और न पढाते इस लिये कि उनमें ऐसी २ असम्भव बाते भरी है जिनका कोई भी उत्तर जैनियों मे से नहीं दे सकता, झूठ बात को छोड देना ही उत्तम है ।

पाठक वृन्द पूर्वोक्त लेख से स्वामी जी का अजान पन ही नहीं किंतु धूर्त पन भी सिद्ध होता है, और जो कुछ स्वामी जी ने लिखा सब मिथ्या और व्यर्थ ही है; ज्ञानचुलकड़ की तरह गप्प शप्प सुनी सुनाई बातों पर मनमानी टीका लिख निज विद्वान बनने को उद्यमी हुये, थे परन्तु इस लिखने से तो उलटी उनकी अज्ञानता सिद्ध होती है, यद्यपि जिन जिन सूत्र सिद्धान्तो का नाम स्वामी जी ने पूर्वोक्त लेख मे लिखा वह जैन सिद्धान्त के कोई २ ग्रन्थ अवश्य हैं परन्तु इतना लिख देने से स्वामी जी जैन धर्म्म के जानकार नहीं कहला सकते जब कि उनके लिखे में अनेक स्वकपोल कल्पित और झूठे नाम जैन शास्त्रों के देखने में आते हैं, और खेद की बात है कि जैसे मुसलमान लोगों के धर्म्म ग्रन्थ 'कुरान' अंग्रेजों के धर्म्म ग्रन्थों का नाम बायबिल इजील तौरेत है, जिनको बहुधा मनुष्य भले प्रकार जानते हैं, परन्तु अबी फारसी अंग्रेजी के पढ़े बिना उन पुस्तकों के नाम

मान सुनकर कोई उनपर तर्क वा समीक्षा नहीं कर सकता, इसी प्रकार बिना पढ़ित वेदों के पूर्ण व्याकरणों पंडित हुये जैन सिद्धान्त के गूढ़ाशय को जान लेना स्वामी दयानन्द सरस्वती जैसे देह धारियों की बुद्धि से पृथक् था, और जो पत्र स्वामी जी ने मेरठ से ठाकुरदास को लिखवाया उसमें सिद्ध किया था कि मैं प्राकृत विद्या नहीं जानता। इससे यह सिद्ध होता है कि स्वामी जी ने नवीन "सत्यार्थ प्रकाश" की भूमिका पृष्ठ ४ पंक्ति २९ से पृ० ५ पंक्ति २८ तक जो लेख किया वह व्यर्थ कूट स्वरूपोल कल्पित सहा लिखा है।

पुन पृ० ६ पंक्ति १४ से स्वामी जी लिखते हैं कि—

मैं पुराण, जैनियों के ग्रन्थ, बायबिल, और कुरान को प्रथम ही दृष्टि से न देखकर उनमें से गुणों का ग्रहण और दोषों का त्याग तथा अन्य मनुष्य जाति की उन्नति के लिये प्रयत्न करता हूँ।

प्यारे पाठक गण इस सत्य कहना पूर्वोक्त वचन का स्वामी जी ने कहा तक पालन किया और किस किस धर्म पुस्तक से क्या क्या सार ग्रहण किया ? हमको तो "सत्यार्थ प्रकाश" के पृ० २७३ से पृ० ६०८ तक केवल दूसरों का खंडन और झूठी निन्दा ही दिखलाई देती है।

मुरादाबाद के जगन्नाथदास निज लिखित पुस्तक "दयानन्द पराजय" के पृ० ३ पंक्ति १८ में लिखते हैं कि "दयानन्द जी का कुल हाल दिखलाता हूँ जिससे सम्पूर्ण साधारण लोगों पर उनका छल कपट और अविद्वान होना सम्यक् प्रकट हो जाय"।

पाठक वृन्द जगन्नाथ जी को आदि लेकर जिन जिन महाशयों ने स्वामी जी के दोषों पर खंडन मंडन लिखा है लोग चाहे जिन शब्दों में लिखें परन्तु हम तो जो कुछ लिख रहे हैं, और आगे लिखेंगे उसमें स्वामी जी को कोई भी शब्द अनुचित नहीं लिखेंगे जो कुछ लिखा जायगा उनके ग्रन्थों को देखने का ही खंडन मंडन होगा, हम लिखे आशा है कि इस पर दयानन्दीगण भी कुछ बुरा नहीं मानेंगे।

"सत्यार्थ प्रकाश" पृ० ११ पर स्वामी जी ने अपने लिखने के समझने के लिये वेदी, प्रोक्षणीपात्र, प्रणीता पात्र, आज्यस्थाली, चमसा, इन पांचों की मूर्ति

बनाकर दिखलाई है तथा पृष्ठ ९१ में पुत्र कन्या के विवाह सम्बन्ध के लिये पं
प्राक की मूर्ति को काम में लाने की आज्ञा दी तो क्या देव मूर्ति से भाव शुद्ध
और सानुकूल वस्तु के ज्ञान और स्मरण होने में संदेह करना वा बुरा कहना
पक्षपात तथा हठ नहीं तो और क्या समझा जाय ?

पुन पृ० ४७ पंक्ति ४ मे लिखा है ।

१ २ ३ ४ ५
तत्राहिंसासत्या स्तेय ब्रह्मचर्या परिग्रहायमाः । योग सूत्र०

भावार्थ हिंसा, झूठ, चोरी, स्त्री, परिग्रह, इनका त्याग करे ।

पाठक महाशयो जैन शास्त्र मे यही पाच बात मुख्य हैं, और इनही
पंच महाव्रत वा अणुव्रत कहते हैं, अर्थात् हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन, परिग्रह इन
सर्वथा त्याग हो तो महाव्रत है सो मुनिका धर्म्म और थोडा थोडा प्रमाण सा
त्याग सो अणुव्रत श्रावक का धर्म्म है, हमको आश्चर्य्य और खेद दोनो स्व
जी की लिखावट पर होते हैं, सो आश्चर्य्य तो इस बात का है कि जिस
धर्म्म के अनेक सूत्र सिद्धान्तों का नाम स्वामी जी अपने पुस्तक की भूमिका
लिखते हैं उनको इतना भी मालूम नहीं कि जैन धर्म्म का मूलतत्व क्या है, औ
खेद इस बात का है कि बहुत्वा विषयों को स्वामीजी जान बूझकर भी पक्षपातार्थ
प्रतिकूल ही कहते हैं ।

पुन पृ० १३० प० १० मे स्वामी जी दश लक्षणयुक्त धर्म की महि
लिखते हैं, और जैन धर्म के समान दश लक्षण धर्म की महिमा किसी धर्म में
नहीं फिर स्वामीजी को इस धर्म की निन्दा करते कुछ लज्जा उत्पन्न नहीं होती ?

पुन पृ० २३० प० ७ मे स्वामी जी ने लिखा कि "जैनी कहते हैं कि
पृथ्वी घूमती नहीं किंतु नीचे २ चली जाती है" यह लिखना स्वामीजी का सर्वथा
झूठ और मनघडन्त है जैन के किसी भी शास्त्र में यह नहीं लिखा कि पृथ्वी नीचे
नीचे चली जाती है ।

पुन पृ० २४५ प० ६ में लिखा है कि "जैनी लोग मोक्ष शिला, शिवपुर मे
जा के चुपचाप बैठे रहना, मानते हैं" ।

जैनियों के इस उपरोक्त लिखने को स्वामी दयानन्द सरस्वती झूठ समझते

हैं और आप एक विचित्र प्रकार की नई मोक्ष वर्णन करते हैं जिसको आज तक न किसी विद्वान् ने कथन ही किया और न किसी ने प्रमाणिक ही माना अब हम दयानन्द की मोक्ष पर अपना मत प्रकट करते हैं।

स्वामी जी ने अपनी वेदभाष्यभूमिका पृ० १८१ से जो मुक्ति का स्वरूप लिखा है उसमे पतजली के योग शास्त्र के ग्यारहवें सूत्रका गौतम रचित न्यायशास्त्र के तीन सूत्रों का व्यासकृत वेदान्त सूत्रादि ग्रन्थों का शतपथ ब्राह्मण का, ऋग्वेद के एक मन्त्र का, यजुर्वेद के एक मन्त्र का प्रमाण लिखा है।

अब बुद्धिमानोंको विचारना चाहिये कि पतजली ने जो मुक्ति स्वरूप लिखा है वह ऋग्वेद के पूर्वोक्त मन्त्र से सर्वथा प्रतिकूल है, और गौतम जी की कही मुक्ति भी वेद मन्त्रों से भिन्न है, क्योंकि गौतम जी मुक्ति में ज्ञान बिलकुल नहीं मानते पाषाण तुल्य स्वरूपमात्र रहित और सुख दुःख रहित मुक्ति कहते हैं, और आत्मा को सर्व व्यापी मानते हैं, और भेद वादी है क्योंकि आत्मा सख्यामें अनन्त मानते हैं, और स्वामी जी अपनी वेदोक्त मुक्ति में लिखते हैं कि उस मोक्षप्राप्त मनुष्य को पूर्व मुक्त लोग अपने निकट आनन्द में रख लेते हैं और फिर वे परस्पर अपने ज्ञान मे एक दूसरे का प्रीति पूर्वक देखते हैं और मिलते हैं तथा विद्वान् लोग मोक्ष को प्राप्त होकर सदा आनन्द में रहते हैं, अब सोचना चाहिये कि गौतम की मुक्ति मे तो मुक्तात्मा न कहीं जाता है न कहीं आता है क्योंकि वह सर्व व्यापी है, सुख आनन्द से रहित होता है, स्वामी जी कहते हैं कि जब नया जीव मोक्ष में आता है उसको पहिले के मोक्ष में गये हुये जीव अपने निकट रख लेते हैं। व्यास जी के पिता जो बादरी आचार्य थे उनका मुक्ति विषय में ऐसा मत है कि जब जीव मुक्त दशा को प्राप्त होता है तब वह शुद्ध मन से परमेश्वर के साथ परमानन्द मोक्ष मे रहता है और इन दोनों से भिन्न इन्द्रियादि पदार्थों का अभाव हो जाता है। व्यास जी के मुख्य शिष्य जैमिनी का यह मत है कि जैसे मोक्ष मे मन रहता है वैसे ही शुद्ध सकल्प मय शरीर तथा प्राणादि और इन्द्रियों की शुद्ध शक्ति भी बराबर बनी रहती है, मुक्त जीव सकल्प मात्र से ही शीघ्र लोक भी देते हैं और शुद्ध ज्ञान सदा बना रहता है, व्यासजी का मुक्ति विषय मे यह मत है कि मुक्ति म भाव और अभाव दोनों ही बने रहते हैं, अर्थात् क्लेश अज्ञान और अशुद्धि आदि दोषों का सर्वथा

अभाव हो जाता है और परमानन्द ज्ञान शुद्धता आदि सब सत्य गुणों का भाव बना रहता है। इत्यादि वेदान्त शास्त्र के वचन हैं।

इसी प्रकार स्वामी जी ने जिस जिस महात्मा के वचनों का ग्रहण किया उस उसका सिद्धान्त एक दूसरे के प्रतिकूल है, और स्वामीजी का सिद्धान्त इन सब के प्रतिकूल है। फिर जैन की मोक्ष पर तर्क करना बालचेष्टावत् व्यर्थ नहीं तो और क्या समझा जाय इस विषय में विस्तार सहित दूसरे भाग में लिखा जायगा।

पुन पृ० २७१ पं० १६ मे स्वामी जी लिखते हैं कि प्रथम समुल्लास में आर्यावर्तीय मत मतान्तर, दूसरे मे जैनियो के, तीसरे में ईसाइयो के, और चौथे में मुसलमानों के मतमतान्तरों के खंडन मंडन के विषय मे लिखेंगे। तथा पृ० २७३ पं० ८ में लिखा है कि वेद विरुद्ध पुराणी, जैनी, किरानी और कुरानी सब मतों के मूल हैं वे क्रम से एक के पीछे दूसरा तीसरा चौथा चला है।

पाठकवृन्द यह लिखना स्वामी जी का सर्वथा व्यर्थ और झूठ है, मनुष्य मात्र का यह स्वाभाविक धर्म है कि जिस विषय को भले प्रकार जानने की सामर्थ्य रखता है, खंडन मंडन भी उसी का कर सकता है, स्वामी जी केवल काम चलाऊ संस्कृत के अतिरिक्त, प्राकृत, अर्बी, अंग्रेजी का एक अक्षर तक नहीं जानते और इनको यह भी मालूम नहीं कि सत्य सनातन आदि धर्म कौन है, फिर वे खंडन मंडन क्योंकर कर सकते हैं, जिस मनुष्य ने बम्बई व कलकत्ता आदि से न देखा हो वह उसकी गलियों का अन्य मनुष्योंके भरोसे वर्णन करके अपने आपको ज्ञाता सिद्ध किया चाहे तो सिवाय उपहास्य के और कोई फल उसको नहीं मिलता है।

पुन पृ० २८१ पं० २६ में स्वामीजीने ईर्षा और द्वेष से जैनियों को मुसलमान ईसाइयो के साथ मिलादिया यह ठाकुर दास के पत्र व्यवहार से लिखने का फल है।

पुन पृ० २८७ पं० ९ में लिखा है कि वेदादि शास्त्रों का निन्दक बौद्ध व जैन मत प्रचलित हुआ है, इससे यह सिद्ध होता है कि स्वामी जी को ठाकुरदास ने और श्री झवेर सागर जी ने ऐसा जलाया है कि उनको जैन धर्म को बुरा कहते कहते शान्ति नहीं होती।

पुन पृ० २८८ पं० १ से ही लिखा है, कि—

जैनों में भी और प्रकार की पोप लीला बहुत है सो १८ वें समुल्लास में लिखेंगे बहुतों ने उनका मत स्वीकार किया परन्तु किसी को पास काशी, कन्नौज, पश्चिम, दक्षिण देश वाले थे उन्होंने जैनों का मत स्वीकार नहीं किया था वे जैन वेद का अर्थ न जान कर बाहर की पोप लीला भ्रान्ति से वेदों को न मानकर वेदों की भी निन्दा करने लगे। उसके पठन पाठन यज्ञोपवीतादि और ब्रह्मचर्यादि के नियमों को भी नाश किया, जहाँ जितने पुस्तक वेदादि के पाय नष्ट किए आर्यों पर बहुत सी राजसत्ता भी चलाई दुःख दिया जब उनको भय शंका न रही तब अपने मत वाले गृहस्थ और साधुओं की प्रतिष्ठा और वेद मार्गियों का अपमान और पक्षपात से दण्ड भी देने लगे और आप सुख आराम और घमण्ड में आ फूलकर फिरने लगे ऋषभ देव से ले के महावीर पर्यन्त अपने तीर्थंकरों की बड़ी २ मूर्तियां बनाकर पूजा करने लगे अर्थात् पाषाणादि मूर्तिपूजा की जड़ जैनियों से प्रचलित हुई। परमेश्वर का मानना न्यून हुआ पाषाणादि मूर्तिपूजा में लगे, ऐसा तीन सौ वर्ष पर्यंत आर्यावर्त में जैनों का राज्य रहा प्राय वेदार्थ ज्ञान आदि से शून्य होगये थे, इस बात को अनुमान से अढ़ाई सहस्र वर्ष व्यतीत हुये होंगे।

प्यारे पाठकवृन्द! स्वामी जी का पूर्वोक्त लेख बिना किसी प्रमाण के व्यर्थ और विद्वानों के मानने योग्य नहीं हमने न किसी पुस्तक में देखा और न किसी से सुना कि अमुक जैन राजा ने व साधु मुनिराज ने अमुक धर्म की अमुक पुस्तक नष्ट कराई। स्वामी जी की हठधर्मी का यह हाल है कि हमारे बार २ बौद्ध जैन को जुदा सिद्ध कर देने पर भी वह बौद्ध की बुराई को जैनियों के शिर धरने लग रहे हैं, सो यह विद्वानों का काम नहीं है।

पुन पृ० २८८ पं० १६ में यह लिखा है कि—

बाईस सौ वर्ष हुये कि एक शंकराचार्य द्रविड़देशोत्पन्न ब्राह्मण ब्रह्मचर्य से व्याकरणादि सब शास्त्रों को पढ़ कर सोचने लगे कि अहह! सत्य आस्तिक वेद मत का छूटना और जैन नास्तिक मत का चलना बड़ी हानिकी बात हुई है, इसको किसी प्रकार हटाना चाहिये शंकराचार्य जी शास्त्र तो पढ़े ही थे परन्तु जैन मत के भी पुस्तकों को पढ़े थे और उनकी युक्ति भी बहुत प्रबल थी उन्होंने विचार कि इनको किस प्रकार हटावें निश्चय हुआ कि उपदेश और शास्त्रार्थ करने से यह लोग

हटेंगे ऐसा विचार कर उज्जैन नगरी में आये वहां उस समय सुधन्वा राजा था जो जैनियों के ग्रन्थ और कुछ संस्कृत भी पढा था वहा जा कर वेद का उपदेश करने लगे और राजा से मिलकर कहा कि आप संस्कृत और जैनियोंके भी ग्रन्थो को पढ़े हैं और जैन मत को मानते हो इस लिये आपको मैं कहता हूँ कि जैनियोंके पंडितों के साथ मेरा शास्त्रार्थ करवाइये इस प्रतिज्ञा पर जो हारे सो जीतने वाले का मत स्वीकार करले और आप भी जीतने वालेका मत स्वीकार कीजियेगा यद्यपि सुधन्वा राजा जैनमत में थे तथापि संस्कृत ग्रथ पढने से उनको बुद्धिमें कुछ विद्याका प्रकाश था इससे उनके मनमें अत्यन्त पक्षपात नहीं छाई थी क्योंकि जो विद्वान होता है वह सत्याऽसत्य की परीक्षा करके सत्य का ग्रहण और असत्य को छोड़ देता है। जब तक सुधन्वा राजा को बड़ा विद्वान उपदेशक नहीं मिला था तब तक सन्देहमें थे कि इनमें कौनसा सत्य और कौनसा असत्य है जब शंकराचार्य की यह बात सुनी और बड़ी प्रसन्नता के साथ बोले कि हम शास्त्रार्थ कराके सत्याऽसत्य का निर्णय अवश्य करवेंगे। जैनियो के पंडितो को दूर दूर से बुलाकर सभा कराई उसमें शंकराचार्य्य का वेदमत और जैनियों का वेद विरुद्ध मत था अर्थात् शंकराचार्य्य का पक्ष वेदमत का स्थापन और जैनियों का खंडन और जैनियों का पक्ष अपने मत का स्थापन और वेद का खंडन था शास्त्रार्थ कई दिनों तक हुआ जैनियों का मत यह था कि सृष्टि का कर्ता अनादि ईश्वर कोई नहीं यह जगत् और जीव अनादि है इन दोनों की उत्पत्ति और नाश कभी नहीं होता इससे विरुद्ध शंकराचार्य्य का मत था कि अनादि सिद्ध परमात्मा ही जगत् का कर्ता है यह जगत् और जीव मूठा है क्योंकि उस परमेश्वर ने अपनी माया से जगत् बनाया वही धारण और प्रलय कर्ता है और यह जीव और प्रपञ्चस्वप्नवत् है परमेश्वर आप ही सब जगत् रूप होकर लीलाकर रहा है बहुत दिन तक शास्त्रार्थ होता रहा परन्तु अन्त में युक्ति और प्रमाण से जैनियों का मत खंडित और शंकराचार्य्य का मत अखंडित रहा तब उन जैनियों के पंडित और सुधन्वा राजा ने वेद मत को स्वीकार कर लिया जैनमतको छोड़ दिया पुन बड़ा हल्ला गुल्ला हुआ और सुधन्वा राजा ने अन्य अपने इष्ट मित्र राजाओं को लिखकर शंकराचार्य्य से शास्त्रार्थ कराया, परन्तु जैनियों का पराजय समय होने से पराजित होते गये, पश्चात शंकराचार्य्य के सर्वत्र आर्य्यावर्त

देश में घूमने का प्रबन्ध सुधन्वादि राजाओं ने करादिया और उन की रक्षा के लिये साथ में नोकर चाकर भी रख दिये उसी समय से सब के यज्ञोपवीत होने लगे और वेदों का पठन पाठन भी चला दश वर्ष के भीतर सर्वत्र आर्य्यावर्त देश में घूमकर जैनियों का खण्डन और वेदों का मण्डन किया, परन्तु शंकराचार्य्य के समय जैन विध्वंस अर्थात् जितनी मूर्तियाँ जैनियों की निकलती हैं वे शंकराचार्य्य के समय में टूटी थी और जो बिना टूटी निकलती हैं वे जैनियोंने भूमिमें गाड दी थीं कि तोडी न जायें वे अब तक कहीं २ भूमिमें से निकलती हैं शंकराचार्य्य के पूर्व शैवमतभी थोडासा प्रचलित था उसका भी खण्डन किया वाम मार्ग का खण्डन किया उस समय इस देश में धन बहुत था और स्वदेश भक्ति भी थी जैनियो के मंदिर शंकराचार्य्य और सुधन्वाराजाने नहीं तुडवाये थे, क्योंकि उन में वेदादि की पाठशाला करने की इच्छा थी जब वेदमत का स्थापन हो चुका और विद्या प्रचार करने का विचार करते ही थे कि इतने में दो जैन ऊपर से कथन मात्र वेदमत और भीतर से कट्टर जैन अर्थात कपटमुनि थे शंकराचार्य्य उन पर अति प्रसन्न थे, उन दोनो ने अवसर पाकर शंकराचार्य्य को ऐसी विषयुक्त वस्तु खिलाई कि उन की क्षुधा मन्द होगई पश्चात् शरीर में फोडे फुन्सी होकर छ महीने के भीतर शरीर छूट गया तब सब निरुत्साही होगये और जो विद्या का प्रचार होनेवाला था वह भी न होने पाया जो उन्होंने शारीरिकभाष्यादि बनाये थे उनका प्रचार शंकराचार्य्य के शिष्य करने लगे अर्थात जैनियों के खण्डन के लिये ब्रह्म सत्य, जगत् मिथ्या और जीव ब्रह्म की एकता कथन कीथी उस का उपदेश करने लगे दक्षिण में शृंगेरी पूर्व में भूगोवर्धन उत्तर में जोशी और द्वारका में सारदा मठ बांधकर शंकराचार्य्य के शिष्य महन्त बन और श्रीमान होकर आनन्द करने लगे क्योंकि शंकराचार्य्य के पश्चात् उन के शिष्यों की बडी प्रतिष्ठा होने लगी।

प्यारे पाठकवृन्द जो मनुष्य मादक वस्तु का सेवन करता है वह तो उसी समय तक नशे में रहता है कि जब तक उस मादक वस्तु के नशे की मर्यादा है, परन्तु स्वामी दयानन्द सरस्वती के हाथ में होतेही, उनको ऐसा मदोन्मत्त बनादेती थी कि वे मदोन्मत्तों की तरह जो मन में आता था अट्ट सट्ट लिख मारते थे। टुक विचार करने का स्थान है कि जिस शंकराचार्य्य का होना सारना

चार्य्य ने वैशाख शुक्ल १० शाक ७१० के रत्न देश के कालची नगर में लिखा है कि सम्पूर्ण इतिहास तथा तवारीखों से विक्रम् सम्वत ८०० के पहिले और ७०० के पीछे सिद्ध होता है स्वामीजी ने बिना किसी प्रमाण के उसको विक्रम से २०० वर्ष पहिले हुआ लिखदिया । तथा सुधन्वा राजा लिखा विक्रम से पहिले कोई सतधन्वा राजा भी हुआ सिद्ध नहीं होता, शंकराचार्य्य का शास्त्रार्थ जो हुआ बौद्ध लोगों के साथ हुआ, जैनियों से नहीं हुआ, इस का प्रमाण शंकर का शिष्य माधवाचार्य्य अपने बनाये शंकर दिग्विजय मे इस प्रकार लिखता है — "आसेदुरार्हतमाद्रि बौद्धाना बुद्धबालक नाहतिय सहतद्गोमृत्यं इत्यत्रमनृपा"

आनन्दगिरि निज रचित उसी पुस्तक के अर्थात् शंकर दिग्विजय के २६ वें अध्याय मे जिस प्रकार बौद्धों के साथ शंकराचार्य्य का शास्त्रार्थ हुआ सो यह लिखता है ।

इदमांह सर्व प्राण्यहिंसा परमो धर्म । परम गुरुभिरिदमुच्यते । रे रे सौगत नीचतर किं किं जल्पसि । अहिंसा कथ धर्मो भवितुमर्हति । यागीयहिंसा धर्म रूपस्वात् तथाहि अग्निष्टोमादिकतु छागादि पशुमान यागस्य परमधर्मत्वात् । सर्व देव तृप्तिमूलत्वाच । तद्द्वारा स्वर्गादि फल दर्शनाच्च पशुहिंसा श्रुत्याचार तत्परै रङ्गीकरणीया तद्व्यतिरिक्तस्यैव पापहेतुत्वात् तदाचाररता नरकमेव यान्ति । वेदनिन्दापरा येतु तदाचाराश्चिर्भजिता । तेसर्वे नरक याति यद्यपिब्रह्मभीजजा । इति मनुर्वचनात् । हिंसा कर्तव्यत्वनवेदा सहस्र प्रमाण वर्तते ब्रह्मक्षत्रवैश्य शूद्राणा वेदेतिहास पुराणाचार प्रमाणमेत्र तदन्या पतितो नरकगामी चेतिसम्यगुपदिष्ट सौगत परमगुरु नत्वा निरन्तसमस्ताभिमान पद्मपादादि गुरुशिष्याणा पादरज धारणाधिकारकुशल संतत तदुच्छिष्टान्नभक्षणपुष्टतनुरभवत् । इत्यनन्तानन्दगिरिकृतो षड्विंशत् प्रक्रमण ॥ २६ ॥

(अर्थ) सौगत कहता है कि अहिंसा परम धर्म्म है, तब शंकर कहता है रे रे सौगत नीचों मे नीच, क्या क्या कहता है अहिंसा क्यों कर धर्म्म हो सकता है यज्ञ हिंसा को धर्म्मरूप होने से सोई दिखाते हैं, अग्निष्टोमादि यज्ञ में छागादि पशु का मारना परम धर्म्म है, और सर्व देवता तृप्त हो जाते हैं, और इस हिंसासे स्वर्ग मिलता है, इस वास्ते धर्म्म है, पशु हिंसा श्रुतिका आचार है, अन्य मतवाले

को भी अंगीकार करने योग्य है, वैदिक हिंसा के उपरान्त सर्व पाखंड है, जो पाखंड मानते वे नरक में जाते हैं, वेद की निंदा करते हैं, और जो वेदोक्ताचार वर्जित हैं वे सर्व नरक में जायगे, ब्रह्माका बीज क्यों न हो? यह मनुनेकहा है।

हिंसा करना इस मे वेदों की हजारो श्रुतिया प्रमाण देती हैं, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इनको वेद, इतिहास, पुराणोंका कहा प्रमाण है, इससे अन्य कुछ माने तो नरकगामी है, यह सुन के सौगत शंकर के पद्मपादादि शिष्यों का नौकर बनके उनकी जूतियों का रखने वाला हुआ और उनके उच्छिष्ट से मग्न रहने लगा।

इससे सिद्ध होता है कि शंकर जो मांस भक्षियों का पक्षी था उसने मांस भक्षी बौद्धों ही को पराजय किया, दयाधर्मी जैनियों का पराजय करना शंकर जैसे मांसभक्षी से क्योंकर बन पड़ता था, यदि जैनियों से शास्त्रार्थ होता तो उनके किसी पंडित वा आचार्य्य का नाम भी अवश्य होता जिसको शंकर ने पराजय किया, परन्तु झूठ बचन के पात्र नहीं होते इस लिये नाम कहा से लिखते। इस विषय में स्वामी जी का सम्पूर्ण लेख बिना प्रमाण और मिथ्या है, यह कहना विद्वानों का अत्यन्त सत्य कि झूठ बोलने वाले को अपने वाक्य का स्मरण नहीं रहता राजा विक्रम से शंकर स्वामीका होना तीन सौ वर्ष पहिले भी लिखते हैं और कहते हैं कि जो मूर्तियां पृथिवी तलसे अब जैनियों की निकलती हैं वे शंकर स्वामी के समय की टूटी फूटी तथा गाड़ी हुई हैं, अजी स्वामी जी महाराज आज कल जितनी मूर्ति पृथिवी तल से जैनियों की निकलती हैं उन सबके ऊपर विक्रम राजा तथा शालिवाहन का सम्वत् खुदा होता है बिना सम्वत् की कोई मूर्ति पृथिवी तल से नहीं निकली सो क्या सम्वत् भी उन पर शंकर स्वामी के समय और द्राक्षा विक्रम से ३०० तथा शालिवाहन से ४३५ वर्ष पहिले ही खोदा गया था? यथार्थ बात तो यह है कि शंकर के समय कोई मूर्ति किसी भी धर्म की पृथिवी में नहीं गाड़ी गई किंतु जब महमूद गजनवी आदि दुष्ट यवन बादशाहों का सम्पूर्ण हिन्दू मात्र पर अत्याचार बढ़ा तो बहुत्वा मूर्तियां जैन वैष्णव सब ही धर्मों की गाड़ दी गई थीं, और यह लिखना भी स्वामी जी का झूठ है कि शंकर स्वामी ने वाममार्गियों का खंडन किया, क्योंकि आगमप्रकाश ग्रन्थ का रचने वाला लिखता है कि शंकर वामी अवतार में शक्ति (अर्थात् वाममार्गी थे, क्योंकि आनंदगिरि कृत शंकर

दिग्विजय में लिखा है कि शंकर स्वामी ने श्रीचक्र की स्थापना की और श्रीचक्र वाममार्गियों का मुख्य देव है, शंकर दिग्विजय के ६५ में अध्याय में श्रीचक्र की बहुत बड़ी कीर्ति गाई है, शृङ्गेरी, द्वारिकादि ठिकानों पर इनके मठ में श्रीचक्र की स्थापना है।

पुन: पृष्ठ २९५ पंक्ति २६ से स्वामी जी लिखते हैं कि "शंकराचार्य्य आदि ने तो जैनियों के मत के खंडन करने ही के लिये यह मत स्वीकार किया हो क्योंकि देश काल के अनुकूल अपने पक्ष को सिद्ध करने के लिये बहुत से स्वार्थी विद्वान् अपने आत्मा के ज्ञान में विरुद्ध भी कर लेते हैं"

इस लेख से भी यही सिद्ध किया जा सकता है कि शंकर स्वामी का मत सिद्धान्त विद्वानों के लिये माननीय नहीं था, और स्वामी जी लिखते हैं कि "दो जैन ऊपर से कथन मात्र वेदमत और भीतर से कट्टर जैन अर्थात् कपट मुनि थे शंकराचार्य्य उन पर अति प्रसन्न थे, उन दोनों ने अवसर पाकर शंकराचार्य्य को ऐसी विषयुक्त वस्तु खिलाई कि उनकी क्षुधामन्द हो गई इत्यादि०" सो यह भी स्वामी जी की स्वकपोल कल्पना है शंकराचार्य्य का जीवन चरित्र शंकर दिग्विजय में विस्तार पूर्वक लिखा है उसमें यह वृत्तान्त कहीं भी नहीं है और स्वामी जी को झूठ लिखने और उस पर कदाग्रह वा हठ करने की इतनी उमंग है कि जिसका कुछ ठिकाना नहीं है, यह विषय संसार में किसी से भी छिपा हुआ नहीं है कि राजा भर्तृहरि विक्रमादित्य का बड़ा भाई था और कवि कालीदास राजा विक्रम के ही समय में हुआ, परन्तु स्वामी जी नवीन "सत्यार्थप्रकाश" के पृ० २९९ पर यह लिख मारा कि विक्रमादित्य से पीछे राजा भर्तृहरि और पाँच सौ वर्ष पीछे अर्थात राजा भोज के समय बकरी चराने वाला कालीदास हुआ"।

पुन पृ० ३०० पंक्ति १५ में लिखा है कि "जब राजा भोज के पश्चात् जैनी लोग अपने मंदिरों में मूर्ति स्थापन करने और दर्शन पर्शन करने को आने जाने लगे"।

यह लिखना भी बिना किसी प्रमाण के सर्वथा झूठ और मनोकल्पित है, क्योंकि राजा भोज से पहिले की बनी हुई जैन की लाखों मूर्ति जैन मंदिरों में विद्यमान हैं और यह लेख स्वामी जी के ही पूर्वोक्त लेख का विरोधी है।

पुन पृ० ३०१ पंक्ति २६ से लेकर पृ० ३०२ पंक्ति ३ तक यह लेख और जैनियों की कथा में भी लोग जानें लगे जैनियों के पोप इन पुराणियों के पोपों के चेलों को बहकाने लगे तब पुराणियों ने विचारा कि इसका कोई उपाय करना चाहिये, नहीं तो अपने चेले जैनी हो जायगे पश्चात् पोपों ने यही सम्मति की कि जैनियों के सदृश अपने भी अवतार मंदिर मूर्ति और कथा के पुस्तक बनावें इन लोगों ने जैनियों के चौबीस तीर्थंकरों के सदृश चौबीस अवतार मंदिर और मूर्तिया बनाई और जैसे जैनियों के आदि और उत्तर पुराणादि हैं वैसे अठारह पुराण बनाने लगे।

(क) यह लिखना भी बिना किसी प्रमाणके सर्वथा मिथ्या है, परन्तु यह मान लेने मे कुछ हानि नहीं है रामानुज और वल्लभाचार्य्य ने जैनियों के धर्मकी प्रबलता से जलकर नवीन मत खडे किये तब अनेक बात जैनियों की लेकर उनको निज इच्छानुसार बदल भी दिया है।

पुन पृ० ३०८ पं० ५ मे स्वामी जी यह प्रश्नोत्तर लिखते है।

(प्रश्न) मूर्तिपूजा कहा से चली ? (उत्तर) जैनियों से।

इस पर हमारी तर्क यह है कि मनुस्मृति अध्याय २ श्लोक १७५ में जो देवमूर्ति पूजन की आज्ञा है सो क्या स्वामी जी को यह निश्चय होगया कि मनु स्मृति से पहिले भी जैनधर्म था।

पुन पृ० ३०८ पं० ५ मे दूसरा प्रश्न यह लिखा है।

(प्रश्न) मूर्तिपूजा जैनियों ने कहा से चलाई ? (उत्तर) अपनी मूर्खता से। (प्रश्न) जैनी लोग कहते हैं कि शांत ध्यानावस्थित बैठी हुई मूर्ति देखके अपने जीव का भी शुभ परिणाम वैसा ही होता है ? (उत्तर) जीव चेतन और मूर्ति जड़ क्या मूर्ति के सदृश जीव भी हो जायगा ? यह मूर्तिपूजा केवल पाखंड मत है जैनियों ने चलाई है इस लिये इनका खंडन १२ वें समुल्लास मे करेंगे। (प्रश्न) शाक्त आदि ने मूर्तियों मे जैनियों का अनुकरण नहीं किया है क्योंकि जैनियों की मूर्तियों के सदृश नेमिनाथादि की मूर्तिया नहीं हैं। (उत्तर) हा यह ठीक है जो जैनियों के तुल्य बनाते तो जैनमत में मिल जाते इस लिये जैनों की मूर्तियों से विरुद्ध बनाई, क्योंकि जैनों से विरोध करना इनका काम और इनसे विरोध करना

मुख्य उनका काम था जैसे जैनों ने मूर्तियां नगी, ध्यानावस्थित और रिक्त मनुष्य के समान बनाई हैं उनमें विरुद्ध वैष्णवादिने यथेष्ट शृङ्गारित स्त्री के सहित रंगराग भोग विषयाशक्ति सहिताकार खड़ी और बैठी हुई बनाई हैं। जैनी लोग बहुत से शस्त्र घंटा घड़ियाल आदि बाजे नहीं बजाते ये लोग बड़ा कोलाहल करते हैं तब तो ऐसी लीला के रचने से वैष्णवादि सम्प्रदायी, पोपों के चेले जैनियों के जाल से बच के इनकी लीला में आ फसे इत्यादि०।

इस विषय में हम विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं देखते, स्वा० दयानन्द सरस्वती का यह हाल है कि एक वचन को जिस विषय में अपना उपकारी समझ ग्रहण करते हैं उसको जब वादानुवाद में खंडित होता जानते हैं तो शीघ्र ही त्याग देते हैं, और फिर काम पड़ने पर ग्रहण कर लेते हैं, देखो हम नवीन "सत्यार्थप्रकाश" के पृ० ४१ में वेदी, प्रोक्षणी, प्रणीता, आज्यस्थाली, चमसा के के चित्र बना कर उनके जानने के लिये दिखलाये हैं, तथा पृ० ९१ में वर कन्याके फोटोग्राफ मंगाने भेजनेका उपदेश दिया अब यहां शांतिमुद्राधारी वीतराग भगवान् की मूर्ति को बुरा कहने लग गये, यह हठ दुराग्रह नहीं तो और क्या समझाजाय ?

सत्य बात तो यह है कि मूर्ति के बिना संसार में कोई भी कार्य नहींचले। जितने धर्माश्रम हैं सब में मूर्तिपूजा चल रही है, कुछ इसी बात पर ध्यान देना उचित नहीं कि मूर्तिपूजा फल पुष्पादिक से ही होती है, नहीं मित्र ! नदी, पहाड़, बन, नगर, देशादिक के चित्र (नक्शे) बनाकर उनसे लाभ लेना भी मूर्तिपूजा में गिनाजाता है, और सच्चे मनमें विचार किया जाय तो पुस्तक ग्रन्थादिक भी। मूर्ति ही हैं। पुस्तक वाल्मीकीय रामायण ४४ सर्ग श्लोक ४२। ४३ में लिखा है कि रावण शिव जी की पूजा करता था, सो स्वामी दयानन्द सरस्वती को इस पर भी संतोष न हुआ तो हम क्या करें, क्योंकि वे तो इस पुस्तक पर बड़ा भरोसा रखते थे।

पुन पृ० ३२८ प० १ से स्वामी जी लिखते हैं कि "यह मूर्तिपूजा आढाई तीन सहस्र वर्ष के इधर २ भाममार्गी और जैनियों से चली है प्रथम आर्यावर्त में नहीं थी और ये तीर्थ भी नहीं थे जब जैनियों ने गिरनार, पालीटाना, शिखर, शत्रुंजय और आबू आदि तीर्थ बनाए उनके अनुकूल इन लोगों ने भी बना लिये

जो कोई इनके आरम्भ की परीक्षा करना चाहे वह पट्टोकी पुरानी से पुरानी वही और ताबे के पत्र आदि लेख देखे तो निश्चय हो जायगा कि ये सब तीर्थ पाच सौ अथवा एक सहस्र वर्ष से इधर ही बने हैं सहस्र वर्ष के उधर का लेख किसी के पास नहीं निकलता इससे आधुनिक हैं"।

प्यारे पाठकवृन्द ! यह भी लेख स्वामी जी का यथार्थ नहीं है, मूर्तिपूजाके पुरातन होने का प्रमाण तो वाल्मीकीय रामायण में शिवजी की पूजा करना रावण का तथा मनुस्मृति अध्याय २ श्लोक १७५ में ऊपर लिखा गया उतना ही बहुत है, अब तीर्थों के विषय में यह कहा जाता है कि शिखर महात्म्य, गिरनार महात्म्य, सिद्धाचल महात्म्य को पक्षपात रहित होकर देखने से भले प्रकार निश्चय हो सकता है, कि स्वामी दयानन्द सरस्वती का कहना और लिखना कहा तक सत्य है, इसी लिये हम इस विषय में विशेष लिखना नहीं चाहते।

पुन स्वामी जी पृ० ३८४ प० १९ में लिखते हैं कि "जैन लोग भी नव कार मन्त्र जपकर पाप छूटना" तथा पृ० ३८६ प० २७ में "मुख्य भाग देखो तो पुरानी, किरानी, जैनी और कुरानी चार ही हैं तथा पृ० ३८७ प० २४ से जैनियो के पास जाकर पूछा उन्होंने भी वैसा ही कहा, परन्तु इतना विशेष कहा कि "जिनधर्म" के बिना सब धर्म खोटे, जगत् का कर्ता अनादि ईश्वर कोई नहीं, जगत अनादि काल से जैसा का वैसा बना और बना रहेगा आ तू हमारा चेला होजा, क्योंकि हम सम्यक्त्वी अर्थात सब प्रकार से अच्छे हैं। उत्तम बात को मानते हैं जैन मार्ग से भिन्न सब मिथ्यात्वी हैं"।

उक्त तीनों लेख स्वामीजी के पक्षपात रूपी अग्निकर दग्ध हुये हृदय की साक्षी दे रहे हैं, संसार के सम्पूर्ण प्राणी अपनी २ उन्नति का उपाय करते हैं, और जिस धर्म को ग्रहण करते हैं उसको मोक्ष का द्वार बतलाने वाला समझ कर स्वीकार करते हैं, परन्तु यह जैन धर्म के किसी भी पुस्तक मे नहीं लिखा कि मिथ्या दृष्टि अभव्यों को बुला २ कर अपना शिष्य बनाना चाहिये, यह केवल स्वामी जी की मनगढन्त लीला उस दुःख का कारण है जो लाला ठाकुरदासजी के पत्र व्यवहार तथा श्रीमान् साधु झवेर सागर जी के नोटिस लगाने को देख कर उनको उत्पन्न हुआ था।

पुन पृ० ३९३ प० १५ मे स्वामी जी लिखते हैं कि "जब ऐसे हैं तभी तो वेद मार्ग विरोधी वाममार्गादि सम्प्रदायी, ईसाई, मुसलमान, जैनी आदि बढ़ गये अब भी बढ़ते जाते हैं।

यह लिखना भी स्वामी जी का ठीक नहीं है क्योंकि प्रथम काल में जितने जैनी इस आर्यावर्त में थे उनकी अपेक्षा अब तो एक रुपये मे एक पैसा भी नहीं फिर तो बढ़ते जाना क्योंकर सिद्ध होगया।

अब स्वामी दयानन्द सरस्वती जी रचित नवीन "सत्यार्थप्रकाश" के द्वादश समुल्लास की भूमिका का खंडन लिखा जाता है इस खंडन मे जितना लेख स्वामी जी का है उसकी आदि मे (द) और जितना उत्तर उसकी आदि मे (क) यह अवश्य होगा पाठक महाशयों को जानना और स्मरण रखना चाहिये।

(द) अब आर्य्यावर्तस्थ मनुष्यों मे सत्याऽसत्य का यथावत् निर्णय कराने वाले वेद विद्या छूटकर अविद्या फैल के मतमतान्तर खड़े हुये, यही जैन आदि के विद्या विरुद्ध मत प्रचार का निमित्त हुआ क्योंकि वाल्मीकीय और महाभारतादि मे जैनियो का नाम मात्र भी नहीं लिखा और जैनियो के ग्रन्थों मे वाल्मीकीय और भारत मे कथित् "रामकृष्णादि" की गाथा बड़े विस्तार पूर्वक लिखी हैं इससे यह सिद्ध होता है कि यह मत इनके पीछे चला क्योंकि जैसा अपने मत को बहुत प्राचीन जैनी लोग लिखते हैं वैसा होता तो वाल्मीकीय आदि ग्रन्थों मे उनकी कथा अवश्य होती इस लिये जैन मत इन ग्रन्थो के पीछे चला है।

(क) उक्त लेख करने से स्वामी दयानन्द सरस्वती का केवल पक्षपात ही नहीं किंतु यह भी सिद्ध होता है कि स्वामी जी ने "वाल्मीकीय रामायण", और "महाभारत" का कभी दर्शन भी नहीं किया, यदि किया होता तो ऐसा झूठा लेख वे भूलकर भी नहीं लिखते, देखो योगवासिष्ठ नामक पुस्तक के कथारम्भ मे लिखा है कि ब्रह्मा जी ने भारद्वाज को कहा तेरा गुरु वाल्मीक जङ्गल रहता है तू उसके पास जाकर आत्मबोध महारामायण का श्रवण कर, जो तेरे गुरु ने आरम्भ किया है, इतना कहा और भारद्वाज को साथ लेकर ब्रह्मा जी वाल्मीक जी के पास आये और कहने लगे हे मुनियों मे श्रेष्ठ वाल्मीक यह जो राम के स्वभाव के कथन का तुमने आरम्भ किया है इस उद्यम का त्याग नहीं करना इसको आदि से अन्त

पर्य्यन्त समाप्त करना, इतना कह ब्रह्मा जी अन्तर्ध्यान होगये, और वाल्मीक जी ने कथा लिखना आरम्भ कर समाप्त की।

उक्त कथा के छत्तीस हजार श्लोक हैं उसमे प्रथम वैराग्य प्रकरण अहंकार निषेधाध्याय में रामचन्द्र जी ने वसिष्ठ जी से ऐसा कहा है।

॥ श्लोक ॥

नाहं रामो ममे वांछा विषयेषु न मे मनः।
शांतिमाशितुमिच्छामि-चीतरागो जिनो यथा॥१॥

इसमें रामचन्द्रजी जिन समान होनेकी इच्छा करते हैं, अब खयाल करना चाहिये, यह वचन हमने अपनी तरफसे बनाकर तो नहीं लिखा सत्य कहना वाल्मीकीय रामायण मे जैन का विषय है कि नहीं ?

(वादी का तर्क) हम इस उत्तरको ठीक नहीं मानते क्योंकि योगवासिष्ठ को तो स्वामी जी नवीन "सत्यार्थप्रकाश" पृ० ७१ पंक्ति २० मे स्वत अप्रमाणीक कथन कर चुके है, हम तो केवल वाल्मीकीय रामायण का प्रमाण चाहते हैं।

(हमारा उत्तर) अच्छा साहब इसी प्रकार सही, देखो बाबू हरिश्चन्द्र जी भारतेन्दु काशी निवासी ने एक पुस्तक लिखा जिसका नाम "रामायण का समय" है उक्त पुस्तकके पृ० ३ प० ६ से वाल्मीकीय रामायण विषय इस प्रकार लिखा है।

अयोध्या के वर्णन मे उसकी गलियो में जैन फकीरों का फिरना लिखा है इससे प्रकट है कि (वाल्मीकीय) रामायण के बनने से पहिले जैनियो का मत था।

तथा इसी पुस्तक के पृ० ५ प० १६ से यह लिखा है कि "१०८ सर्ग मे जाबालिमुनि ने चार्वाक मत वर्णन किया है। और फिर १०९ सर्ग में बुधका नाम और उनके मत का वर्णन है। इससे प्रकट है कि ये दोनों वेद के विरुद्ध मत उस समय में भी हिन्दुस्तान मे फैले हुये थे। अभी हम ऊपर बालकाण्ड में जैनियों के इस काल मे रहने का जिक्र कर चुके हैं इत्यादि०"।

(क) पाठकवृन्द कहो तो सही इससे बढ कर और प्रमाण क्या हो सकता है ?।

(वादी का प्रश्न) अच्छा साहिब यह तो मानलिया अब महाभारत में भी तो कोई जैन का प्रमाण बतलाओ ?

(हमारा उत्तर) देखो जिन महाभारत में श्री नेमनाथजी की इस प्रकार बड़ाई लिखी है यह श्री नेमनाथजी जैनियों के बाईसवें तीर्थंकर हैं ।

(श्लोक)

युगे युगे महापुण्या दृश्यते द्वारिकापुरी ।
अवतीर्णो हरिर्यत्र प्रभासेशशिभूषणः ॥ १ ॥
रेवताद्रौ जिनोनेमिर्युगादिर्विमलाचले ।
ऋषीणामाश्रमादेव मुक्तिमार्गस्य कारणम् ॥ २ ॥

(वादी का तर्क) यह श्लोक महाभारत में पीछे से मिलाये हैं असल में तो ऐसा सुना जाता है कि यह श्लोक प्रभास पुराण के हैं ।

(हमारा उत्तर) प्रभास पुराण भारत से कोई जुदा पुस्तक नहीं है क्योंकि पुराण केवल अष्टादश हैं जिन के नाम इस प्रकार हैं, ब्राह्म पुराण १ पद्म पुराण २ विष्णु पुराण ३ शिव पुराण ४ नारदीय पुराण ४ मारकण्डेय पुराण ७ भविष्य पुराण ८ ब्रह्म वैवर्त ९ लिङ्ग पुराण १० वाराह पुराण ११ स्कन्द पुराण १२ वामन पुराण १४ मत्स्य पुराण १५ गरुड़ पुराण १६ ब्रह्माण्ड पुराण १७ भागवत १८ इन अष्टादश पुराणों के अतिरिक्त कोई उन्नीसवां प्रभास पुराण नहीं किंतु महाभारत ही है परन्तु तुम यह श्लोक रहने दो हम महाभारत का ही और प्रमाण देते हैं ।

(श्लोक)

आरोह स्वरथं पार्थ गांडीवं च करेकुरु । निर्जिता मेदिनीमन्ये निर्ग्रंथो यदिसम्मुखः ॥ १ ॥

यह श्लोक उस समयका है जब अर्जुन महाभारत में युद्ध करने को चला और उसके उत्तम शकुन प्राप्त होनेपर कृष्ण बोले, हे ! अर्जुन रथमें चढ़ और गांडीव धनुष हाथ में ले मैं मानता हूं कि, तैंने पृथिवी जीतली क्योंकि निर्ग्रंथ मुनि सन्मुख आये बहुत शुभ शकुन हुआ ।

(वादी का तर्क) उक्त श्लोक में निर्ग्रंथ का नाम है स्पष्ट जैन का विषय नहीं है ।

(हमारा उत्तर) लो स्पष्ट भी दिखलाते हैं।

(श्लोक)

ऋकारादि हकारांत मूर्द्धाधोरेफसंयुतम्। नादबिन्दु कलाक्रांतं चन्द्रमण्डल सन्निभम् ॥ १ ॥

एतद्वेद परतत्वं योविजानातिभावतः। ससार बन्धनं छित्वा सयाति परमांगतिम् ॥ २ ॥

(अर्थ) ऋकार आदि में हकार अन्त में और नीचे उपर रकार और नाद बिन्दु सहित चन्द्रमा के मण्डल की तुल्य ऐसा अर्ह जो तत्व है यही परम तत्व है इस तत्व को जो भाव से जाने सो ससार के बन्धन को काटकर बैकुंठ को जाता है

(वादी का प्रश्न) क्या इस विषय में कोई मनुस्मृति का भी प्रमाण है ?

(हमारा उत्तर) हां ! है, देखो बृहत्मनुस्मृति में यह श्लोक है।

कुलादिबीज सर्वेषा मादयो विमल वाहनः।
चक्षुष्मांश्च यशस्वीचाऽभिचन्द्रः प्रसेनजित् ॥ ८६ ॥

मरुदेवश्च नाभिश्च भरते कुलसत्तमाः।
अष्टमे मरुदेव्यांच नाभेर्जातो गुरुत्तमः ॥ ८७ ॥

उक्त श्लोक जैन की सनातनता सिद्ध करते हैं, भावार्थ जैनियों ने जिनको युग की आदि में कुलकर करके माना है, मनुस्मृति में उनका ही मनु करके माना है और देखो ! जिस व्यास ने वेदों को सहिता रूप किया उसने एक ब्रह्म सूत्र बनाया जिसके द्वितीयाध्याय पाद के इस "नैकस्मिन्नसंभवात् ३३" इस सूत्र पर शंकराचार्य्य ने निज भाष्य में जैन की समझनी बाणीका खंडन लिखा इससे सिद्ध हुआ व्यास के समय जैन धर्म्म था।

(वादी का प्रश्न) अच्छा जी तो क्या इस प्रकार का लेख वेदों में भी कहीं मिल सकता है ?

(हमारा उत्तर) हां ! है, देखो ऋग्वेद का मंत्र।

ॐत्रैलोक्य प्रतिष्ठितान् चतुर्विंशति तीर्थंकरान्।
ऋषभाद्यान् वर्द्धमानान्तान् सिद्धान् शरणं प्रपद्ये ॥

और यजुर्वेद मे भी कहा है, ॥ मंत्र ॥

ॐनमोऽर्हतो ऋषभाय ॐ ऋषभ पवित्रं पुरुहूत मध्वरं । यज्ञेषु नग्नं परम माहसंस्तुतावारं शत्रुजयंतं शुरिद्रमाहुतिरितिस्वाहा ॥

पुन और मत्र ॥

ॐत्रातार मिन्द्र ऋषभं वदन्ति अमृतारमिन्द्र हवे सुगतंसुपार्श्वे। इन्द्रहवे शक्रमजितं तद्वर्द्धमान पुरुहूतिमद्रमाहुतिरितिस्वाहा ॥

पुन नग्न की आहुति का मत्र ॥

ॐनग्नं सुधीरं दिग्वाससं ब्रह्मगर्भं सनातनं ऊर्ध्वमिधीरम् । पुरुष महँतमादित्यवर्णं तमसा परस्तात स्वाहा ॥

पुन ऋग्वेद में नग्न महिमा ।

ॐ पवित्रं नग्नमुपस्पृसा महे येषां नग्नंयेषां जातं येषां धीरं सुवीरम् ।

पुन ऋग्वेद म० १ अ० १४ सूत्र १०

स्वास्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः ।

क्यों साहिब सत्य कहना, वेद मत्रो से जैन धर्म्म की अनादि सिद्ध है, या नहीं ?

(ख) कोई कहे कि जैनियों के ग्रन्थों में से कथाओं को लेकर वाल्मीकीय आदि ग्रन्थ बने होंगे तो उनसे पूछना चाहिये कि वाल्मीकीय आदि में तुम्हारे ग्रन्थो का नाम तथा लेख क्यों नही ? और तुम्हारे ग्रन्थोंमे क्यों है,? क्या पिता के जन्म का दर्शन पुत्र कर सकता है ? कभी नहीं । इससे यही सिद्ध होता है कि जैन बौद्ध मत शैव शाक्तादि मतों के पीछे चला है ।

(क) स्वामी जी राम लक्ष्मण कृष्ण बलदेव तथा वाल्मीक व्यासादिक क बाइबिल, तौरेत, इजील कुरान में कुछ भी वर्णन नहीं तो क्या यह सब पुस्तक भारत रामायण के पुराने सिद्ध हो जायगे ? कभी नहीं इसी प्रकार जैनों का कथन भारत रामायण मे न होने से जैन नवीन नहीं हो सकता परन्तु हमने तो भारत रामायण क्या वेदों मे भी जैन सिद्ध कर दिया, और जिनको आवागमन पर दृढ विश्वास वे यह भी कह सकते हैं कि पुत्र पिता के जन्म का उत्सव देख सकता है परन्

यह गूढ चर्चा है यहा विस्तार पूर्वक लिखने का अवसर नहीं है।

(द) अब इस १२ बारहवें समुल्लास मे जो २ जैनियों के मत विषयक लिखा गया है सो उनके ग्रन्थों के पते पूर्वक लिखा है इसमे जैनी लोगों को बुरा न मानना चाहिये क्योंकि जो २ हमने इनके मत विषय में लिखा है वह केवल सत्याऽसत्य के निर्णयार्थ है न कि विरोध वा हानि करने के अर्थ।

(क) स्वामी अपराध क्षमा आपने ऐसी पढ़ी जन्म ही नहीं लिया था जो यथार्थ और पक्षपात रहित लेख करते। स्वकपोल कल्पना करना और निर्दोष को सदोष कहना यह तो आपका मुख्य धर्म्म था।

(द) इस लेख को जब जैनी बौद्ध वा अन्य लोग देखेंगे सबको सत्याऽसत्य के निर्णय मे विचार और लेख करने का समय मिलेगा और बोध भी होगा जब तक वादी प्रतिवादी होकर प्रीति से वाद या लेख न किया जाय तब तक सत्याऽसत्य का निर्णय नहीं हो सकता। जब विद्वान् लोगों में सत्याऽसत्य निश्चय नहीं होता तभी अविद्वानों को महा अन्धकार मे पड़कर बहुत दुःख उठाना पड़ता है इस लिये सत्य के जय और असत्य के क्षय के अर्थ मित्रता से वाद वा लेख करना हमारा मनुष्य जाति का मुख्य काम है। यदि ऐसा न हो तो मनुष्यों की उन्नति कभी न हो।

(क) स्वामी जी किसी विद्वान गुरु के शिष्य होकर विद्या पढने में तो अपना अपमान समझते हैं और परम दयामय सनातन जैन धर्म्मका सारांश जानने के अभिलाषी हुये वाद विवाद के बहाने से जो अपना मनोरथ सिद्ध किया चाहते हैं यह कब हो सकता है, जो जैन के सच्चे श्रद्धावान हैं उनको तो वाद विवाद से प्रयोजन ही क्या है? और जो नवीन हैं उनको सामर्थ नहीं इस लिये स्वामी दयानन्द सरस्वती का सम्पूर्ण श्रम व्यर्थ है।

(द) और यह बौद्ध जैन मत का विषय बिना इनके अन्य मत वालों को अपूर्व लाभ और बोध करने वाला होगा, क्योंकि ये लोग अपने पुस्तको को किसी अन्य मत वाले को देखने, पढने वा लिखने को भी नहीं देते। बड़े परिश्रम से मेरे और विशेष "आर्यसमाज" मुम्बई के मन्त्री "सेठ सेवकलाल कृष्णदास" के पुरुषार्थ से ग्रन्थ प्राप्त हुये है तथा काशीस्थ "जैन प्रभाकर" यन्त्रालय में छपने और

सुम्बई में "प्रकरण रत्नाकर" ग्रन्थ के छपने से भी सब लोगों को जैनियों का मत देखना सहज हुआ है। भला यह किन विद्वानों की बात है कि अपने मतके पुस्तक आप ही देखना और दूसरों को न दिखलाना।

(क) जो विदेशी पुरुष होते हैं वही विद्वान् कहलाते हैं और उनका यही परम धर्म्म है कि सब कार्य्य विवेक सहित करें, आर्य्य लोग अपने भोजन पान आदि को म्लेच्छ और चाण्डालादिक के स्पर्श से सदैव इस लिए बचाया करते हैं कि उनके संसर्ग से वह अप्राह्य हो जाता है। इसी प्रकार जैनी लोग अपने धर्म ग्रन्थों को (जो उनके आत्मा को निर्मल करने वाले हैं) ऐसे प्राणी को नहीं देते जो उसके देखने का अधिकारी नहीं। इस विषय में स्वामी जी का लिखना ऐसा है जैसे कोई भंगी, ढेढ, चमार किसी क्षत्रिय कुलोत्पन्न राजकन्या से विवाह करने की अभिलाषा कर खेद के अतिरिक्त और कुछ लाभ नहीं पावे। और जो पुस्तक छापे में छप कर बाजार में निकलने लगती है उसको जैनी लोग ऐसा समझते हैं कि जैसे किसी उत्तम कुल की जन्मी कन्या धर्म और न्याय भ्रष्ट हो वेश्या हो गई।

(ख) इसी से विदित होता है कि इन ग्रंथों के बनाने वालों को प्रथम ही शंका थी कि इन ग्रंथों में असंभव बातें हैं जो दूसरे मत वाले देखेंगे तो खण्डन करेंगे और हमारे मत वाले दूसरों के ग्रंथ देखेंगे तो इस मत में श्रद्धा नहीं रहेगी। अस्तु जो हो परन्तु बहुत मनुष्य ऐसे हैं कि जिनको अपने दोष तो नहीं दीखते किंतु दूसरों के दोष देखने में अत्युद्युक्त रहते हैं। यह न्याय की बात नहीं क्योंकि प्रथम अपने दोष देख निकाल के पश्चात् दूसरे के दोषों में दृष्टि देके निकालें। अब इन बौद्ध जैनियों के मत का विषय सब सज्जनों के सन्मुख रखता हूँ जैसा है वैसा विचारें।

(क) प्यारे पाठकगण! सब दूसरों ही को उपदेश देना जानते हैं खुद स्वामी जी को ही हठ के अतिरिक्त और कुछ नहीं आता था यह अक्षरशः सिद्ध हुआ कि जैन ग्रंथकारों को प्रथम ही से शंका थी? जैन आम्नाय के लाखों ग्रंथ इस समय भी पृथ्वी पर विद्यमान हैं किसकी मजाल है जो उन पर लेखनी चलावे हां स्वामी जी की तरह व्यर्थ गाल बजाने का सा काम हर कोई भी कर जानता है, यदि स्वामी जी सत्यवक्ता थे तो साफ क्यों न कह दिया कि हमारे माता पिता

का यह नाम है, और जैसे चार (जार) पुरुष किसी भले घर की स्त्री का गुप्त ढका वेदकर कहे कि यह चक्षुरहित व नङ्गी है, तो उसके इस कहनेसे वह राजा त्याग कर मुख नहीं दिखावेगी। इसी प्रकार स्वामी जी के कहने से कोई जैनी अपने धर्म ग्रन्थों को गलियारे की गैंद नहीं बना सकता। सैर पाठकवृन्द। दूसरे भाग * मे हम वही उत्तर लिखेंगे जो स्वामीजीकी यथार्थ पोल खोले इस भूमिका का उत्तर तो इतना ही बहुत है। इति "सत्यार्थप्रकाश" द्वादश समुल्लास भूमिकाया समीक्षा समाप्तम्।

पुन पृ० ५५८ पं० ९ मे स्वामी जी लिखते हैं कि "जो दूसरों के मतोंको कि जिसमें हजारों करोडों मनुष्य हों झूठा बतलावे और अपने का सच्चा उससे परे झूठा दूसरा मत कौन हो सकता है? क्योंकि किसी मत मे सब मनुष्य बुरे और भले नहीं हो सकते"।

न्यायवानों को ठीक ध्यान देना उचित है कि पूर्वोक्त लेख मे खुद स्वामी जी ही झूठे मिथ्या वादी सिद्ध होते हैं, और जैन बौद्ध पुराणी ईसाई मुसलमान सब सच्चे ठहरते है क्योंकि स्वामी जी ने उक्त सब धर्मों को झूठा बतलाया है।

पुन पृ० ६०१ पं० १४ से लिखा है कि "चारो वेदों के ब्राह्मण, ६ अंग ६ उपाग, चार उपवेद और ११२७ (ग्यारह सौ सत्ताईस) वेदों की शाखा जो कि वेदों के व्याख्या रूप ब्रह्मादि महर्षियों ने बनाये ग्रन्थ हैं उनको परत प्रमाण अर्थात् वेदों के अनुकूल होने से प्रमाण और जो इनमें वेद विरुद्ध वचन है उनको अप्रमाण मानता हूँ।

इस पर मालदेव पराजय पृ० ३१ पं० २ पर लिखा है कि "यहां ब्रह्मादि महर्षियों के बनाये ग्रन्थों में वेद विरुद्ध वचन कहने से स्पष्ट सिद्ध है कि स्वामी जी को ब्रह्मादि महर्षियों से अधिक विद्वान् होने का अभिमान था और उनका

---

* सम्पूर्ण "सत्यार्थप्रकाश" चतुर्दश समुल्लास का उत्तर दूसरे भाग में स्पष्ट रूप पर लिखा गया है, परन्तु उसके छपने में अभी द्रव्यके अभावकर विलम्ब मालूम होता है, इसलिये केवल द्वादश समुल्लास का उत्तर "जैन सुधा सिन्धु" नाम से जुदा छपाया गया है।

अज्ञान उन्हीं के लिखे हुये सत्यार्थप्रकाशादि ग्रन्थों मे सम्यक् प्रकट है" ।

आर्योद्देश्य रत्नमाला की सख्या २९ में मुक्ति का स्वरूप इस प्रकार लिखा है कि—

२९ मुक्ति । अर्थात् जिससे सब बुरे कामों और जन्म मरणादि दुःख शरीर से छूट कर सुख स्वरूप परमेश्वर को प्राप्त हो के सुख ही मे रहना मुक्तिकहाती है।

इसके प्रतिकूल नवीन 'सत्यार्थप्रकाश' पृ० ६०२ पक्ति २३ में यों लिखा है

१०—"मुक्ति" अर्थात् सब दुखों से छूटकर वध रहित सर्वव्यापक ईश्वर और उसकी सृष्टि में स्वेच्छा से विचरना नियत समय पर्यन्त मुक्ति के आनन्द को भोग के पुन ससार में आना" इसी प्रकार आर्योद्देश्य रत्नमालाके प्रतिकूल नवीन "सत्यार्थप्रकाश" में अनेक वचन हैं ।

जो आर्य राजवंशावली स्वामी जी ने नवीन "सत्यार्थप्रकाश" के पृ० ३९७ से ४०० तक लिखी है उसके विषय में लिखा है कि यह विषय, विद्यार्थी सम्मिलित "हरिश्चन्द्र चन्द्रिका" और "मोहन चन्द्रिका" से अनुवाद किया है। यह पाक्षिक पत्रिका श्री नाथद्वारे से निकलती है इसके सम्पादक ने मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष १९ । २० किरण अर्थात् दो पाक्षिक पत्र में छापा था । और अनुभव होता है कि स्वामी जी के पास यह पत्रिका पौष मास मे आई होगी जो पुस्तक के पृ० ३९५ के पश्चात् सम्मिलित हुई, इससे यह स्पष्ट जाना जाता है कि जब पौष मास तक "सत्यार्थप्रकाश" के ४०० पृ० पूरे हुये तो पूरा ग्रन्थ स्वामी जी के उदयपुर रहते रहते ही पूरा हो गया होगा परन्तु स्वामीजी ने उसके अन्तमें पूर्ण होनेका सम्वत्, मास, दिन, तारीख कुछ भी नहीं लिखा मालूम नहीं ऐसा क्योंहुआ ? इति सत्यार्थ प्रकाश समीक्षा सम्पूर्णम् ।

आश्विन सम्वत् १९३९ में ऋग्वेदभाष्य अंक ४२ । ४३ छपकर प्रकाशित हुआ । कार्तिक सम्वत् १९३९ में यजुर्वेदभाष्य अंक ४२ । ४३ वैदिक यन्त्रालय प्रयाग से छपकर प्रकाशित हुआ, और स्वामी जी के उदयपुर रहते हुये ही अजमेर नगर से प्रकाशित होने वाले "देश हितैषी" नाक पत्र सख्या ७ मास कार्तिक सम्वत् १९३९ में मुन्शी इन्द्रमणि मुरादाबाद निवासी का दिया हुआ निम्नलिखित

विज्ञापन प्रकाशित हुआ था।"

॥ मुन्शी इन्द्रमणि जी का दिया हुआ विज्ञापन ॥

प्रकट हो कि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी की सम्मति से जगन्नाथदास की प्रश्नोत्तरी के खण्डन मे एक व्याख्यान सर्वथा मिथ्या देशहितैषी नामक मासिक पत्र अजमेर मे एक उचित वक्ता के नाम से मुद्रित हुआ है, और उसमे प्राय मेरा नाम भी निन्दा के साथ लिखा है उसका उत्तर भी शीघ्र ही मासिक पत्र के द्वारा (जो कि हम धर्म्माधर्म के निर्णय मे प्रचलित करना चाहते हैं) मुद्रित होकर सज्जनों के अवलोकनार्थ प्रकाशित किया जायगा, वरन व्याख्यान के अंत मे जो यह लिखा है कि जगन्नाथदास और इन्द्रमणि की प्रतिष्ठा से विरुद्ध करना आदि अन्यथा व्यवहारों को जो कोई सज्जन पुरुष जानना चाहे वह आर्य्यसमाचार मेरठ के लाला रामसरन दास आदि भद्र पुरुषों से पूछ देखे कि अन्य मार्गियो के विवाद विषय के शांति कारक व्यवहार प्रसग मे इन्होंने कैसा २ विपरीत व्यवहार किया है मैंने अद्य पर्यन्त उस विषय को स्वामी जी की अति निन्दा का कारण जानकर मुद्रित नहीं कराया परन्तु जब कि ये उलटा चोर कोतवाल को डाटे इस दृष्टान्त के सदृश अब मेरी मिथ्या निन्दा लोगों से करने और छपवाने लगे तब उस विषय का प्रकाशित कर देना अत्यावश्यक जाना। विदित हो कि जिस समय मुझ पर मुसलमानों के झगडे मे ५००) रुपये दण्ड हुआ तो स्वामी जी ने समाजों को पत्र लिखे कि मुन्शी इन्द्रमणि की सहायता के लिये चन्दा करके हमारे तथा लाला रामशरण दास सभासद आर्य्यसमाज मेरठ के पास भेजो यहां से एकत्र करके मुन्शी जी के पास भेजा जायगा जिससे कि वह उक्त दण्ड क्षमा होने के लिये अपना मुकद्दमा लडावें, स्वामी जी के लेखानुसार, लाहोर, अमृतसर रुड़की, फर्रुखाबाद, फीरोजपुर, शाहजहापुर, औरंगाबाद, दारजिलिङ्ग, गुरदासपुर सैदाम, मुलतान, बटाला, आदि के सज्जनों ने यथोचित द्रव्य इकट्ठा करके स्वामी जी तथा लाला रामशरण दास जी के पास भेजना प्रारम्भ किया जब कि उक्त मुकद्दमे की अपील जजी मुरादाबाद में दायर थी तो मुझको ६००) मि स्टर हिल साहिब बैरस्टर हाईकोर्ट के पास भेजने की आवश्यकता हुई तब मैंने

आप मेरठ जाकर लाला रामशरण दास से कहाँ कि ६००) रुपये बैरिस्टर साहिब के पास भेजने हैं जिसमें ४००) चार सौ तो मेरे पास हैं २००) चन्दे के रुपये में से जो तुम्हारे पास जमा हुआ है दे दीजिये लाला साहिब ने उत्तर दिया कि यहाँ से तो अभी तुमको रुपया न मिलेगा वहीं से कुछ यत्न करके भेज दो फिर मैंने उनसे प्रश्न किया कि अब तक आपके पास कितना रुपया जमा हुआ है तो उत्तर दिया कि समाज से बतलाने की आज्ञा नहीं है, धन्य है जिसकी सहायता के लिये सज्जनों ने धन भेजा उसको देना क्या यह भी न बतलाया जाय कि कितना द्रव्य है, निदान मैं वहां से अपने स्थान को चला आया और एक सज्जन की सहायता से बैरिस्टर साहिब को ६००) रुपये भेज दिये, फिर जब जजी मुरादाबाद से ५००) जुरमाने में से ४००) रुपये कम होकर १००) रुपये शेष रहे तब लाला राम सरनदास जी मुरादाबाद आये थे मैंने उनसे कहा कि हाईकोर्टमें अपील करना है, रुपये भेजिये तब भी लाला साहिब ने वही उत्तर दिया कि यहां से तो रुपया न मिलेगा, वहीं से यत्न करके हाईकोर्ट में अपील कर दीजिये, फिर लाला रामसरणदास जी अपने स्थान को चले गये और मैंने रुपये के लिये कई बार स्वामी जी को तथा लाला रामशरण दास जी को लिखा मुझे दोनों जगह से कुछ उत्तर न मिला तब मैंने भारत मित्र कलकत्ते में * यह छपवाया कि जिन सज्जनों को मेरे मुकदमें में सहायता करनी हो वह जो देना चाहें वह मेरे पास भेजें अन्य जगह का भेजा हुआ द्रव्य मेरे को नहीं मिलता, फिर स्वामीजी को लिखाकि इस मुकद्दमें के लिये आपके तथा रामसरणदास के पास धन जमा हुआ और हमको नहीं मिलता यदि आप का विचार ऐसा ही है तो स्पष्ट लिख दीजिये हम हाई कोर्टका अपील न करें ? इस लिखा पढ़ी के उपरान्त स्वामीजीने ६००) रुपये तो भेजे और शेषधन रामशरणदास जी के पास रहा, हाँ जिन महाशयोंने मेरे पास धन भेजा वह मेरे पास पहुँचा और उन्हों के सहाय से इस मुकद्दमें का काम चला, यहां यह विषय संक्षेप से निवेदन किया गया विस्तार पूर्वक फिर प्रकट किया जावेगा । अब बुद्धिमान न्याय करें कि जो धन सज्जनो ने मेरी सहायता के निमित्त स्वामीजी तथा रामशरण

* मुन्शी इन्द्रमणि के उस विज्ञापन की नकल जो भारत मित्र में छपी थी छुटी इस लिये नहीं लिखी कि उसका सारांश इसमें आ चुका है ।

णदासजी के पास भेजा और उन्होंने वह सम्पूर्ण मुझको न दिया किंतु आप उसके स्वामी बनबैठे तो अन्य मार्गियों के विवाद विषय के शांतिकारक व्यवहार प्रसग में स्वामीजी और रामशरणदास जीने विपरीत व्यहार किया है या मैंने (इन्द्रमणि मुरादाबाद) ।

स्वामीजी की मुन्शी कन्हैयालाल अलखधारीसे भी अधिक प्रीतिथी उनकी बढाई आर्य्यसमाचार मेरठ सख्या ८ जिल्द ४ में इस प्रकार लिखी है ।

ऋषि सिफत मुनि बकअत चशमय इस्लाह मन्बअफलाह हिकमत पनाह कजीलत दस्तगाह सिदक मुजस्सिम् महतरम मुकर्रम मअजम जनाब मुन्शी कन्हैयालाल अलखधारी ।

मार्गशिर्ष सम्वत् १९३९ मे ऋग्वेदभाष्य अक ४४ । ४५ वैदिक यत्रालय प्रयाग से मुद्रित होकर प्रकाशित हुआ ।

पौष सम्वत् १९३९ मे वैदिक यत्रालय प्रयाग से स्वामीजी रचित पुस्तक अव्ययार्थ १ आख्यातिक १ सौवर १ परिभाषिक १ धातुपाठ १ गणपाठ १ उणादिकोष १ यह सात पृथक् २ और यजुर्वेदभाष्य अक ४४ । ४५ छपकर प्रकाशित हुये । और पौष शुक्ला १ बुधवार का लिखा एक लेख माघ सम्वत् १९३९ के देश हितैषी में उचित वक्ता के नामसे प्रकाशित हुआ जिसको मुन्शी इन्द्रमणि जी मुरादाबादी खास स्वामीजी का ही लिखा हुआ खयाल करते हैं नकल उसकी यह है, श्रीयुत देश हितैषी सम्पादक समीपेषु, ।

मान्यवर नमस्ते ।

विदित हो कि एक मुन्शी इन्द्रमणि जी का विज्ञापनरूप मेरे पास आया इसका उत्तर बहुत लम्बा है परन्तु इस समय इन पत्र के थोड़े से उत्तर को आप अपने पत्र मे स्थान देके मुझको कृतार्थ कीजिये । यदि मुन्शी इद्रमणिजी अपने लेखानुसार सच्चे हों तो उस व्यवहार में अन्यत्र मे जितना आय व्यय हुआ है आप के पत्र (दे० हि०) मे छपवा के प्रसिद्ध करें और इसी प्रकार लालारामशरणदास जी भी करें । जिसके देखने मे सज्जन लोगों को स्वय सत्याऽसत्य का विचार हो जायगा । अर्थात् समझ लेंगे । और उस हिसाबके नीचे यह भी लिखा होकि जिस २ भद्र आर्य्य जनने मुन्शीजी और मुसलमान मुरादाबाद के झगड़े मे जितने २ रुपये

जिस २ के पास भेजे हों और जिसकी २ रसीद भी उन के पास हो नाम लेख पूर्वक वह २ देशहितैषी पत्र सम्पादक के पास भेजें और उस २ के पत्र को आप अपने पत्र मे छापकर प्रसिद्ध कर दिया करें जिससे सत्य और असत्य सबके सामने प्रकाशित होजाय इसमें सत्यतो यह है कि मुन्शी जी झूठा अपराध स्वामी दयानन्द सरस्वती जी और लालारामशरणदास रईस मेरठ के ऊपर आरोपित करते हैं वह सब अपराध मुन्शीजी ही का है क्योंकि जब मुन्शी जी पर मजिस्ट्रेट मुरादाबादने ५००) रु० दण्ड किये थे उस के पश्चात् मुन्शीजी मेरठ मे आये (जहा उस समय स्वामीजी भी उपस्थित थे) और कहा कि यह विवाद सब वेदमतानुयाइयों के ऊपर समझना चाहिये न केवल मुझ पर इस पर स्वामीजी और अन्य सब सज्जनोने कहा कि यह ठीक है क्योंकि मुन्शीजी ने वेदमत की रक्षा के लिये इतना बडा परिश्रम किया है इस लिये इस समय इस मामलेमें सर्व वैदिकोंको सहायता करना उचित है, इस पर सब की यही सम्मति हुई कि इस बात के लिये एक सभा नियत हो और चन्दा इकठ्ठा करे जिसमे उसके आय व्ययका हिसाब वह सभा रक्खे और मुंशीजी को उसमे से इतना धन दिया जाय कि जितना खर्च उचित होना हो । अत को यह सभा मेरठ मे नियत हुई और मुंशीजी से कहा कि जो कोई आपके पास रुपये भेजे उसको आप भी इस सभा के कोषाध्यक्ष लाला रामशरणदासजी के पास भेज दिया करें और उसके आय व्ययकी परताल (जाच) यह सभा किया करे और हिसाबभी लेवे इन सब बातों को मुन्शी जी ने भी स्वीकार स्वामीजी आदिके सम्मुख कियाथा और वह भी उसी समय निश्चय हुआथा कि सिवाय उस सभा के सभासदोंके दूसरे से उस धन का आवव्यय व संख्या प्रसिद्ध तब तक न करनी चाहिये कि जब तक यह कार्य पूरा न हो जाय, यदि चदे का धन कम आवे और खर्च अधिक करना हो तो किसी योग्य धनाढ्य पुरुष से सभा लेकर कार्य्य करे इसी लिये लाला रामशरण दास जी ने जमा हुये धन की संख्या मुन्शी जी को नहीं बतलाई थी । क्योंकि सभा की आज्ञा बतलानेकी नहीं कि इस गुण को मुन्शीजी ने दोष समझा, धन्य है मुन्शीजीकी बुद्धिमत्ताको इससे सब सज्जन लोग समझ सकते हैं कि यह मुन्शी जी को संख्या न बतलाने मे लाला रामशरणदास जी का दोष है ? व इस पर क्रोधित होकर यथा तथा कुवाच्य कहने लिखने में मुन्शी इंद्रमणि जी का ? इस

विपरीत व्यवहार का कारण यह विदित होता है कि जब इधर उधर से बहुत धन मुन्शी जी के पास आने लगा तब लोभ के वश में होकर जो पूर्वकृत नियमानुसार अर्थात् जितना धन मुन्शी के पास आवे वह मेरठ सभा के कोषाध्यक्ष लाला राम शरणदास जी के पास तो भेजना दूर रहा किंतु जब ताता रामशरणदास जी ने कई बार पत्र भेज कर हिसाब मांगा तो मुन्शी जी ने सौन साध के हिसाब नहीं दिया, तब लाला रामशरणदास जी को निश्चय हुआ कि मुन्शीजी के मनमें कुछ अन्य आशा है इस बात के निश्चयार्थ लाला श्यामसुन्दर रईस मुरादाबाद के पास लाला रामशरणदास जी ने पत्र भेजा कि मुन्शी जी से हिसाब पूछ कर मेरे पास भेजो उनका भी मुन्शी जी ने हिसाब नहीं दिया किंतु इस सर्व वैदिक मत के स्वार्थ धन को अपना निज धन समझ लिया तब से लाला रामशरणदास जी ने मुन्शी जी को धन देना बन्द किया और स्वामी जी को पत्र द्वारा विदित किया तब स्वामी जी ने उत्तर दिया कि इस समय इस बात के होने से कार्य में विघ्न होगा कार्य होने दीजिये और ६००) रु० जो मांगते हैं देदीजिये तब उन्होंने देदिये और इससे अधिक धन मुन्शीजी को कितना दिया और कितना लाला रामशरणदास जी के पास जमा रहा यह बात हिसाब छपने से सब को प्रसिद्ध हो जायगी और स्वामी जी ने उक्त लाला श्यामसुन्दर कोठी वाले रईस मुरादाबाद के पास पत्रभेजा कि मुन्शीजी से हिसाब लेकर ला० रामशरणदासजी के पास भिजवा दीजिये उन्होंने उत्तर दिया कि मुन्शी जी हिसाब नहीं बनलाते, धन्य रे धन, तेरे में बड़ी आकर्षण शक्ति है तू बड़ों २ को भी धर्म से डिगाकर नीचे गिरा देता है, फिर जब देहरादून से आते समय मेरठ के स्टेशन पर लाला रामशरणदासादि से मेल हुआ तब मुन्शी जी के विषय की बात सुन बड़ा आश्चर्य मान के उनसे (स्वामी जी ने) कहा कि मैं कोयल इसीलिये ठहरके बहा मुन्शीजी को बुलाकर समझा दूंगा स्वामीजी ने कोयल से आकर मुन्शीजी को बुलानेके लिये तार दिया उसके उत्तर में मुन्शीजी ने तार में खबरदी कि मैं बीमार हूँ नारायणदास प्रयागको गयाहै अर्थात् मैं नहीं आ सकता। पश्चात् स्वामीजी ने आगरे में आकर मुन्शीजी के पास पत्र भेजा कि यदि यह बात सत्य है तो इसमें आपकी बड़ी निन्दा होगी आप यहां शीघ्र आइये। मुन्शीजी ने क्रोधित होके असभ्यताकी बात जो कि उनके लिखने योग्य न थी लाला रामशरण-

दासजी की निन्दा पूर्वक बहुतसी लिखी और यह भी उस पत्रमें लिखा कि आप लाला रामशरणदासजी से हिसाब मंगवाइये तब स्वामीजी ने लाला रामशरणदास जी को लिखा कि आप हिसाब लिखकर मेरे पास यहां भेज दीजिये जब मैं आपके हिसाब को मुन्शीजी को दिखा दूंगा तब वे भी अपना हिसाब देंगे इसके थोडे ही दिनों के पश्चात् मुन्शीजी तथा लाला जगन्नाथदासजी आदि मथुरा होते हुये आगरेमें स्वामी जीके पास आये जब स्वामीजी ने उनसे कहा कि हिसाब लाये हो या नहीं तब मुंशी जी ने कहा कि हां लायेहैं, परन्तु पहिले लाला रामशरणदासजीका हिसाब मंगवालें तब हम भी दिखादेंगे तब स्वामीजी ने कहा कि जब आपके पास हिसाब है तो क्यों नहीं दिखलाते तब पुन मुन्शीजी और लाला जगन्नाथदासजी ने कहा कि उनका हिसाब आने दीजिये तब दिखलावेंगे, पाठकगणो परमेश्वरकी कृपा से और लाला राम शरणदास जी की सचाई से दूसरे ही दिन मेरठ से हिसाब आगया स्वामी जी ने मुन्शीजी तथा लाला जगन्नाथदासको दिखलादिया पश्चात् स्वामीजी ने कहा कि अब तो तुम दिखलाओ, तब मुन्शी जी के कहने से लाला जगन्नाथदास जी ने बेग को हाथ लगाया इधर उधर हाथ फेरफार कर कहा कि मुन्शी जी वह हिसाब का कागज तो मुरादाबाद ही में भूल आया हूं, सभ्यगणो! देखो क्या मिली हुई गुरु चेले की भक्तिहै तब स्वामीजी ने कहा कि जितना स्मरण हो उतनाही कटसे लिखवाइये, तब मुंशीजी लिखवाने लगे अनुमान है कि २०००) दो हज़ार तक का हिसाब तो लिखवाया और कहने लगे कि अब मुझे याद नहीं है हम मुरादाबाद पहुँच कर शीघ्र हिसाब भेज देंगे सो आज तक नहीं भेजा। अब आप लोग इन बातों से विचार लेवें कि मुंशी जी सच्चे हैं व लाला रामशरणदास जी फिर मुंशी जी और लाला जगन्नाथ जी व्यर्थ वितण्डावाद करने लगे और कहा कि २५०) लाला बलभद्रास जी ने भेजेथे सो इस हिसाबमें जमा क्यों नहीं ? तब स्वामीजी ने कहाकि वे रुपये तो गुरुदासपुर से मेरे नाम आये थे मैंने लाला रामशरणदासजीको दियेथे न जाने उन्होंने जमा क्यों नहीं किए इसका समाचार मैं लिख कर मंगवा दूंगा, स्वामी जी ने उसी दिन लाला रामशरणदासजी को पत्र लिख उत्तर मंगवाया तब उन्होंने लिखा कि यह मेरे मुंशी की भूल से लाहौर के रुपयों के साथ गुरुदासपुर के भी २५०) जमा लिखे गये हैं अर्थात् जिस दिन १५०) रुपया लाहौर समाज से आये

ये उसी दिन २५०) के नोट आपने भी दिये थे भूल से ४००) लाहौर समाज के नाम से जमा किए हैं अब मुन्शी जी इसका निश्चय करावें अर्थात् इन २५०) रु० के सिवाय किसी ने स्वामी जी के पास रुपया नहीं भेजा यदि भेजा हो तो जिसके पास स्वामीजी की हस्ताक्षरी रसीद होगी भले ही प्रसिद्धि के लिये छपवा देवे किंतु स्वा० जी की कुछ इससे विपरीत बात हो तो स्वामी जी प्रतिज्ञा पूर्वक कहते हैं कि सिवाय २५०) के मेरे पास एक कौडी भी किसी की नहीं आई क्योंकि जो कोई स्वामी जी से पूछता वा पत्र भेजता था तो स्वामी जी यही उत्तर देते थे, कि जो भेजना हो सो लाला रामशरणदास जी के पास मेरठ सभा को भेजो क्योंकि उसी सभा के आधीन यह सब प्रबन्ध है। इस उत्तम प्रबन्ध को तोड़ने वाले मुन्शी जी हैं कि जिन्होंने भारतमित्रादि समाचारों में अपना मतलब सिद्ध करने के लिये अड बड छपवाकर स्वप्रयोजन सिद्ध किया और अपनी प्रशंसा कर बट्टा लगाया, शोक है यह 'धन' छुरी बला है, जो बड़े २ चतुरों को भी फसा लेता है, उसी दिन स्वामी जी ने मुन्शी जी से कहा कि हिसाब ठीक २ मेरठ सभा में भेज दीजिए जो एक नियम हुआ है उसका तोड़ना अच्छा नहीं आप पूर्वकृत नियमानुसार बर्तिये जिससे प्रीति पूर्वक सब सहायक रहें इसी में अच्छा है, विरोध होना अच्छा नहीं तब तो मुन्शी जी और लाला जगन्नाथ दास जी दोनों क्रोधाविष्ट होकर कहने लगे कि हम से हिसाब लेने वाला कौन है इसके मालिक हम हैं हमारे पर यह सब मामला चला है, हमारे नाम चन्दा जो आता है हमारा ही है और लाला जगन्नाथदासजी बोले कि यदि आप से कोई वैदिक यन्त्रालय का हिसाब पूछे तो क्या आप देंगे स्वामी जी बोले कि कल लेते हो वह आज ही लो यहां कोई गुप्त नहीं किंतु जब कोई आर्य्यसमाज का प्रतिष्ठित सभासद हिसाब लेना चाहे उसको कोई अटकाव नहीं फिर स्वामी जी ने मुन्शी जी को एकांत में लेजा के समझाया * कि ऐसी बात करना आप को उचित नहीं है एक तो वह बात जो मेरठ में आपने कही थी कि यह सब वैदिक धर्म्म वालों का मामला है मेरा अकेलेका नहीं और इससे विरुद्ध आज की बात है कि मेरे ही अकेले का मामला आदि है। सुनिये

* यह प्रकट है कि बहुधा बातों में स्वामी जी गुप्त भाव से भी काम लेते थे।

दासजी की निन्दा पूर्वक बहुतसी लिखी और यह भी उस पत्रमें लिखा कि आप लाला रामशरणदासजी से हिसाब मंगवाइये तब स्वामीजी ने लाला रामशरणदास जी को लिखा कि आप हिसाब लिखकर मेरे पास यहां भेज दीजिये जब मैं आपके हिसाब को मुन्शीजी को दिखा दूंगा तब वे भी अपना हिसाब देंगे इसके थोड़े ही दिनों के पश्चात् मुन्शीजी तथा लाला जगन्नाथदासजी आदि मथुरा होते हुये आगरेमें स्वामी जीके पास आये जब स्वामीजी ने उनसे कहा कि हिसाब लाये हो या नहीं तब मुंशी जी ने कहा कि हां लाएहैं, परन्तु पहिले लाला रामशरणदासजीका हिसाब मगवालें तब हम भी दिखादेंगे तब स्वामीजी ने कहा कि जब आपके पास हिसाब है तो क्यों नहीं दिखलाते तब पुन मुन्शीजी और लाला जगन्नाथदासजी ने कहा कि उनका हिसाब आने दीजिये तब दिखलावेंगे, पाठकगणो परमेश्वरकी कृपा से और लाला रामशरणदास जी को सवाई से दूसरे ही दिन मेरठ से हिसाब आगया स्वामी जी ने मुन्शीजी तथा लाला जगन्नाथदासको दिखलादिया पश्चात् स्वामीजी ने कहा कि अब तो तुम दिखलाओ, तब मुन्शी जी के कहने से लाला जगन्नाथदास जी ने बेग को हाथ लगाया इधर उधर हाथ फेरफार कर कहा कि मुन्शी जी वह हिसाब का कागज तो मुरादाबाद ही में भूल आया हू, सभ्यगणो! देखो क्या मिली हुई गुरु चेले की भक्तिहै तब स्वामीजी ने कहा कि जितना स्मरण हो उतनाही कंठसे लिखवाइये, तब मुंशीजी लिखवाने लगे अनुमान है कि २०००) दो हजार तक का हिसाब तो लिखवाया और कहने लगे कि अब मुझे याद नहीं है हम मुरादाबाद पहुँच कर शीघ्र हिसाब भेज देंगे सो आज तक नहीं भेजा। अब आप लोग इन बातों से विचार लेवें कि मुंशी जी सच्चे हैं व लाला रामशरणदास जी फिर मुंशी जी और लाला जगन्नाथ जी व्यर्थ वितण्डावाद करने लगे और कहा कि २५०) लाला बलभदास जी ने भेजेथे सो इस हिसाबमें जमा क्यों नहीं ? तब स्वामीजी ने कहाकि वे रुपये तो गुरुदासपुर से मेरे नाम आये थे मैंने लाला रामशरणदासजीको दियेथे न जाने उन्होंने जमा क्यों नहीं किए इसका समाचार मैं लिख कर मंगवा दूंगा, स्वामी जी ने उसी दिन लाला रामशरणदासजी को पत्र लिख उत्तर मगवाया तब उन्होंने लिखा कि यह मेरे मुंशी की भूल से लाहौर के रुपयों के साथ गुरुदासपुर के भी २५०) जमा लिखे गये हैं अर्थात जिस दिन १५०) रुपया लाहौर समाज से आये

थे उसी दिन २५०) के नोट आपने भी दिये थे भूल से ४००) लाहौर समाज के नाम से जमा किए हैं अब मुन्शी जी इसका निश्चय करावें अर्थात् इन २५०) रु० के सिवाय किसी ने स्वामी जी के पास रुपया नहीं भेजा यदि भेजा हो तो जिसके पास स्वामीजी की हस्ताक्षरी रसीद होगी भले ही प्रसिद्धि के लिये छपवा देवे किंतु स्वा० जी की कुछ इससे विपरीत बात हो तो स्वामी जी प्रतिज्ञा पूर्वक कहते हैं कि सिवाय २५०) के मेरे पास एक कौड़ी भी किसी की नहीं आई क्योंकि जो कोई स्वामी जी से पूछता या पत्र भेजता था तो स्वामी जी यही उत्तर देते थे, कि जो भेजना हो सो लाला रामशरणदास जी के पास मेरठ सभा को भेजो क्योंकि उसी सभा के आधीन यह सब प्रबन्ध है। इस उत्तम प्रबन्ध को तोड़ने वाले मुन्शी जी हैं कि जिन्होंने भारतमित्रादि समाचारों में अपना मतलब सिद्ध करने के लिये अड बड छपवाकर स्वप्रयोजन सिद्ध किया और अपनी प्रशंसा कर बट्टा लगाया, शोक है यह 'धन' बुरी बला है, जो बड़े २ चतुरों को भी फसा लेता है, उसी दिन स्वामी जी ने मुन्शी जी से कहा कि हिसाब ठीक २ मेरठ सभा में भेज दीजिए जो एक नियम हुआ है उसका तोड़ना अच्छा नहीं आप पूर्वकृत नियमानुसार वर्तिये जिससे प्रीति पूर्वक सब सहायक रहें इसी में अच्छा है, विरोध होना अच्छा नहीं तब तो मुन्शी जी और लाला जगन्नाथ दास जी दोनों क्रोधाविष्ट होकर कहने लगे कि हम से हिसाब लेने वाला कौन है इसके मालिक हम हैं हमारे पर यह सब मामला चला है, हमारे नाम चन्दा जो आता है हमारा ही है और लाला जगन्नाथदासजी बोले कि यदि आप से कोई वैदिक यन्त्रालय का हिसाब पूछे तो क्या आप देंगे स्वामी जी बोले कि कल लेते हो वह आज ही लो यहां कोई गुप्त नहीं किंतु जब कोई आर्य्यसमाज का प्रतिष्ठित सभासद हिसाब लेना चाहे उसको कोई अटकाव नहीं फिर स्वामी जी ने मुन्शी जी को एकांत में लेजा के समझाया * कि ऐसी बात करना आप को उचित नहीं है एक तो वह बात जो मेरठ में आपने कही थी कि यह सब वैदिक धर्म्म वालों का मामला है मेरा अकेलेका नहीं और इससे विरुद्ध आज की बात है कि मेरे ही अकेले का मामला आदि है। सुनिये

* यह प्रकट है कि बहुधा बातों में स्वामी जी गुप्त भाव से भी काम लेते थे।

मुन्शी जी यदि मैं आपको पहले से ऐसा जानता तो आपके साथ एक क्षणमात्र भी न ठहरता और आपका कुछ भी सामर्थ्य नहीं था कि अकेले इस प्रकार सहायता प्राप्त कर सकते । अस्तु मैं तो उसी बात को समझा हूँ कि यह सब वैदिक मतानुयाइयो के साथ की बात है । तब तो मुन्शी जी कुछ शांत हुए, पीछे स्वामी जी ने कहा कि अस्तु अब शेष कार्य्य आप सिद्ध कीजिये और प्रयाग मे दो पुरुषों का नाम लिखवाया कि उनकी सम्मति से सब काम कीजियेगा, और मुरादा. बाद मे पहुँचने के हिसाब मेरठ में शीघ्र भेज दीजियेगा, मुन्शी जी ने कहा कि जाते ही भेज दूगा सो भी न किया और न हिसाब भेजा करते और भेजते तो जब उनके मन में शुद्ध भाव होता प्रयाग में भी गुप्त व्यय कर कराके (जैसा कि मुरादाबाद जजी में व्यय व्यवस्था हुई थी) अपनी नियत का फल पाकर चले आये फिर भी न जाने किस २ सज्जन पुरुष के पुरुषार्थ से श्रीमान् गवर्नरजनरल साहिब बहादुर से प्रार्थना करके १००) रुपये का दण्ड भी माफ कराया गया, यदि अब भी मुन्शी जी अपनी बात को सच्चा करना चाहें तो मुसलमानों के साथ के मामले में जहा से जितना २ धन जिस २ ने भेजा हो उन सबका धन नाम ठिकाना आदि लिखें और जितना २ जिस कार्य्य में व्यय हुआ वह प्रसिद्ध सब समाचारो मे छपवा दें और जितना धन उस मामले के विषय में व्यय से शेष रहा हो उसको मेरठ सभा में भेज देवें क्योंकि जो मेरठ सभा का वह विचार निश्चय हुआ था कि यदि मुन्शी जी के मामले से चन्दे का धन बचे तो उसका क्या किया जाय इस पर सबकी यही सम्मति हुई थी कि उस धन को ।।) आने ब्याज में किसी धनाढ्य के पास रक्खा जाय और जब अन्य मतावलम्बियों के साथ वैदिक आर्य्यों का विवाद राजन्याय घर में चले तब उसी मे से इसका व्यय किया जाय अन्यत्र नहीं क्योंकि यह धन इसी लिये इकट्ठा किया जाता है और जैसा मुन्शी जी पर कष्ट पडा है सम्भव है कि अन्यपर भी कभी न कभी आन पड़े इस लिये इस धन की स्थिरता और उन्नति सदा करते जाना चाहिये । परन्तु पाठक गण ! इस महोपकारक कार्य्य को मुन्शी जी के लोभने बढ़ने न दिया, अब बुद्धिमान लोग विचार लेवें कि इसमें स्वामी जी का और लाला रामशरण दास जी का अन्यथा व्यवहार है वा मुन्शी इन्द्रमणि जी का अधिक तिरस्कार

बुद्धिमानों के सामने आवश्यक नहीं क्योंकि प्राज्ञजन थोड़े ही लेख से बहुत समझ लेते हैं, अलमिति विस्तरेण बुद्धिमद्वर्येषु ॥ निधि रामाङ्क चन्द्रेऽब्दे पौष मासे सिते पक्षे । प्रतिपत्सौम्य वारेऽहि पत्रमेतद् लेखितम् ॥ १ ॥ सम्वत १९३९ पौष शुक्ला० १ बुधवासरे ।

(वही आपका परम मित्र उचित वक्ता)

॥ देशहितैषी ॥ हमने अपने नियमानुसार दोनों महाशयों के पत्र यथावत् प्रकाश कर दिये अब हम इतना और कह सकते हैं कि जिस प्रकार से हमारे पत्र प्रेरक "उचित वक्ता" ने जो मुन्शी जी के प्रति लिखा है कि "अपनी बात को सच्ची करने के लिये इस मामले में जहा २ से जितना रुपया जिस २ ने भेजा हो उनका नाम धन ठिकानादि सहित लिखें और जितना जिस जिस कार्य्य मे खर्च हुआ हो प्रसिद्ध सब समाचारों मे छपवा दें इत्यादि" वास्तव में यह बहुत उत्तम बात है और ऐसा करने में मुन्शी जी को लेशमात्र भी कलक नहीं लग सकता और वैसे मुन्शीजी इससे विरुद्ध अपना अमूल्य समय वृथा खोकर वादानुवाद से समाचारो के कालम काले भले ही किया करो कभी इस कलक से नहीं बच सकते और यह हम सत्य कहते हैं कि जो सच्चा होता है उसको टाल-मटोल करने से क्या प्रयोजन। यदि मुन्शी इन्द्रमणिजी सच्चे हैं तो अपना हिसाब समाचारपत्रो द्वारा प्रकाशित कर अपनी सत्यताका परिचय दिखावें अन्यथा व्यवहार करने से मुन्शी जी के लिये अच्छा फल नहीं निकलते दीखता दूसरे अब हम श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज और लाला रामशरणदास जी से भी सविनय प्रार्थना करते हैं कि यदि हमारे पत्र प्रेरक उचित वक्ता का यह कथन सत्य है तो आप महाशयो को भी उचित है कि जितना २ रुपया मुन्शी इन्द्रमणि जी के मुकदमे के विषयका आप लोगोंके पास आया है उसको किसी समाचारपत्र द्वारा प्रकाशित कर इस विषय का शीघ्र निर्णय करना योग्य है और जब यह निश्चय हो जाय कि इतना रुपया मुन्शी जी की सहायता में आया और इतना खर्च होकर इतना बचा उस बचेहुये धन को उसी नियमानुसार (जो मुन्शी जी आदि ने मेरठ समाज मे स्वीकार किया था) किसी महाजन की कोठी में ।।) के सूद पर दे दिया जाय और जब २ अन्य मत वालों से वैदिक मतमन्तव्यों का

झगड़ा पड़े तो इस रुपये से सहायता ली जाया करे । (सपादक देशहितैषी)

पूर्वोक्त लेख का यथार्थ उत्तर कई मास पीछे मुन्शी जी के शिष्य लाला जगन्नाथ दास ने उर्दू अक्षरों में पुस्तकाकार सुदर्शन यन्त्रालय मुरादाबाद मे छपाकर प्रकाशित किया जिसमें प्रथम ही यह लिखा है ।

मुन्शी इन्द्रमणि का इल्तिमास स्वामी दयानन्द सरस्वती का संन्यास मत लफ पडित जगन्नाथ दास मतबअ सुदर्शन मुरादाबाद मे मुन्शी नारायणदास के अहतमाम से मत्बूअ हुआ ।

अब उर्दू से नागरी में अनुवाद करके हम यहां लिखते हैं, ।

परमात्मा जयति ।

सत्यमेव जयतेनानृत सत्येनपन्था विततो देवयान् ।

आर्य्य भाइयों को विदित हो कि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने एक लेख खेद कारक सर्वथा मिथ्या मुन्शी इन्द्रमणि के विषय मे "देश हितैषी" मासिकपत्र मास माघ सम्वत् १९३९ मुताबिक मास फरवरी सन् १८८३ ई० में अन्य मनुष्य के नाम से मुद्रित कराया है यह कार्य्य महानिंदनीय है आर्य्य पुरुषों के करने योग्य नहीं है क्योंकि जैसा आत्मा होता है, उसके प्रतिकूल चलना महा पाप है जैसे कहा है, ।

अन्यथा सन्तमात्मान मन्यथा सत्सुभाषते ।
किं तेन कृतंपापं चौरेणात्मापहारिणा ॥ १ ॥

अब मैं प्रथम उसके लेख को लिखता हूँ फिर उत्तर लिखता हू जिससे आर्य्यगण सत्याऽसत्य भली प्रकार निर्णय कर सकें * ।

जिन साहिबो ने मुन्शी जी को जरचन्दा दिया उन्होंने उनको अपने हस्ता क्षरी रसीद दे दी इस लिये स्वामी जी को उनसे हिसाब मांगना उचित नहीं है बस

* लाला जगन्नाथ दास ने अपनी पुस्तक इस तरह पर रची है कि प्रथम स्वामी जी का लेख फिर अपना परन्तु हम यहा केवल लाला जगन्नाथ दास जी का ही लेख ग्रहण करते है क्योंकि स्वामी दयानन्द सरस्वती का लेख ऊपर सम्पूर्ण लिखा जा चुका है ।

मुन्शी जी को क्या जरूरत है कि आमदनी व खर्च का हिसाब मुद्रित करावें ह स्वामी दयानन्द सरस्वती को प्रथम दिन से ही उचित था कि अपनी निर्दोषता सिद्ध करने के लिये सारी आमदनी व खर्चचन्दा का हिसाब मुन्शीजी को देते कि स्वामी जी ने जो बजा लोगों को पत्र लिखे कि मुन्शी इन्द्रमणि के मुकद्दमे के लिये चन्दा एकत्र करके हमारे पास भेजो, इसी प्रकार लाला रामशरणदास को मुकद्दमे के कचहरी में दायर रहते रहते उचित था कि चन्दा के द्रव्य को सरया से मुन्शी जी को सूचित करते कि उन्हान मुन्शी इन्द्रमणिजी के नाम से स्थान २ से चन्दा लेकर अपने घर अमानतके तौरपर जमा किया आश्चर्य है कि इन दोनों महाशयों ने अब तक भी कुछ प्रकट नहीं किया कि कितना रुपया उनके पास आया और कितना खर्च हुआ और कितना शेष है न्यायवान विचारें कि क्या इनको यही उचित था कि चन्दे का रुपया न तो मुकद्दमे में लगावें और न मुन्शी इन्द्रमणि को देवें अब ढाई वर्ष पीछे जब उनको मुन्शी इन्द्रमणि ने दबाया तो झूठे बहाने करने लगे मुन्शी इन्द्रमणिका दावा झूठ नहीं किन्तु अक्षर २ सत्य है कि स्वामी जी और उक्त लाला जी ने बहुधा शहर नगरों के योग्य आर्य पुरुषों को पत्र पठाये कि मुन्शी इन्द्रमणि के मुकद्दमे के लिये चन्दा करके हमारे पास रुपया रवाना करो हम ज्यों का त्यों उनको दे देंगे (परन्तु प्रथम से ही उनको एक कौड़ी देने का इरादा नहीं था) जब उक्त मुकद्दमे की अपील जजी मुरादाबाद में दायर थी मुन्शी इन्द्रमणि को छ सौ रुपये बैरिस्टर हिल साहिब के पास भेजने की आवश्यकता हुई तो मुन्शी इन्द्रमणि ने खुद मेरठ जाकर लाला रामशरणदास से कहा कि छ सौ रुपया बैरिस्टर साहिब के पास भेजना है चार सौ तो मेरे पास हैं दोसो चन्दा के रुपये में से जो आपके पास बतौर अमानत जमा है इनायतकीजिये, लाला रामशरणदास ने जवाब दियाकि यहा से तो अभी तुमको कुछ न मिलेगा, मुरादाबाद ही से तद्वीर करके भेज दो और इस सपूर्ण कार्य के कार्याध्यक्ष स्वामी दयानन्द जी हैं इस लिये यह अपराध उनका ही है, किन्तु लाला रामशरणदासका विशेष अपराध नहीं है, उन्होंने तो व्यर्थ स्वामी जी की बातों में आकर बदनामी का टोकरा शिर पर उठाया जो गुरु कि अधर्म का उपदेश करे उसको शीघ्र त्याग देना चाहिये। देखो—

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः।

उत्पथ प्रतिपन्नस्य परित्यागो विधीयते ॥ १ ॥

फिर जो तुम कहते हो कि बिलकुल कसूर मुन्शी जी का है सो महामिथ्या है, क्योंकि जब लोगों ने मुन्शी जी के मुकद्दमे के लिये स्वामीजी और लालासाहब के पास रुपया भेजा और स्वामी जी ने उस रुपये को खुद गडप करना चाहा तो ऐसी हालत में स्वामी जी से मवाखजा करना मुन्शी जी का अपराध क्योंकर हो सकता है किस वास्ते कि स्वामी जी और लाला साहब मुन्शी जी के पास रुपया पहुँचाने के मार्ग थे यह रुपया स्वामी जी के व्यय के लिए एकत्रित नहीं हुआ था यहा से आर्य भाई झूठ सच का स्वत. निर्णय कर सकते हैं ।

स्वामी जी अपने लेख से यह सिद्ध करते हैं कि मुन्शी जी ने स्वामीजी से खुद चंदा एकत्रित करने की प्रार्थना की परतु यह सर्वथा झूठ है, यथार्थ तो यह है कि स्वामी जी मुशी जी को आप ही तार देकर बुलाया परतु जब मुशी जी का तार पहुँचने पर भी मेरठ नहीं गये तो स्वामी जी ने चिट्ठी भेज कर मुन्शी जी को बुलाया तब वे प्यारेलाल तहबीलदार सारिक तहसील सम्भलको साथ लेकर स्वामी जी के पास गए अगर मान लिया जावे कि उन्होंने यह ही कहा कि मुकद्दमा मञ्जूर कुल वेदमतानुयाइयो के ऊपर है तो उसमें कोई बुराई की बात नहीं है कि यथार्थ में झगडा संपूर्ण वैदिक मत वालों पर था इस हेतु उक्त मामलेमें वह लोग भी भागी हुए जो कि स्वामी जी के प्रतिकूल थे जैसे लाला मथुरादास जनरल एकाउण्टेण्ट हेड क्लर्क और लाला निहालचन्द ठेकेदार जेल और सेठ रामरतन इस प्रकार के और बहुधा मनुष्य हैं, कि जिनके नाम से स्वामी जी भली प्रकार भेदी हैं, विद्वान मुन्शी इन्द्रमणि ने स्वामीजी या लाला रामशरणदास से चदा करने के लिए किसी समय भी प्रार्थना नहीं की, मुरादाबाद मे चदा के लिए कमीशन होने वाली थी कि समाचार सुन कर धर्म के जोश मे आकर स्वामी जी आदिक भी शामिल हो गए, इस बात की साक्षी के वास्ते लाला रामशरण दास का एक खत रजिष्ट्री शुदा जो कि लाला श्यामसुंदर रईस मुरादाबाद के नाम आया था इस प्रकार है ।

नवाजिज फरमाय बदे लाला श्यामसुदर साहब जाद इनायतकुम् ।

बाद नमस्ते, के गुजारिश यह है, कि जुबानी मास्टर शादीराम के मालूम हुआ कि जनाब का इरादा वास्ते चदा करने खर्च मुकद्दमे मालूमें के बाद का है

यानी जो कुछ मुकद्दमे में खर्च होवे उसका चंदा बादको वसूल किया जावे, स्वा
जी महाराज से जो इसका जिक्र हुआ तो यह करार पाई कि चंदा एकत्रित करना
मुकद्दमे से पहिले चाहिए, पीछे दिक्कत होगी और बहुत कम वसूल होगा इस लि
चंदा भी आपको तरकीब देता है कि मेरी राय नाकिस में भी स्वामीजी का कहना
यथार्थ है तदनुसार करना ही उचित है, और यह भी जानना चाहता हूं कि उ
मुकद्दमे के विषय कमेटी की क्या सम्मति निश्चित हुई, यदि अभी तक कमेटी न
हुई हो तो इसका शीघ्र प्रबन्ध होना चाहिये और उसकी सम्मति के समाचार मु
दास को भी शीघ्र पठाइए, और मुंशी इन्द्रमणि साहब को इससे पहिले निज नि
दन पत्र द्वारा लिखा था कि उक्त महाशय राजा कश्मीर और बलरामपुर व राज
पटियाला को मुकद्दमे के हाल से भेदी करें और जैसी कोशिश कि नवाब रामपु
ने की है वैसी ही इन महाशयों से कराई जावे, ज्यादा नमस्ते। रकीमें निवाज
रामशरणदास, अज मेरठ, मवर्रखा २ अगस्त सन् १८८० ई०।

इस पत्र के लेख से प्रकट है कि मुन्शी इन्द्रमणि के मित्रों का विचार उक्त मुकद्दमे के पूर्ण होने पर चंदा करनेका था परंतु स्वामी दयानन्द सरस्वती और लाला रामशरणदास ने उनको मुकद्दमे के फैसला होने से पहिले ही चंदा करने पर उपस्थित किया, अब एक कथा और भी सुनिये कि स्वामी जी ने तो थोड़ा सा झूठ बोला कि मुन्शी इन्द्रमणि चंदा के लिये हमसे प्रार्थी हुए किंतु उनके चेले लाला जयगोपालसिंह सेक्रेटरी आर्यसमाज लाहौर ने इस कहावत के अनुसार "बड़े मियां से बड़े मियां, छोटे मियां सुभान अल्लाह" झूठ बोलने में आकाश पाताल को मिला दिया, वृत्तान्त इस प्रकार है कि तारीख २१ जनवरी सन् १८८३ ई० आर्य्यसमाज लाहौर के सामने मुन्शी इन्द्रमणि की निन्दा और बुराई अपने आपको कलङ्कित करके कहने लगे कि हमारे पास लाला रामशरण दास की चिट्ठी मेरठ से आई है, उसमें लिखा है कि जब तारीख मुकद्दमा में बीस दिन शेष थे तब इन्द्रमणि खुद मेरठ आया और हमारे मकान पर आ कर लम्बा पड़ गया और कहने लगा कि अब हमको तुम ही बचाले जाने हो उस समय हमने उससे कहा कि कुछ डर नहीं है, और उसी समय हमने एक वकील कर दिया और एक आदमी जिस का नाम शादीलाल है उसके साथ किया कि

मुकद्दमें के अत तक वह इन्द्रमणि के मग मुरादाबाद में रहा और अब इन्द्रमणि ने भारत मित्र कलकत्ते में यह लिखवाया कि जिन महाशयों को मेरे झगड़े की सहायता के लिये द्रव्य देना स्वीकार हो वह सीधा मेरे पास भेज देवे दूसरी जगह का भेजा रुपया मुझ को नहीं मिलता उस समय बहुधा मनुष्यों ने सीधा मुरादाबाद रुपया भेजा जब हमने इन्द्रमणि से कहा कि अब तक तुम्हारे पास कितना रुपया आया और कितना खर्च हुआ इस आमदनी और खर्च का हिसाब हम को लिख कर दो तो इन्द्रमणि ने हिसाब देने से इनकार किया तब हम भी रुपया देने से चुप कर गये क्योंकि हमने रुपया उसके झगड़ा मिटानेकी सहायता के लिये इकट्ठा किया था कुछ उस के घर के खर्च के लिये नहीं किया था और इन्द्रमणि ने जो निज्ञापन में लिखा है कि मेरे तो केवल छ सौ रुपया हाथ आया शेष स्वामीजी और लाला रामशरण दास के पास रहा यह भी झूठ है, हमारे तो नौ सौ छप्पन ९५६) रुपये और कई आने खर्च हुये और चारसौ कई रुपये हमारे पास बतौर अमानत शेष हैं, जिस काम के लिये लोग कहेंगे उस में लगावेंगे यहा तक चिट्ठी का लेख है जो कि जवाहिरसिंह के कहने मूजिब कोई चिट्ठी रामशरण दास ने उनके पास भेजी हो हम को बिल्कुल विश्वास नहीं है किंतु यह लाला जवाहिरसिंह की ही मनगढन्त तुहमत उक्त लाला साहिब पर मालूम होती है, सो हम जानते हैं कि आर्य्यसमाज मे नाम लिखाने का शायद यही फल हो, और शायद यह लेख लाला रामशरण दास ने किया है तो बड़े आश्चर्य और खेद की बात है, स्वामीजी का लेख लालाजी को झूठा करता है और उक्त लालाजी का लेख स्वामीजी के लेख को मिथ्या सिद्ध करता है क्योंकि स्वामीजी ने देशहितैषी पत्र मे मुद्रित कराया है कि मुन्शी इन्द्रमणि मेरठ मे आये और कहा कि यह मुकद्दमा सब वेदमतानुगाइयों पर है और लालारामशरण दास जवाहिरसिंह को लिखते हैं कि तारीख मुकद्दमें से २० दिन पहिले इन्द्रमणि खुद मेरठ आकर हमारे मकान पर ठाम्बा हूक गया और कहने लगा कि अब हम को तुम ही बचाने वाले हो इत्यादि० ।

देखो आर्य्य भाईयो गुरु सच्चे हैं या चेले ? परमेश्वर का धन्यवाद है कि मुन्शी इन्द्रमणि के सत्य के प्रभाव से गुरु चेले को झूठा करता है और चेला गुरु

को इस झूठ का क्या ठिकाना है कि तारीख मुकद्दमे से २० दिन पहिले मेरठ आया है आर्य्य भ्रातृगण इस विषय में अदालत गवाह है कि तारीख २२ जौलाई सन् १८८० ई० को मुन्शी इन्द्रमणि पर मजिस्ट्रेट मुरादाबाद ने मुकद्दमा कायम किया और दूसरे दिन शब्बरात की तातील थी तीसरे दिन पाच सौ रुपये जुर्माना करके मुकद्दमे का अंत कर दिया बस २० दिन का कब अवकाश मिला कि मेरठ जाने की नौबत पहुँची, अगर लाला रामशरण दास की यह मुराद है, कि जजी में अपील के पेश होने से २० दिन पहिले मुन्शी इन्द्रमणि मेरठ आये तो यह भी झूठ है, क्योंकि उस समय मुन्शी इन्द्रमणि को क्या भय था कि लाला रामशरण दास की ईश्वरता पर भरोसा करके उनके मकान पर लम्बे पड़ते और कहते कि अब हमको तुम ही बचाने वाले हो क्योंकि मुल्ला की दौड़ मस्जिद तक अब रहा अधिक से अधिक यह था कि जजी मुरादाबाद से अपील नामंजूर होकर मजिस्ट्रेट का हुक्म बहाल रहता और पाच सौ रुपये दण्डके थे उनमें से चार सौ नहीं छूटते, भय था तो पहिली कचहरी में ही था कि दो वर्ष तक की कैद भी सम्भव थी, मु० इन्द्रमणि तो एक परमात्मा का दास है, महा के सामने भी लम्बा नहीं पड़ेगा और हरगिज नहीं कहेगा कि हम को तुम ही बचाने वाले हो क्योंकि लम्बा पड़ना केवल परमात्मा के सन्मुख उचित है कि साष्टाङ्ग दंडवत परमेश्वर के अतिरिक्त और किसी को नहीं की जाती है, और वही सबको कष्टों से बचाने वाला है, हमने फर्ज किया कि मुन्शी इन्द्रमणि उस झगड़े के भय से कोई अनुचित उपाय भी करे परन्तु लाला रामशरण दास का आर्य्यपन कहाँ गया कि अपने को दण्डवत कराने को प्रसन्न हुये, और अपने मन में विचार बैठे कि हम ही मुन्शी इन्द्रमणि को आफत से बचाने वाले हैं, इस राक्षसी विचार का क्या ठीक है, इसी जिस्ते पर लाला साहिब अपने समाज को राजधानी बनाया चाहते हैं और एक लाख रुपया सब समाजों से जमा करके उपदेशक गद्दी करने का इरादा करते हैं शायद है कि वैन राजाकी तरह अपनी ईश्वरता प्रकट करा देंगे और यही उपदेश सुनावेंगे कि सम्पूर्ण समाजी जन लाला रामशरण दास के मकान को किला व काबा (ईश्वर का मकान वैकुण्ठ) समान करें और सब ओर से उधर को ही मुकें, फिर यह जो लाला साहिब लिखते हैं कि उसी समय

हमने एक वकील कर दिया सरासर झूठ है और उनके झूठ होने पर अदालत मुरादाबाद और हाईकोर्ट गवाह हैं कि मजिष्ट्रेट के यहाँ मुन्शी इन्द्रमणि के वकील बाबू नरेन्द्रचन्द्र और बाबू बैजनाथ थे और जजी में मिस्टर हिल साहिब बैरिस्टर और बाबू रत्नचन्द्र और बाबू नरेन्द्रचन्द्र और लाला माधोदास वकील हाईकोर्ट और बाबू बैजनाथ वकील जजी ने तन मन से पैरवी की थी, अब लाला रामशरण दास और लाला जवाहिरसिंह शपथ पूर्वक कहें कि इनमें से उनका भेजा हुआ वकील कौनसा है, और किसने उनकी गाठ से फीसपाई है, फिर लाला साहिब ने जो लिखा है कि एक आदमी जिसका नाम शादीलाल है उस के साथ भेजा, इस का उत्तर यह है कि मुन्शी इन्द्रमणि के अभाग्य वस लाला शादीराम की भी मान हानि हुई, उक्त वचन से सिद्ध होता है कि चिट्ठी का विषय सर्वथा जवाहिरसिंह की बनावट है लाला रामशरण दास मास्टर शादीराम के विषय में भूलकर भी ऐसे शब्द न लिखें क्योंकि मास्टर शादीराम लालारामशरण दास के तद्वत् हैं, फिर लाला साहिब ने जो लिखा है कि जब इन्द्रमणि ने भारत मित्र कलकत्ते में यह लिखवाया * उसका उत्तर यह है कि जिले में मुकद्दमा दायरथा और मिस्टर हिल साहिब के पास छ सौ रुपया भेजने की आवश्यकता थी उस समय मुन्शी इन्द्रमणि मेरठ गये और लाला रामशरण दास से कहा कि चन्दा के रुपये में से दो सौ रुपये इनायत कीजिये तब लाला साहिब ने जवाब दिया कि रुपया यहा से न मिलेगा, इस बात से मुन्शी इन्द्रमणि ने समझ लिया कि लाला साहिब के दिल में कुछ हेर फेर है, तब तो उन्होंने शीघ्रता से भारत मित्रादि अखबारों में मुद्रित करा दिया कि जिन साहिबों को मेरे झगड़े की सहायता के लिये चदा देना स्वीकार हो वह मेरे ही पास सीधा मुरादाबाद भेज दे दूसरों की मारफत भेजा हुआ चदा मुझको नहीं मिलता, भारत मित्रादि के मुद्रित होते ही स्वामी जी के शुद्ध अन्त करण की गध सारे आर्यावर्त में फैल गई, क्योंकि लाला रामशरणदास के अधिदेव व प्रेरक स्वामी जी थे, फिर लाला साहब जो लिखते हैं कि उस समय बहुधा मनुष्यों ने सीधे मुरादाबाद रुपया भेजा इसका उत्तर यह है कि भारत मित्रादि में प्रकाशित हो जाने पर स्वामी जी के मन का

* ये लेख प्रथम आ चुका है ।

नेद लोगों को विदित हुआ तो अवश्य उनके पास चन्दा भेजने से बहुधा मनुष्य रुक गये और भेजने वालों ने सीधा मुन्शी जी के पास भेजना प्रारम्भ किया इससे यह सिद्ध होता है कि चन्दा देने वालों को केवल मुन्शी इन्द्रमणि की ही सहायता करनी प्रियथी, और स्वामी जी को उनके ही नाम से चन्दा दिया था, परतु जब लोगों को अखबारों द्वारा स्वामी जी का हाल खुला तो कुछ लोगों ने स्वामी जी के पास चन्दा भेजने से हाथ खेंच लिया, अब स्वामी जी कहते हैं कि चन्दा हमारी बदौलत था सर्वथा झूठ है, फिर लाला साहिब जो लिखते हैं कि इन्द्रमणिने हिसाब देने से इनकार किया उसका उत्तर यह है कि जब मुन्शीजी ने स्वामीजी की नीयत मे अन्तर देखा तो शीघ्र भारत मित्रादि पत्रों द्वारा प्रकाशित कराया और उनसे कहा कि तुमको हमसे हिसाब लेनेका मजाज नही है तुमने हमारे नाम से लाहौर व अमृतसर व फीरोजपुर व मेरठ पटाला व मुलतान वगैरह से चन्दा जमा किया और अब तक एक कौडी मुकद्दमें मे न लगी, इस वास्ते तुम हमको हिसाब दो कि तुमने अपने तईं मुन्शी इन्द्रमणि का एजट प्रकट किया है फिर लाला साहिब ने जो लिखा है कि तब हम भी रुपये देने से चुप हो रहे उसका उत्तर यह है कि तुमने दिया ही क्या ? जो देने से चुप हो रहे, जब कि प्रथम बारही तुमने दोसौ रुपये देने में टाल-मटोल बतलाई फिर किस मुँह से कहते हो कि हम भी रुपये देने से चुप हो रहे, फिर ला० साहिब जो कहते हैं कि हमने रुपया उसके मुकद्दमे के लिये इकट्ठा किया था उसका जवाब यह है कि धन्यवाद है परमात्मा को कि स्वामी जी के चेले ही ने उनकी हठधर्मी पर गवाही दी क्योंकि स्वामी जी ने मुन्शी इन्द्रमणिको आगरा से निज पत्र तारीख २९ नवम्बर सन १८८० ई० द्वारा लिखा है कि यह चन्दा का रुपया वैदिक फड कहलावेगा और आर्य्यों के लिये इस फड में रुपया जमा होता रहेगा। यह चिट्ठी स्वामी जी की हमारे पास मौजूद है, जिसका दिल चाहे देख ले स्वामी जी की लिखावट से प्रकट है कि इस चन्दा में मुशी इन्द्रमणि की प्रधानता नहीं है किन्तु यह द्रव्य सर्वत्र आर्य्यों के लिये है, इसने पर भी अगर किसी को स्वामी जी की ईमानदारी और सचाई में शका रहे तो आश्चर्य की बात है। हा यह सत्य है कि आरम्भ में स्वामीजी और लाला रामशरणदास की नीयत यही थी कि मुन्शी इन्द्रमणि के मुकद्दमें के लिये चन्दा करके रुपया एकत्र करे,

परंतु जब इधर उधर से अधिक द्रव्य आ गया तो स्वामीजी के मन में दम्भ उत्पन्न हुआ बस लाला साहिब को कि असल में स्वामी जी के लाला ही थे अमानत में खयानत करने पर राड़ा करके उचित अनुचित मनघानी कहने लगे, फिर लाला साहिब जो कहते हैं कि हमारे नौ सौ छप्पन रुपये कई आने खर्च हुए और चार सौ कई रुपए हमारे पास बतौर अमानत के शेष हैं, उसका उत्तर यह है कि मुंशी इन्द्रमणि लाला साहिब को मिथ्या वादी नहीं कहते चन्दा का रुपया उनके पास था उन्होंने जिस काम में उचित समझा वहां लगाया मुंशी इन्द्रमणि को उसमें कुछ उजर नहीं है, मुंशी इन्द्रमणि को तो यही कहना है कि लाहौर व अमृतसर व फेलम व बटाला व फीरोजपुर व हैदराबाद, वगैरह, से स्वामी जी और लाला साहिब के पास कई हजार रुपया चन्दा का जमा हुआ उसमे से उन्होंने हमको केवल छ सौ रुपए दिए, अढाई वर्ष पीछे अब कहते हैं कि हमारे पास चार सौ कई रुपए शेष रहे हैं, फिर लाला साहिब जो कहते हैं कि जिस काम मे लोग कहेंगे उसमें लगावेंगे उसका जवाब इस तरह पर है कि यह इमानदारी है अढाई वर्ष तक तो कुछ जाहर न किया अब मूर्खों की राय के प्रार्थी हुये कि जो कुछ लोग कहेंगे वही करेंगे । लोग कौन होते हैं कि इस मामले में सम्मति देवें, और जिन महाशयों के पास से वह रुपया आया है वे पहिले ही अपनी सम्मति देचुके हैं, वरन बहुधा महाशयोंने मुन्शी इन्द्रमणि को पत्र लिखे हैं कि हमने इतना रुपया तुम्हारे मुकदमे के खर्च के वास्ते स्वामीजी और लाला राम शरण दास के पास मेरठ भेजा है वे शीघ्र आपके पास भेजेंगे । इस आशय के अनेक पत्र चन्दादेनेवालों के हमारे पास हैं आगे चलकर कुछ प्रकाशित करेंगे, जो चिट्ठी कि जवाहिरसिंह सेक्रेटरीने आर्यसमाज लाहौर से तारीख २१ जनवरी सन् १८८१ ई० को लाला रामशरण के नामसे अपने झूठे व्याख्यान मे पढी थी यहा तक उसका उत्तर हुआ अब फिर स्वामीजी के लेखपर उत्तर आरम्भ होता है स्वामीजी "सब" शब्द से आपका क्या प्रयोजन है ? क्या सब मेरठ समाज के सभासदो कोही आप सब कहते हो वा चन्दादेनेवालों को ? और क्या उस सभा के नियत होने से पहिले आपने कुल चन्दादेने वालो को सभा के हाल की सूचना दी कि इस तरह पर सभा नियत हुई है, चन्दा इकट्ठा किया जावे और उसमेंसे कुछ मुन्शी इन्द्रमणि के मुक-

इसमें से खर्च होने और शेष द्रव्य किसी साहूकार के पास आठ आना सैकड़ा ब्याज पर जमा रहै, या चन्दा देने वालों को यह लिखा था कि मुन्शी इन्द्रमणि के मुकद्दमे के खर्च के लिए चन्दा जमा करके स्वामी जी या रामशरण दास के पास रवाना करो यहां से मुन्शी जी के पास भेजा जायगा, यदि आपने सभा के नियत होने के समाचार चन्दा देने वालों को विदित कर दिए थे तो उन्होंने मुंशी इन्द्रमणि को इस विषय के पत्र क्यों लिखे कि हमने अमुक तारीख को इतना रुपया तुम्हारे मुकद्दमे के खर्च के वास्ते स्वामी जी या लाला साहिब के पास भेजा है वह आपके पास भेजेंगे, बल्कि यह भी लिखते कि इस तरह सभा नियत हुई है कि चन्दा के रुपये में से कुछ रुपया तुम्हारे मुकद्दमे के खर्च में लगेगा और शेष एक साहूकार के पास ब्याज जमा रहेगा, लेकिन उन पत्रों में इस बात का नाम निशान तक नहीं है, अगर आपने सभा के हाल से उनको भेदी नहीं किया किन्तु केवल यही लिख दिया कि उक्त मुकद्दमे के लिये रुपया इकट्ठा करके हमारे पास रवाना करो यहां से मुन्शी जी की सेवा में भेजा जावेगा तो आपकी मक्कारी और फरेब बाजी सिद्ध हुई, और जो तुम यह कहो कि मेरठ समाज के सभासदों ने सभा बनाई तो हम कहते हैं कि उनको क्या अधिकार है कि बिना आज्ञा चन्दा देने वालों के सभा नियत करें। और सच तो इसी पर खुल जायगा कि आर्य्यभ्रातृगण मेरठ समाज के सभासदों से सभा नियत होने का हाल पूछें मैं आशा करता हूँ कि वे लोग धर्म्म को नहीं त्यागेंगे क्योंकि आर्य्यों में नाम लिखाया है आगे उनकी खुशी मन में आवे सो करें सत्य ही परमात्मा को प्यारा है, फिर स्वामी जी कहते हैं कि मुंशी जी को खर्च के लायक रुपया दिया जाय उसका उत्तर यह है कि लाला रामशरण दास भी उक्त सभा के प्रधान थे और उन्होंने सभा के नियम को तोड़ डाला धन्यवाद क्योंकि जिस समय प्रथमबार मुंशी इन्द्रमणि दो सौ रुपए के लिये मेरठ गये तो उन्होंने जवाब दिया कि अभी तुमको यहां से रुपया न मिलेगा वहां ही से [illegible]मके कारवाई कर लो स्वामी जी साहिब ने उन्यपुर में बैठकर सभा का [illegible]गड़ा कि जिससे लाला साहिब भी बदनाम हुए। क्या वह सभा स्वामी [illegible] रामशरण दास ने की या सब चन्दा देने वालों की सलाह से हुई? [illegible] बैठकर जो दिल में आया वह खुद मन गढ़त मन-

सूवा गाठकर सभा नाम धर दिया तो खैर परन्तु चन्दा देने वालो को समाचार तक नही दिया कि इस तरह सभा नियत हुई है, फिर क्योंकर माना जाय कि वह सभा चन्दा देने वालों के जानकारी में नियत हुई, अब तक तो सभा का कुछ चर्चा ही नहीं था अढाई वर्ष पीछे यह बहाना बनाया इसीका नाम ईमानदारी है, अगर स्वामी जी अपनी बात पर सच्चे हैं और वकील उनके सभा नियत हुई है तो जिस समय लाला रामशरणदास लाला शादीराम सहित अक्टूबर सन् १८८१ ई० में मुरादाबाद पधारे तो लालाश्याम सुन्दर रईस मुरादाबाद के मकान पर मुंशी इन्द्रमणि को अलग लेजाकर उन्होंने किस वास्ते कहा कि मेरे पास जिस कदर चन्दा का द्रव्य शेष है मैं तो स्वामी जी के पास भेजदूगा उनको उचित है कि आपको दें, इससे सिद्ध होता है कि उक्त लाला साहिब भी सभा के हालसे भेदी नहीं यदि असल में कोई सभा होती और लाला साहिबको मालूम होता तो वे मुन्शी इन्द्रमणि से यही कहते कि तुम नियत सभा के प्रतिकूल करते हो कि स्वामी जी से चन्दा का द्रव्य मागते हो, फिर स्वामी जी जो लिखते हैं कि इन सारी बातों को मुंशी जी ने भी स्वामी जी आदि के सन्मुख स्वीकार किया था उसका उत्तर यह है कि यदि मुंशी इन्द्रमणिने आपकी सारी बात स्वीकार करली थी तो किस वास्ते लाला रामशरण दास से दरियाफ्त किया कि आपके पास अब तक कितना रुपया चन्दा का आया है, और उक्त लाला साहिब ने उसका जवाब किस वास्ते इस तरह पर दिया कि बतलाने के लिये समाज की आज्ञा नहीं है यदि स्वामी जी सच्चे होते और सभा का नियत होना भी सच होता तो लाला रामशरणदास मुन्शी इन्द्रमणि के प्रश्न का यही उत्तर देते कि सभा में तुम इस बात को स्वीकार कर चुके हो कि तुम्हारे लिये चन्दा की सख्या बतलाई नहीं जायगी । खेद का विषय है कि कहा तक झूठ बनाओगे क्या सन्यासियों का यही धर्म्म है ? फिर लोगों को यह धोखा देना कि स्वामी जी के सन्मुख मुन्शी इन्द्रमणि ने सारी बातें स्वीकार ली थी आप ही मुद्दई और आप ही गवाह सत्य तो यह है कि जब जनाब को झूठे दावे पर कोई गवाह न मिला तो अपने दावे को उचितवक्ता से कि मनुष्य मूर्ख है सम्बन्ध करके आप ही गवाह बने क्या आर्य्यों का जाल साजी ही धर्म्म है ? आर्य्यभाई इन्साफ करें कि सभा नियत करने के खुद स्वामी जी मुद्दई हैं, फिर उनका ही साक्षी

ऐसा क्योंकर स्वीकार करने योग्य है इसके अतिरिक्त लाला श्याम सुन्दर से जो कि मुरादाबाद के एक साहूकार हैं और लाला रामशरणदास के मर्मीमारटर दुर्गाचरण साहिब ने सख्या १० का "देश हितैषी" पत्र देकर कहा कि आपको भी उस सभा के हाल की खबर है तो लाला श्यामसुन्दर साहिब ने इनकार साफ किया कि मुझको बिल्कुल खबर नहीं है, यहां से प्रकट है कि यदि कोई सभा होती तो लाला श्यामसुन्दर अवश्य भेदी होते क्योंकि मुकद्दमे के बने रहते लाला रामशरणदास अनेक बार मुरादाबाद पधारे और कई कई दिन तक लाला श्यामसुन्दर के मकान पर शुशोभित रहे और मास सितम्बर सन् १८८१ ई० में ही वे उक्त लाला साहिब के मकान पर थे परन्तु सभा का कुछ भी जिक्र नहीं किया तथा मास अक्टूबर सन् १८८२ ई० मे लाला श्यामसुन्दरजी मेरठ आर्य्यसमाजके वार्षिकोत्सव पर मेरठ पधारे और लाला रामशरणके पास रहे और मुंशी इन्द्रमणि की निन्दा के ग्रन्थ पढ़े गये परन्तु सभा का कोई वर्णन नहीं हुआ, इससे स्पष्ट सिद्ध है कि सभा की कथा उदयपुर मे बैठ कर बनाई गई इस के अतिरिक्त जब मुकद्दमा आजी मुरादाबाद में पेश था और उसके लिये लाला रामशरण दास मुरादाबाद पधारे थे तो लाला ब्रजरत्न लघु भ्राता श्यामसुन्दर साहिब ने उन से पूछा कि अब तक मुन्शी इन्द्रमणि के मुकद्दमे में चन्दा का रुपया कितना आपके पास आया है तो उत्तर दिया कि बतलाने के लिये समाज की आज्ञा नहीं है, देखो उस समय तक भी यदि सभा का कुछ प्रबन्ध होता तो अवश्य लाला रामशरण दास लाला ब्रजरत्न साहिब को यही उत्तर देते कि अमुक समय मेरठ में सभा नियत हुई थी उस में यही निश्चित हुआ था कि चन्दा के रुपये की सख्या किसी को न बतलाई जावे इस वास्ते में नहीं बतलासकता, लेकिन लाला रामशरणदास ने इस प्रकार का वार्तालाप नहीं किया बड़े आश्चर्य्य की बात है कि मेरठ शहरमें ऐसी बड़ी सभा नियत हो और जिन मनुष्यों का उससे सम्बन्ध है उनको भी उस की खबर न हो, इसके सिवाय जिस समय मुन्शी इन्द्रमणि का विज्ञापन लाहौरमें पहुंचा तो जवाहिरसिंह सेक्रेटरीने लाला रामशरणदास से यथार्थ हाल दरियाफ्त किया तुम्हारे और मुन्शी इन्द्रमणि के मध्य क्या झगड़ा है, और लाला साहिब ने उसका उत्तर लिखा जवाहिरसिंह ने २१ जनवरी सन् हाल के दिन मुंशी इन्द्रमणिकी निंदायुत एक व्याख्यान

को किस वास्ते बतलाया, यह नियम तोड़ना नहीं था तो क्या था ? इससे भी सिद्ध हुआ कि स्वामी जी ने सभा का ढकोसला उदयपुर में गढा है, आश्चर्य्य इस बात का है कि लाला रामशरणदास के कथनानुसार नौ सौ छप्पन रुपये कई आने तो चन्दा में से खर्च हुये और चार सौ कई शेष अमानत रहे अब आर्य्य पुरुष विचारें कि यह तो चौदा सौ रुपये का हिसाब हुआ, चार हजार छ सौ कहा कहां गए ? यही स्वामी जी की सत्यता है । अगर एक लाख रुपया उपदेशक मण्डली के बहाने से उन्होंने जमाकर लिया तो क्या रंग लावेगा ? कर्ज लेकर तो आप मुकदमे में क्या लगाते जब कि आपके पास चन्दाका अधिक द्रव्य जमा था और मुंशी इन्द्रमणि को बैरिष्टर के पास भेजने के लिये दो सौ रुपए की आवश्यकता थी उस समय भी आपने कौड़ी न दी, बस आपकी नियम प्रतिकूलता में कुछ शका नहीं है मुंशी इन्द्रमणि के वास्ते चन्दा की सख्या बतलाने से सभा किस लिए रुकी शायद कि सभा ने मनसूबा गाठा था कि चन्दा के रुपये गडप करलें, यदि मुंशी इन्द्रमणि को सख्या मालूम होगी तो सभा से मवाखज़ा करेंगे, इस वास्ते सभा ने पेशबन्दी के लिये मुशी इन्द्रमणि को जुदा किया, बाहरी सभा तेरी सत्य शीलता और वही समझ इसको के ई भी ईमानदारी नहीं कहेगा, कि जिसके नाम से चन्दा इकट्ठा होवे उसको सख्या तक भी न बतलाई जावे, इसको चतुराई वही लोग जानेंगे कि जो गुरू जी के अधर्म्म को भी धर्म्म समझते हैं पराया माल मारने पर कमरबन्दी कर रहे हैं, जब कि स्वामी जी के पास इधर उधर से चदा का रुपया बहुत जमा होगया तब लालच के आधीन होकर उसके गडप करने की नीयत की, जिसके नाम से चदा लिया उसको देना तो जुदा रहा सख्या तक बतलाना भी उचित न समझा इसी का नाम सन्यास है, और यही त्यागकी प्रशसा है, नि शक इससे सम्पूर्ण प्राणी जान सकते हैं कि लाला रामशरण का इतना कसूर है कि चदा का द्रव्य गडप करने में स्वामी जी के आधीन हुये, पूरा अपराध स्वामीजी का है, कि पृथ्वी को शिरपर उठाया और उक्त लाला साहिब को अपना शरीक किया, मुशी इन्द्रमणि ने तो उनकी सेवामे यह निवेदन किया था कि धर्म्म विषयक वादानुवाद अभी पूरा नहीं हुआ है, स्वामी जी और लाला साहिब को कुछ अधिकार नहीं है कि यह दोनों तो इस कामके ये कि चदा का रुपया इधर से लेकर उधर पहुँचा देवें परतु यह तो खुद मालिक बन बैठे, नाना प्रकार से इनको समझाया गया कि इस

रुपये से मुसलमानों पर नालिश दायर करो परतु उन्होंने चुप करली, फिर स्वामी जी कहते हैं कि मुन्शीजी ने अनुचित वाक्य कहे यह सर्वथा झूठ है किंतु खुद उन्होंने अनेक अप शब्दों से भरे पत्र आगरे से मुन्शीजी के नाम पठाये थे वह हमारे पास हैं विस्तार के भय से यहा नहीं लिखे और दम्भ तो स्वामी जी ने किया कि मुन्शी इन्द्रमणिके नाममे छ हजार रुपया इकट्ठा कर उनको बडी कठिनता से केवल छ सौ दिये अब अढाई वर्ष पीछे चौदा सौ रुपए का हिसाब प्रकट करते हैं शेषका आचमन कर गये इस दम्भ का कारण यह है कि ससारी लालचने उनको भुला दिया खेद का स्थान है कि लाला रामशरण दास भी उनके कारण व्यर्थ बदनाम हुये, हम परमात्मा को मध्यस्थ करके कहते हैं कि मुन्शी इन्द्रमणि ने उनसे किसी प्रकार का नियम नहीं किया यदि मुन्शी इन्द्रमणि ने स्वामी जी से यह प्रण किया था कि अपने पास का आया हुआ चन्दा का द्रव्य भी उक्त लाला साहिब के पास भेजता रहूँगा तो स्वामी जी ने मुन्शी इन्द्रमणि को इस विषय की चिट्ठी मेरठ से क्यों लिखी कि इतना रुपया चंदा का पजाब से मेरठ आया है, और फर्रुखाबाद वगैरह से आने वाला है सब आपके पास भेजा जाता है (यह चिट्ठी अगस्त सन् १८८० ई० की भाद्रपद सम्वत् १९३७ में ऊपर लिखी जा चुकी है) इसके अनुसार लाला आनन्दीलाल मत्री आर्य्यसमाज मेरठ का दत्त तारीख २७ अगस्त सन् १८८० ई० तीन टुकडे नोट के सहित मुन्शी इन्द्रमणि के पास आया कि यह नोट तुम्हारे मुकदमे की सहायता के लिये लाहौर से आए हैं सो आपके पास पहुँचते हैं। अब आर्य्य भाई न्याय करें कि यदि मेरठ मे कोई सभा नियत होती और मुन्शी इन्द्रमणि ने उस सभा में प्रण किया होता तो उसके प्रतिकूल मुशी जी के पास लाहौर के नोट मेरठ से किस वास्ते रवाने किये जाते, क्योंकि स्वामी जी के कथनानुसार प्रण तो यह था कि सब स्थानों का चन्दा ला० साहिब के घर जमा रहे और मुंशी इन्द्रमणि भी उनही के खजाने मे दाखिल करते रहें। यहा तक तो स्वामी जी की नीयत शुद्ध थी पीछे उनके मन में यह विचार पैदा हुआ कि चन्दा का द्रव्य मुशी इन्द्रमणि को न देना चाहिए लाला साहिब के पास इकट्ठा रहना उचित है बस २८ अगस्त सन् १८८० ई० को लाला लाल मत्री से इस आशय का पत्र मुन्शी इन्द्रमणि जी के पास भिजवा

नोट के टुकड़े वेद भाष्य की सहायता में फर्रुखाबाद को भेजे जाने थे हमारे समाज के चपरासी की भूल से तुम्हारे पास चले गए इस लिए उनको मेरठ लौटा दीजिये बस वे नोट उसी समय लौटा दिए गए अब विद्वान् पुरुष विचार करें कि चपरासी की भूल से यह हो सकता था कि मुरादाबाद के लिफाफे में फर्रुखाबाद का खत रख दे और फर्रुखाबाद के लिफाफे में मुरादाबाद का या नोट जिस लिफाफे में रखने चाहिए उसमें न रक्खे दूसरे में रख दे परंतु यह तो बतलाओ कि नोटों की साथ जो पत्र था कि यह नोट तुम्हारे मुकद्दमे की सहायता के लिये लाहौर से आये थे इस वास्ते अब तुम्हारे पास भेजे जाते हैं, वह किसने लिखा था ? क्या यह जालसाजी भी चपरासी ही की थी ? अब स्वामी जी आपने धर्म्म और ईमान से वर्णन करें कि यह सारी कारवाई किसकी आज्ञा से हुई थी, इसके अतिरिक्त विद्वान स्वत जानते है कि रुपए का खर्च मुन्शी इन्द्रमणि के पास था वह ऐसा प्रण क्यों करते कि जितना रुपया मुकद्दमे मिलेगा मैं लाला रामशरण दास के पास भेज दूंगा क्योंकि उलटे पत्थर पहाड़को कोई नहीं लादता किंतु स्वामी जी और लाला साहिब ही ने मुंशी जी से प्रण किया था कि हम तुम्हारे मुकद्दमे के खर्च के वास्ते चंदा जमा करते हैं जिस समय आपको आवश्यकता हो हम से रुपया मंगा लेना, और इसी प्रकार चंदा देने वालों से भी प्रण किया कि तुम लोग मुंशी इन्द्रमणि के मुकद्दमे के लिये चंदा फराहम करके हमारे पास भेजो हम उक्त मुकद्दमे में खर्च करेंगे, जब चारों ओर से आशा से अधिक रुपया आया शीघ्र गुरु चेलन निज प्रण त्याग दिया, क्योंकि अभी एक महीना भी न हुआ था कि मुंशी इन्द्रमणि ने मिस्टर हिल साहिब बैरिस्टर के लिये दो सौ रुपये मांगे तो उनको जवाब साफ दिया कि तुमको यहां से कुछ न मिलेगा अब स्वामी जी परमात्मा को अंतर्यामी जानकर कह दें, कि उन्होंने यह प्रण किया था नहीं और फिर तोड़ दिया या नहीं बस मुंशीजी ने शीघ्र ही भारत मित्रादि पत्रों में इनके प्रण तोड़ने को प्रकाशित कर दिया, और जान लिया कि इनका गुप्त विचार कुछ और है, इस सूरत में यह गुरु चेले कौन हैं जो मुंशी इन्द्रमणि से हिसाब लेवें, क्या उन्होंने कोई खजाना उनके आधीन कर रक्खा है ? यथार्थ यही है कि इन दोनों महाशयों ने अपने बचाव के लिये यह ढंग रचा है कि मुंशी इन्द्रमणि हिसाब

नहीं देते विद्वान् जानते हैं कि मुन्शी इन्द्रमणि इनका किस चीजका हिसाब देने कि आरम्भसे ही उनसे स्वार्थ साधनता देखकर उनसे पृथक् हो बैठे थे और भारत मित्रादि पत्रोंमें विज्ञापन दे चुके कि इनके पास हमारे मुकद्दमेके लिए कोई साहिब रुपया नहीं भेजें कि जितना आज तक इनके पास चंदा आया है उसमेंसे कौड़ी देना नहीं चाहते किंतु मुन्शी इन्द्रमणि इनसे हिसाब मांग सकते हैं कि उन्होंने इनके मुकद्दों के वास्ते अपने पास रुपया जमा किया और मुन्शी इन्द्रमणिके पास भेजने के जिम्मेवार रहे। पाठक भाई विचार करें कि इस ईमानदारी का क्या ठिकाना है कि जो रुपया खास मुन्शी इन्द्रमणि के मुकद्दों के वास्ते चन्दा किया गया है, उसको सम्पूर्ण वैदिक मत की रक्षा के लिये लिखते हैं स्वामीजी महाराज यह रुपया वैदिकमत की सहायता के लिए बिलकुल ही न्यारा है, किंतु केवल एक मुकद्दमे के लिये है जो मुन्शी इन्द्रमणिपर मुसलमानों की तर्फसे दायर हुआ, स्वामीजी महाराज कहां तक झूठ बहाने करेंगे, टुक विचार करो कि आपने इससे पहिले क्या कहा है, और अब क्या कहते हो जब आप सन् १८८० ई० में मुकाम आगरा राय शिवरतनदास वकील की कोठी पर विराजमान् थे उस समय आपका हस्ताक्षरी पत्र तारीख २९ नवम्बर का हमारे पास मौजूद है उसमें आपने लिखा है कि अब यह रुपया बराबर वैदिक फंड कहलावेगा, फिर जब मुन्शी इन्द्रमणि ने उस पत्र के उत्तर में आपकी इस लिखावट का खंडन किया तो आपने उसका उत्तर ६ दिसम्बर सन् १८८० ई० में लिखा कि वैदिक फंड मुन्शी की भूल से लिखा गया है, हमने तो यह लिखवाया था कि यह वैदिकमतकी सहायता का फंड कहलावेगा। आपकी यह चिट्ठी भी हमारे पास मौजूद है, अब रिसाला हितैषी अजमेर के मजमूनमें आपने वैदिकमत के प्रथम शब्द लुप्त बढ़ाया है, एकपत्र स्वामीजीके हस्ताक्षरी तारीख २४ नवम्बर सन् १८८० ई० का लाला श्यामसुंदर रईस मुरादाबाद के नामका हमारे पास है उसमें स्वामीजी ने लिखाया है कि चंदा किसी की जाति के वास्ते नहीं हुआ केवल देश की भलाईके लिये है, स्वामीजीकी एक दूसरी प्रतिकूल लिखावट से यही सिद्ध होता है कि आपने रुपया गबन करने के लिये भांति २ के झूठ बनाये, फिर यह जो आपने लिखा कि उस समय मैं लाला रामशरणदास ने मुन्शी जी को रुपया देना बंद कर दिया उसका उत्तर यह है कि उक्त

लाला जी ने मुन्शी जी को दिया ही क्या था कि जिसके पीछे देना बद कर दिया, जिस समय बैरिस्टर साहब को देने के वास्ते मुंशी इन्द्रमणि ने दो सौ रुपये चदा के रुपयों मे से मागे तो उन महात्मा धर्मावतार ने साफ जवाब दिया कि यहा से कुछ नहीं मिलेगा, बस मुशी इन्द्रमणि ने जान लिया कि कुछ दालमें कालाहै, और स्वामी जी ने विश्वास की शराब में नमक मिलाया है फिर जो आप कहते हैं कि स्वामी जी ने कहा कि **काममें हर्ज होगा** यह सर्वथा झूठ है, कि काम में हर्ज न हो यह समझ कर आपने मुन्शी इन्द्रमणि को रुपया हरगिज नहीं दिया बल्कि जब उन्होने लगातार आपको इस विषयके पत्र लिखे कि यदि इस समय भी रुपये न दोगे तो हम चदा देने वालो को खबर करेंगे कि स्वामी जी ने आरभ मुकद्मे से मेरे नाम पर चदा जमा किया और अब तक मुझको एक कौड़ी भी नहीं दी तब आपने अपनी बदनामी से डर कर छ सौ रुपए मुन्शी इन्द्रमणि को दिए यदि आपको यह ख्याल होता कि काम में हर्ज न होने तो आरभ मुकद्मे में बैरिस्टर साहब के लिये मुन्शी जी को दो सौ रुपए देने से हरगिज इनकार न करते। मुद्दत गुजरी कि मुन्शी इन्द्रमणि स्वामी जी से चदाके रुपयोका हिसाब मागते रहे और स्वामी जी बहानों के साथ टालते रहे, हिसाब तो जुदा रहा चदाकी सख्या तक मुन्शी जी को नहीं बतलाई, अब तक तुम भी कहते थे कि हमने मुन्शीजी को छ सौ रुपए दिए हैं, और वह भी स्वीकार करते थे और करते हैं, अब उस पर तुर्रा यह लगाया कि कितना रुपया मुन्शी जी को दिया और कितना उक्त लाला साहब के पास जमा रहा यह बात स्वामी जी को याद होगी कि उन्होंने आगरामे मुन्शी अलखधारीके एक मित्रसे कहा था कि चंदाका छ हजार रुपया मेरठमें एक दूकान पर जमा है, अब देखिए छः हजार रुपए मे से कितने का हिसाब मुद्रित कराते है कितना अपने पास शेष बतलाते है और कितना उक्त लाला साहबके पास जमा बतलाते हैं यदि हिसाब ठीक २ मुद्रित करा देंगे तो लोगों को मालूम हो जावेगा कि चदा का इतना रुपया स्वामी जी और लाला साहब के यहा बतौर अमानत के जमा है, परतु दोनों महाशयों का छुटकारा उस समय सभव है जब कि कौड़ी २ चंदा का द्रव्य मुन्शी इन्द्रमणि को दे देवें, क्योंकि इस चदाके अधिकारी वही हैं, और उन्हीं के नाम से चदा इकट्ठा किया गया है। अगर लाला रामशरणदास

आदि ने मुन्शी इन्द्रमणि के विषय कुवाक्य बोले तो वे जाने मुन्शीजीसे उनके विषय अब तक कोई अपराध नहीं हुआ मुन्शी जी तो सपूर्ण आर्यों के तन मन से शुभ चिंतक हैं यदि लाला रामशरणदास आदि नें स्वामी जी से यही कहा कि मुन्शीजी हिसाब नहीं देते तो यथार्थ मे सत्य और उचितहै कि मुन्शी इन्द्रमणि प्रथम दिवस ही से कहते हैं कि स्वामीजी और लाला साहब को मुझसे हिसाब लेनेका अधिकार नहीं है कि उन्होने कोई कारखाना खजाना मेरे आधीन नहीं किया बल्कि उनको उचितहै कि मुझको चंदाके द्रव्यका हिसाब समझावें कि क्या आया और कितना खर्चहुआ कि उन्होने मेरे नामसे चदा इकट्ठाकिया, सो हिसाब देना तो एक तरफ रहा आजतक उनकी सख्या भी मुझको नहीं बतलाते और जिस दिनसे मैंने सख्या पूछने का तकाजा आरभ किया है, इधर उधर मेरी निंदा करते फिरते हैं बल्कि इतने पर भी सतोष न करके मेरे विषयमे मिथ्या लेख मुद्रित कराते हैं, स्वामीजी का कोयल जाना और वहा विराजना इसी वास्ते था कि कोयल मे बाबू तोताराम और राय बद्रीदास आदि वकीलों ने उक्त मुकद्दमे के लिये कुछ चदा इकट्ठा किया था कि जिस समय स्वामीजी को यह समाचार मिला तो चदा लेनेके लिय देहरादूनसे कोयल आये, परंतु मुन्शी इन्द्रमणि ने पहिले ही बाबू तोताराम को निज पत्रद्वारा प्रकट कर दिया था कि यदि आपने चदा खोला है तो वह सीधा मेरे पास रवाना करें दूसरों को दिया हुआ रुपया बहुधा मार्ग ही मे गड़प होता है, बस जब स्वा० जी ने बाबू साहब से चदा का जिकर किया तो उन्होने मुन्शी इन्द्रमणि का पत्र दिखलाया तब स्वामीजी खेदित होकेकहने लगे कि चदा का द्रव्य किसी साहूकार के पास भेजना चाहिये जिसके पास से रुपया आचुका है। यह सारा हाल बाबू तोताराम वकील कोयल के कार्ड नागरी से जोकि स्वामीजी के कोयल आने के पीछे मुन्शी इद्रमणि के पास उक्तबाबू साहिब ने भेजा था प्रकट होता है, यथार्थ नकल उसकी यह है।

मिश्रवर आप का पत्र आया, यहा का चदा मेरेसम्बन्ध से जमा हो रहा है जिस समय भेजने के लायक इकट्ठा हो जायगा तबही आपकी खिदमत मे पहुंचेगा स्वामी दयानन्दजी के कहने से जानागया कि चदा का रुपया किसी साहूकार के पास भेजना चाहिये जिसके यहा से रुपया आचुका है परंतु मेरा इरादा तो आपके

पास भेजने का है, आप जो उचित समझें वह करें ।

(तोताराम मुहल्लिम भारत बन्धु) ।

बाबू माधव केपर में शब्द लिखी आदकार से स्वामी जी की मुराद लाला रामशरणदास से है और (जिसके यहाँ से रुपया आचुका है) उस से स्वामीजी को गर्ज यह है कि चंदा का रुपया लाला रामशरणदास ही के पास भेजना उचित है कि उनके यहा से रुपया बतौर कर्ज के मुकद्दमे के खर्च के लिये आचुका है, देखो यह कितना बड़ा झूठा है, लाला शरणदास ने तो चंदे ही के रुपये में से मुन्शी जी को दोसौ रुपये न दिये अपने घर से कर्ज तो क्या देते यहा से मालूम होता है कि स्वामीजी का अभिप्राय यही था कि किसी बहानेसे चन्दाका रुपया उस लाला के खजाने में दाखिल करदें फिर इस स्थान से यह भी सिद्ध होता है कि चंदा स्वामीजी की कोशिश से नहीं हुआ किंतु वे- पर २ मांगते फिरे और नहीं मिला, जितनी चिट्ठिया कि मुन्शीजी के नाम आगरा से स्वामी जी ने लिखी थीं वह सब हमारे पास मौजूद हैं, उनकी लिखावट में अत्यंत असभ्यता भरी हुई है, और जो जवाब कि मुन्शी इन्द्रमणि ने उनकी चिट्ठियों के स्वामीजी को तहरीरकिये थे उनकी नकल भी हमारे पास है, जिन साहबों का देखना मंजूर होवे मुलाहिजा करलें स्थानाभाव से नकल करना उचित नहीं समझा, हा ! यह बात अवश्य सत्य है कि आप लोगों ने निज प्रण तोड़ कर आवश्यकता के समय चंदा के द्रव्य में से दोसौ रुपये देने से इनकार किया, किंतु सख्या तक नहीं बतलाई कि कितना रुपया अब तक यहा जमा हुआ है बस विचारलो इसमें आपही की निन्दा होगी कि मुन्शीजी के नाम से हजारों रुपया इकट्ठा किया और उनको बड़ी कठिनतासे केवल दो सौ रुपये दिये और शेष को आप ही उकार गए, और यह स्वामी जी की बड़ी कुदरत है कि मुन्शी जी ने रामशरणदास की निन्दा लिखी यदि स्वामी जी सत्यवादी हैं तो मुन्शी जी का लेख दिखलावें, यह तो स्वामी जी ही के गुण हैं कि जिसकी निज मुख से बड़ाई करते हैं उसकी निन्दा करने से कुछ भय नहीं करते हैं, प्रथम फर्रुखाबाद को पाताल लोक का ऋषि बतलाया था परंतु जब उन्होंने स्वामी जी की पोल खोलना प्रकट की कि यह लोग विद्या से अनभिज्ञ हैं कुछ नहीं जानते तब स्वा० जी उनको नास्तिक कहने लगे । इसी प्रकार सिलसिले आर्यदर्पण के विषय प्रथम तो

वेदभाष्य के टाइटिल पेज पर विज्ञापन दिया कि यह रिसाला वेदानुकूल है, जब कि मुन्शी बखतावरसिंह ने उनकी नौकरी छोड़ दी तो प्रकाशित किया कि आर्य-दर्पण किसी आर्य के प्रबन्ध से नहीं है। आगरा में मुन्शी इन्द्रमणि का चुनाने का सबब यह था कि वहां उनका सामने करके चन्दा जमा करें और उक्त लाला के घर भेज दें। जिस दिन स्वामी जी का आगरे में व्याख्यान पूरा हुआ तो अनुमान दो सौ प्रतिष्ठित पुरुष आगरे के वहां उपस्थित थे राय गिरधरलाल साहिब नक्शीनवीस अदालत आगरा ने खड़े हो कर स्वामी जी का धन्यवाद किया और स्वामी जी के संकेत से वकील साहिब कहने लगे कि यह मुन्शी इन्द्रमणि आये हैं, उस समय मुन्शीजी को मालूम हुआ कि स्वामी ने मुझको और लाला गिरधरलाल साहिब को धोका देकर अपना मनसूबा गांठा है, तब उसी समय पंडित जगन्नाथ दास ने मुन्शी इन्द्रमणि की सम्मति से राय गिरधरलाल साहिबको रोक दिया कि चन्दा का जिकर न कीजिये मुन्शीजी को स्वीकर नहीं है पहिलाही द्रव्य पूरा हमारे हाथ नहीं आया तब राय साहिबने चन्दा का विषय छोड़कर दूसरा विषय आरम्भ किया और स्वामीजी को यह कहना बहुत बुरा लगा परन्तु पर्दा में कुछ न कहसके यहाँ तो परमेश्वर की कृपा भी कारगर हुई और उक्त लाला की सचाई भी काम आई लेकिन जिस समय मुन्शी जी ने उस हिसाब को देखकर स्वामी जी से कहा कि यह बिना शिरपैर है इसमें बहुधा स्थानों का रुपया जमा नहीं है शायद कि यह आपके पास हो तब स्वामी जी सूरत बिगाड़ कर बोले कि तुम्हारे कहने का क्या प्रमाण है ? उस समय मुन्शी जी ने एक चिट्ठी गुरुदासपुरकी दिखलाई जिसमें लाला बल्लभराम साहिबने मुन्शी जी को लिखा था कि इतना रुपया तुम्हारे मुकदमे की सहायता के वास्ते मैंने स्वामीजी की सेवा में रवाना किया है, उन्होंने आपके पास भेजा होगा यह चिट्ठी देखते ही स्वामी जी नीची दृष्टि करके बोले कि गुरुदासपुर के रुपये मेरे पास आये तो हैं शायद मैंने रामशरणदासके पास भेज दिए, देखिये रामशरणदास को मैं अभी लिखता हूँ यथार्थ हाल मालूम हो जायगा, इसके पीछे आठ दश दिन मुन्शी इन्द्रमणि आगरे में विराजमान रहे परन्तु लाला रामशरणदास के पास से कुछ उत्तर नहीं आया उस समय स्वामी जी और उक्त लाला साहिबकी सचाई कहां गारी गई कि दश दिन तक मुंह न दिखलाया गुरु चेले की मिली भगत इसी

का नाम है, तत्पश्चात् मुन्शी साहिब मुरादाबाद चले आये ।

दो वर्ष तक भी गुरु चेले की सचाई ने प्रकाश न किया अब दो वर्ष पीछे मुन्शी की भूल बतलाते हैं, तफसील उसकी आगे आवेगी तत्पश्चात् जो स्वामी जी ने लिखा है कि मुँशी जी के कहने से पंडित जगन्नाथदास ने बेग को हाथ लगाकर कहा हिसाब का कागज तो मैं मुरादाबाद ही भूल आया । वह सब स्वामी जी की बनावट और गप्प है क्योंकि मुन्शी इन्द्रमणि ने तो इन दोनों गुरु चेलों की सत्य शीलता उसी दिन जान ली थी कि जब उनको दो सौ रुपए न दिए और चंदा की संख्या के बतलाने से इन्कार किया और जब ही भारतमित्र आदि समाचार पत्रों में विज्ञापन दिये और अपने मित्रों को पत्र लिखे कि दोनों की नीयत शुद्ध नहीं है इनके पास मेरे मुकद्दमे को बावन् कोई महाशय रुपया न भेजे कि इनसे मुझको कौडी वसूल होने की आशा नहीं है और इसी लिखा पढ़ी के अनुसार मुन्शी कन्हैयालाल अलखधारी और पंडित चतुर्भुज शास्त्री जी ने जो बड़ा पश्चिमोत्तर प्रदेश में स्वामी जी की नेक नीयत के लेक्चर और व्याख्यान देने आरम्भ कर दिये जब कि सत्य समाचार इस प्रकार है तो मुन्शी इन्द्रमणि इनको किस तरह पर हिसाब देते । प्रथम दिवस से ही उनकी चालाकी से भेदी होकर पृथक् हो गये थे । कौन विद्वान स्वीकार कर सकता है कि उक्त दोनों महाशय तो चंदा के द्रव्य मे से एक कौडी तक मुन्शी जी को न देवें । और न उसकी संख्या बतलावें, और मुन्शी जी उनको अपना स्वामी समझें अब सम्पूर्ण आर्य्य भाई समझ सकते हैं कि मुन्शी जी सच्चे हैं या दोनों गुरु चेले चोर की चोरी पकड़ना वितंडावाद नहीं है, स्वामी जी यह भी नहीं जानते कि वितंडा किसको कहते हैं, उसके साथ शब्द वाद् के लगाने की क्या आवश्यकता है कि वाद और वितंडा में बड़ा अन्तर है, मुन्शी जी ने ये ही नहीं कहा था कि केवल लाला बलभद्र दास का रुपया जमा नहीं है किंतु यह कहा था कि इस हिसाब में मेलजम घटाला व्यास आदि का बहुधा रुपया जमा नहीं है, उस समय स्वामी जी जलकर बोले कि क्या मेलजम आदि से तुमको किसी ने लिखा है ? मुन्शी जी ने उत्तर दिया कि हां लिखा है और एक चिट्ठी लाला बलभद्र दासको दिखलाई जिसके देखते ही स्वामी जी इधर उधर देखते रह गए । जिस दिन मुन्शी जी ने लाला बल्लभदास

की चिट्ठी लिखनाई थी उसके आठ दिन पीछे तक मुन्शी इन्द्रमणि जी स्वामी जी के पास और आगरे में रहे परतु लाला रामशरण दास की कोई चिट्ठी नहीं आई यदि आई होगी तो स्वामीजीने गुप्त रक्खी होगी अब दो वर्ष पीछे यह ढकोसला बनाया कि रामशरणदास के मुँशी की भून से लाहौर गुरुदासपुर के रुपये मिलाकर जमाकर दिये इस झूठ का क्या ठिकाना है, । और यह भी सर्वथा झूठ है कि लाहौर और गुरुदासपुर के रुपये एक ही दिन आये थे क्योंकि लाहौर के रुपयों से गुरुदासपुर के रुपये तेरह चौदह दिन पीछे आये हैं और उसकी साक्षी में एक चिट्ठी स्वामीजी की और दूसरी लाला वल्लभदास की है स्वामीजी की चिट्ठी तारीख २६ अगस्त सन् १८८० ई० पहिले सम्वत् १९३७ में लिखी जाचुकी है, उस में मुंशी इन्द्रमणि को मेरठ से लिखा है कि पजाब के अढाई सौ या तीन सौ रुपये आपके पास पहुँचे होंगे, आज हम यहाँ के सभासदों से दरियाफ्त करेंगे कि रुपये भेजे या नहीं अगर न भेजे होंगे तो हम भिजवाते हैं, चार दिन हुये कि हमने यहा के सभासदों के वास्ते भेजने रुपये के कह दिया है। जब कि चिट्ठी २६ अगस्त की लिखी है तो २६ से ४ दिन पहिले भावार्थ २२ अगस्त को स्वामीजी ने मेरठ के समाज सभासदों से कह दिया कि पजाब के रुपये मुंशी इन्द्रमणि के पास रवाना करदो। इससे जानागया कि वे रुपये २२ से पहिले या २२ही को लाहौर से आये थे। बस स्वामीजी के कहनेमूजब लाला आनन्दलाल मन्त्री आर्य्यसमाज मेरठने २७ अगस्त को दो सौ रुपए के नोट मुन्शी जी के पास रवाना किए और लिखा कि यह लाहौर के चन्दा का रुपया है। फिर इसके पीछे क्या हुआ वह विस्तार सहित ऊपर लिख चुके हैं, और लाला वल्लभदास की चिट्ठी तारीख ३ सितम्बर सन् १८८० ई० में लिखा है कि गुरुदासपुर के चन्दा के इतने रुपये ३१ अगस्त सन् १८८० ई० को हमने स्वामी जी के पास व मुकाम मेरठ भेजे हैं यह आपके पास पहुचेंगे। यहा से प्रकट है कि गुरुदासपुर के रुपए स्वामीजी के पास मनिआर्डर द्वारा चौथी व पाँचवी सितम्बर को आए होंगे इससे दोनोंके मध्य तेरा वा चौदा दिन का अतर है, एक दिन नहीं आए, इस लिए स्वामी जी के मिथ्या भाषणमें कुछ शका नहीं है, अब आर्य्यभाई पक्षपातको त्यागकर न्याय करें कि जिस सूरत में दोनो स्थानो के रुपए तेरा चौदा दिन के अतर से आए हैं तो रामशर-

णदास के मुन्शी की भूल क्यों कर हो सकती है और वह दोनों को एक साथ क्यों कर जमा कर सकता था, अथ गुप्त यह है कि लाला बल्लभदास की उक्त चिट्ठी में गुरुदासपुर के डेढसौ रुपये स्वामीजी के पास भेजने लिखे हैं और यह भी लिखा है कि और भी कोशिश कर रहा हूँ जो कुछ और हो सकेगा किया जावेगा। क्या आश्चर्य है कि इन डेढ सौ के पीछे अढाई सौ रुपये दूसरी बार स्वामी जी के पास बल्लभराम ने भेजे होंगे, परतु लाहौर के रुपए के साथ यह भी जमा नहीं हो सकते कि इनमे और लाहौर के में तेरह चौदह दिन से भी अधिक अतर होना सम्भव है, इनका आना उनके पीछेही हो सकता है, यदि यह मान लिया जाय कि ला० बल्लभदास ने डेढ सौ के पीछे अढाई सौ दूसरीबार भेजे और यह ला० रामशरणदास के मुन्शी की भूल से लाहौर के रुपयों के साथ जमा हो गए परतु उन डेढ सौ का फिर भी पता न लगा कि गुरुने गप्प किये या चेले ने। देखो इन डेढ सौ रुपये की बाबत स्वामीजी ने अनेक झूठ बनाये, प्रथम यह कि ला० रामशरणदास को लिखकर बराम मगवाया दूसरा यह कि दोनों स्थानों के रुपए भूलसे मिल कर जमा हो गए तीसरा यह कि लाहौर और गुरुदासपुर के रुपये एक दिन आये और चौथा यह कि लाहौर के चार सौ रुपयों को डेढ सौ बतलाया लाहौर के जिन महाशयों ने रुपया भेजा है वे हमारी लिखावट को देख कर भले प्रकार जान जायगे, और स्वामी जी की सचाई के अच्छी तरह भेदी होवेंगे कौन विश्वास कर सकता है कि लाहौर के हजारो शुभचिंतक मुन्शी इन्द्रमणि के रहते हैं और हजारों स्वामी जी के विश्वासी बसते हैं वहा से केवल डेढ़ सौ रुपया चढा होवे, अगर स्वामी जी के पास इन अढाई सौ के सिवाय कुछ नहीं आया तो छ हजार कहा गये जिनकी बाबत स्वामी जी ने मुन्शी कन्हैयालाल अलखधारी से आगरे में कहा था कि मुन्शी इद्रमणि के मुखमें में अब तक चदा के छ हजार रुपए आए हैं, और मेरठ मे एक दुकान पर जमा हैं, ला० रामशरणदास तो अपने पास चौदह सौ के लगभग आये हुए स्वीकार करते हैं, छ हजार का शेष भाग किसके घर गया मुन्शी कन्हैयालाल अलखधारी का पत्र पहिले लिखा जा चुका है, सभा का उकोसला अढाई वर्ष पीछे गढ़ा गया है, इसका खण्डन प्रथम ही हो चुका है पुन पुन करने की आवश्यकता नहीं है, यदि मान भी लिया जाय कि सभा स्थापित हुई भी तो उसके प्रतिकूल करने वाले और प्रणत्यागी स्वामी जी ही हैं, कि उन्होंने

मुकद्दमे के आरम्भ मे ही लाला रामशरणदास को दो सौ रुपया देने से रोक दिया और जिस काम के लिये रुपया जमा किया था उसमें आरम्भ ही से खर्च करना नहीं चाहा तब मुन्शी इन्द्रमणि ने उनकी नेक निय्यती प्रकाशित कर दी और भारत-मित्रादि समाचार पत्रो मे मुद्रित करा दिया कि स्वामी जी ने मेरे मुकद्दमें के बहाने से हजारों रुपया इकट्ठा किया और मुकद्दमे मे एक कौडी खर्च करना नहीं चाहते बस स्वामी जीने भी मुंशी जी की निन्दा करनी प्रारम्भ की, आर्य भाई न्याय करें कि यदि इस मामले मे स्वामी जी का कुछ स्वत सबध नहीं था तो उसी समय मुन्शी इन्द्रमणि को चदा के द्रव्य का हिसाब देकर पृथक् क्यों नहीं होगए। परतु पृथक् क्योंकर होते लालच तो लगा हुआ था, अनेक बार मुन्शी इन्द्रमणिने उनको समझाया कि तुमने चदा मेरे मुकद्दमे के बहाने से लिया है तो उसी मे खर्च करना उचित है और हाईकोर्ट के अपील के लिये मुझको उचित द्रव्य दीजिये वरना बद-नामी होगी और सन्यास को कलक लगेगा। परतु वह ऐसा कब सुनने वाले थे, तब लाचार मुन्शी जी ने भी उनको आडे हाथों लिया कि यदि तुम मुकद्दमें के खर्च मे कुछ नहीं लगाते तो हम चदा देने वालो को आपके गुप्त भेद से भेदी करते हैं, उस समय गुरु चेले ने गोष्ठी करके और अपनी बदनामी से डर कर छ सौ रुपए हाईकोर्ट की अपील के वास्ते दिये। यथार्थ मे मुन्शी इन्द्रमणि से स्वामी जी को हिसाब लेने का अधिकार नहीं है, कि उन्होंने मुन्शीजी की एजेंटी (मुख्त्यारी) स्वीकार की है, उनके नाम से चदा लिया और लोगों को लिखा कि मुन्शी जी के मुकद्दमे के वास्ते रुपया जमा करके हमारे पास भेजो हम उनको भेजेंगे। बस मुन्शी जी कह सकते हैं कि दयानन्द सरस्वती कौन है जो हमसे हिसाब मागें बल्कि मुन्शी जी उनसे हिसाब ले सकते हैं, क्योंकि देने वालो ने चदा स्वामी जी के पास इस लिये भेजा है कि वे सर्वत्र मुन्शी जी को देवें, अगर मुन्शी जी ने ये ही कहा कि हमारे ही नाम चंदा आता है तो क्या आश्चर्य है, जिन महाशयों ने चदा का रुपया स्वामी जी के पास भेजा है उन्होंने मुन्शी जी ही के नाम से रवाना किया है, यहां मैं अपने वचन के प्रमाण मे कुछ चदा देने वालों के पत्र, जो मुंशी इन्द्रमणि के नाम इस विषय मे आये हैं, उनका खुलासा लिखता हूँ जिनसे सिद्ध होता है कि चदा का द्रव्य मुन्शी जी के वास्ते स्वामीजी और राजा रामशरणदास

के पास भेजा गया था ।

(१) बाबू रत्नचंद साहब सेक्रेटरी आर्यसमाज लाहौर संपादक आर्य अखबार अपने सरुया ११४ तारीख ३० अगस्त सन् १८८० ई० के पत्र में लिखते हैं कि कुछ रुपया यहां से जमा करके मेरठ भेजा गया है और कुछ जमा हो रहा है जब वह भी जमा हो जावेगा उसी जगह इरसाल कर दिया जावेगा आप आर्य-समाज मेरठ से रुपया मंगालें ।

(२) लाला विशुनदास साहब सेक्रेटरी आर्यसमाज फीरोजपुर अपने २३ सितम्बर सन् १८८० ई० के पत्र में लिखते हैं कि चलते महीने की १९ तारीख को एक हुण्डी २२३॥=) दो सौ तेईस रुपया ग्यारह आना की आपके मुकद्दमे के खर्च को सहायता के लिये स्वामी जी की आज्ञानुसार लाला रामशरणदास साहब रईस मेरठ के पास भेज चुका हूं आशा है कि वहां से रुपया आपके पास पहुँचेगा इत्यादि० ।

(३) लाला वल्लभदास जी ३ सितम्बर सन १८८० ई० को गुरुदास पुर से लिखते है कि यहां से समाज के सभासद और कुछ शहर के और अमले के लोगों पर सब हाल विदित किया गया उन्होंने मुहब्बत के साथ डेढ सौ रुपए नौ आने चन्दा करके दिए सो हमने ६ तारीख ३१ अगस्त सन् १८८० ई० को स्वामी दयानन्द सरस्वती जी को मेरठ भेज दिए हैं सो आपके पास पहुँचेंगे और भी कोशिस कर रहा हूँ जो कुछ और होवेगा किया जावेगा गुरुदासपुर एक छोटा सा गांव है ।

(४) लाला रामचरण साहब रईस फर्रुखाबाद २३ अगस्त सन् १८८० ई० को लिखते हैं कि आपके विषय में चन्दा करने के लिए अन्तरंग सभा हुई और सभासदों की यह सम्मति हुई कि सौ रुपए भेजने अवश्य चाहिए और पैंतीस रुपए के अनुमान लाला मदनमोहनलाल की आमद रफ्त मे खर्च हुए हैं वह भी सफाफिप पर पड़ेंगे, अब आपको सूचित करता हूँ कि आप के लिये बराबर उक्त रुपया मनी आर्डर द्वारा भेज दिया जावेगा, और भी जो काम हमारे लायक हो और हम से हो सकेगा उसके करने में किसी प्रकार की कोताही न होगी ।

(५) फिर २७ अगस्त को उक्त लाला रामचरण लिखते हैं कि आपका

पत्र बैरिस्टर के विषय और अन्य लेखों सहित आया बड़ी खुशी हुई और एक चिट्ठी नागरीमें आपको भेजी थी इसपत्र में उसका कुछ हाल नहीं शायद कि पहुंची होगी, और प्रथम सौ रुपए यहां की समाज से स्वीकार हुए हैं यह आज्ञा हो तो आपको सेवा में रवाने किये जावें या मेरठ समाज में उसके मन्त्री के लेखानुसार भेज दिए जावें और यहां के समाज से तीन सौ और लाहौर आदि की समाज से डेढ़ हजार जमा हुआ है।

(६) और उक्त रामचरण का लेख है कि जो धन यहां से सौ रुपए हुआ था स्वामी जी के लेखानुसार लाला रामशरणदास के पास मेरठ भेज दिया गया अब सब रुपया जो कुछ और समाजों से हुआ है सब आपके पास जल्द भेज दिया जावेगा १७ अगस्त सन् १८८० ई० *

(७) फिर फर्रुखाबाद ही से १७ सितम्बर को बाबू जगन्नाथप्रसाद रईस लिखते हैं कि आपका ३१ अगस्त का लिखा पत्र पाया हाल मालूम हुआ आप खातिर जमा रखिये खर्च के अनुसार रुपया आपके पास पहुँच जावेगा, समाज फर्रुखाबाद का रुपया मेरठ रामशरणदास के पास भेज दिया गया मालूम होता है कि और समाजों का रुपया भी उनही की मारफत आपके पास पहुँचा होगा, और जो न पहुँचा होगा तो अब पहुच जावेगा, आपको किसी तरहकी तकलीफ न होगी

(८) मुन्शी जानकी प्रसाद सब पोस्ट मास्टर रुड़की अपने १५ सितम्बर सन् १८८० ई० के पत्र में लिखते हैं कि आपके मुकद्दमे का हाल सुनकर यहां के हिन्दुओं को अत्यन्त खेद हुआ है, जिसका लिखना व्यर्थ है सलिल वृत्तांत यह है कि यहां के लोगों ने एक सभा करके कुछ रुपया उक्त मुकद्दमे की सहायता में देने को एकत्र किया है यदि आज्ञा हो तो भेज दिया जाय, बिना पूछे भेजना इस लिए उचित नहीं समझा गया कि जनाब को बुरा न लगे, और मुकद्दमे के हाल से सूचित करते रहोगे तो दूसरा प्रबन्ध किया जायगा, यहांके आर्य्यसमाज से सौ रुपए मुन्शी आनन्द लाल मन्त्री आर्य्यसमाज मेरठ द्वारा भेजे गये हैं आशा है कि आपके पास पहुँचे होंगे पहुँच के समाचार अवश्य लिखियेगा इत्यादि० ॥

इसी प्रकार के अनेक पत्र हमारे पास मौजूद हैं परन्तु स्थानाभाव से

* यह तारीख १५ सितम्बर मालूम होती है भूल से १५ अगस्त छप गई है।

दाखिल नहीं किये गये आठ ही बहुत हैं और स्वामी जी के झूठा करने को इतना ही प्रमाण अधिक है और उनके देखने से विदित होता है कि चन्दा मुन्शी जी ही के मुकद्दमे के वास्ते किया गया था दयानन्द सरस्वतीके खर्चके तथा वेदमतकी रक्षा के लिए नहीं था फिर स्वामी जी क्योंकर उस रुपए के मालिक बन बैठे इसी का नाम सन्यासहै और इसी का नाम त्याग है, तत्पश्चात् एक पृष्ठ में जो स्वामी जी ने कथा अलापी है वह बिरुकुल झूठी है हम उसके उत्तरमें समय व्यर्थ व्यतीत करना उचित नही समझते झूठे से बातनहीं, अब आगेके लेखका उत्तर लिख सचझूठका निर्णय कराते हैं, मुरादाबाद जजी में जितनी मुन्शी इन्द्रमणि ने कोशिश की उससे मिस्टर हिल्स्लाहिब बैरिस्टर और बाबू नरेन्द्रचन्द्र और बाबू बैजनाथ और बाबू रत्नचन्द और लाला माधोदास आदि वकील हाईकोर्ट भेदी हैं जिसको विश्वास न हो वह दरियाफ्त करले बल्कि खुद लाला रामशरणदास लाला शादी-राम सहित उपस्थित थे। किंतु स्वामी जी तो उलटे जजी मुरादाबाद में भी मुकद्दमे के बिगाड़ने पर उतारू थे कि आवश्यकता पर दो सौ रुपए नहीं दिये गुप्त खर्च करने का तर्क स्वामी जी की बुद्धि का अजीर्ण है, कि खर्च मांगने लाने पर ही रहे हैं, राजकार्य्य को समझे उनको नहीं है, जिस सूरत में साधारण झगड़ों में गुप्त और प्रकट हजारहा रुपया खर्च होता है तो इस मुकद्दमे का क्या जिकर है, खैर स्वामीजी इस बात को तो मानते हैं कि मुन्शी इन्द्रमणिने हाईकोर्ट में किसी प्रकार के खर्च से हाथ न हटाया, और स्वामीजी वहां भी बिग्रकारी हुये कि जब रुपये की अत्यन्त आवश्यकता हुई और लाला हरकृष्णदास साहब वकील हाईकोर्ट ने स्वामी जी को बारम्बार लगातार पत्र पठाये कि चन्दा के रुपये में से इतना रुपया शीघ्र भेजो, परंतु स्वामी जी ऐसे चुप हुये कि किसी चिट्ठी का भी उत्तर नहीं दिया, खैर हाईकोर्ट से जो कुछ हुआ यह उनकी ही नियत का फल है, इसके अतिरिक्त यह किसकी नियतका फल है कि लाला कामताप्रसाद आदि स्वा० जी की तरफ से मुन्शी बख्तावरसिंह पर शाहजहांपुर की अदालत में नालशी हुये और अपना सा मुह लेकर घर आए।

स्वामी जी सिद्ध करते हैं कि हमने ही गवर्नर जनरल के यहां से सौ रुपये दण्ड दूर कराया, आर्य भाई खयाल करें कि स्वामी जी ने यह कितना बड़ा झूठ

बोला कि जिसकी बदौलत वे प्रतिष्ठित हाकिमों के सम्मुखभी यथार्थ रीतिसे सर्वथा झूठे सिद्ध हुए, क्योंकि स्वामी जी को इतना भी मालूम नहीं है कि सौ रुपये क्यों कर छूटे और किस हाकिम ने छोड़े। परंतु यह शीघ्रता से लिख बैठे कि गवर्नर जनरल साहब बहादुर के यहा से हमने मुआफ कराये धन्य महाराज धन्य आपके सन्यास पर सत्य कहना आपके कौन कौन से इष्ट मित्र गवर्नर जनरल से मिले और मुन्शी इंद्रमणि की उन्होंने शिफारस की ? मुन्शी इंद्रमणि पर तो भांति भांतिके दोष लगाये ही थे अब गवर्नर जनरल साहिब बहादुर पर भी दोष लगाते नहीं डरे, यदि गवर्नर जनरल साहिब को यह भेद मालूम हो और वे स्वामी जी के दोषारोपण से ज्ञात होकर अपने अधिकारों को काम में लावें तब स्वामी जी को झूठ बोलने का स्वाद मालूम हो अब स्वामी जी बुद्धि के कानों से अज्ञान रूप रुई की बत्ती निकालकर श्रवण करलें कि वह सौरुपये जुर्माना लफटेनेंट गवर्नर इलाहाबाद की आज्ञा से मुआफ हुआ है, गवर्नर जनरल साहब बहादुरके यहाँ तो मुकद्दमें की मिस्ल भेजने तक की भी नौबत न आई, इस सूरतमें यदि स्वामी जी को क्रुद्ध हुआ हो तो वन को सिधारें, यदि स्वामी जी अब भी अपना धर्म सभालें तो जितना रुपया मुन्शी इंद्रमणि के मुकद्दमे के चंदा का दोनों गुरु चेलों के आधीन है सर्वत्र मुंशी जी को देदेवें क्योंकि उन्होंने मुन्शीजी के नाम से रुपया जमा किया है, इस लिए उनको यह अधिकार नहीं है कि खुद मालिक बन बैठे, मुंशी इन्द्रमणि को अपने पास पहुचे रुपये के प्रकाशित करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि उन्होंने किसी दूसरे के नाम से रुपया ग्रहण नहीं किया किंतु अपने ही नाम से लिया और देने वालों ने अपनी खुशी से उनको दिया, हा यदि मुंशी जी किसी दूसरे के नाम से चन्दा एकत्रकरते तो अवश्य उनको कौड़ी२ का हिसाब देना उचित होता इस लिये स्वामी जी और लाला रामशरण दास को उचित है कि मुन्शी जी को हिसाब समझावें। और छ हजार का शेष द्रव्य सारा मुंशी जी को दे दें, और रसीद हस्ताक्षरी लेवें जबतक ऐसा नहीं करेंगे इस कलंकसे मुक्त न होंगे क्या इसी ईमानदारी पर एक लक्ष रुपया उपदेशक मंडली के बढाने से फिफ्ट बुलाया चाहते हैं, । फिर देखो यह व्यर्थ झूठ बोलते हैं किस दिन मेरठ में सभा स्थापित हुई थी और कौन २ उसके सभासद नियत हुए थे और किस समय उन्होंने यह

सम्मति दी थी कि शेष धन को स्वामी जी व्याजपर साहूकारको देवेंगे, और लेन देनकी कोठी खोलेंगे ! वाहरी अढ़ाई वर्ष की दिनचर्या रुपए डकारनेके लिये आपने सभा का ढकोसला बनाया क्या सन्यासी का यही धर्म है ? इसके अतिरिक्त मेरठ के लोग कौन हैं कि चदा के द्रव्यके विषयमे सम्मति करके गुरूजीकी गुप्त इच्छा पूरी करे ईमानदारी तो यह चाहती है कि छ हजार की बाकी का रुपया मुंशी इन्द्रमणि के हवालेकरें और वे मुसलमानो के साथ धार्मिक वादानुवादमें लगावें क्योंकि देने वालों ने रुपया इसी लिए दिया है, इस विषयमें चदा देने वालों के पत्र साक्षी और प्रमाण हैं और उनमे से नमूने के तौर पर कुछ ऊपर नकल किए गए यदि अब स्वामी जी की खातिर से चदा देने वाले भी अपनी पहिली लिखावट से प्रतिकूल कहने लगें तो ऐसा करना धर्म के भी प्रतिकूल होगा। स्वामी जी कहते हैं कि जब कभी आर्य्यों का अन्य मत वालों से झगडा हो तो इस चदा के द्रव्य से खर्च किया जाय यह कहना भी उचित नहीं है, क्योंकि देने वालों ने रुपया केवल एक ही मुकद्दमें के लिए दिया है कि मुंशी इन्द्रमणि की मुसलमानों से सहायता की जाय, यह समझ कर नहीं दिया है कि इस रुपए से अन्य हिन्दुजन ही को सताया जाय, इसलिए ईमानदारी की यही बात थी कि उसी झगडेमें यह द्रव्य लगाते सो आपने प्रथम ही से एक कौड़ी खर्च करनी नहीं चाही दूसरे मत वालों के झगडे मे क्या लगाओगे, शायद दूसरे मत वाले तुम पुराणिक लोगों को समझने हो क्योंकि वैदिक आर्य्यों के प्रतिकूल केवल पौराणिक ही हो सकते हैं, इससे आपका गुप्त विचार यह पाया गया कि पौराणिक लोगों के खण्डन में वह रुपया खर्च करें परन्तु यह धर्म्म के प्रतिकूल है और जिस हडिया में खाना उसी में छिद्र करना इसी का नाम है, क्योंकि उस रुपए में दो तिहाई से अधिक पौराणिक लोगों का है वाहरी ! ईमानदारी जिन महाशयो ने मुन्शी इन्द्रमणिका नाम लेकर रुपया लिया उससे उन ही का खडन करेंगे यह सर्वथा अधर्म है, किंतु उचित तो यही है कि जिस काम के लिये लोगों ने रुपया दिया है उसीमें लगाया जाने, बस गुरु और चेले को उचित है कि छ हजार का शेष धन मुन्शी इद्रमणि को प्रदान करे जिससे वे मुसलमानों के साथ वाद मे खर्च करें स्वामीजी के व्यर्थ खर्च का यह फल हुआ कि जिन मुसलमानों ने हमारे देवताओं और ऋषियों के

विषय में मनमाने कुवचन भरे लेख पुस्तकादि लिखे हैं उन पर नालिश करनी रुक गई और "इन्द्रवक्षी" के छपने में झगेला हुआ, इस लिए हम दृढता के साथ कह सकते हैं कि इस बड़े उपकारी कार्य में स्वामीजी के लालचने ही विघ्न डाला यदि मुन्शी जी को किसी प्रकार का लालच होता तो स्वामी जी और लाला रामशरणदास से उसी समय छ हजार का दावा करते क्यों छ हजार में से छ सौ लेकर ही चुप बैठ जाते। परतु स्वामी जी का लालच यहा तक बढ़ा कि मुन्शी जी के नाम से अपने पास आये हुये द्रव्य को लौटा देने के बदले उलटा उनसे हिसाब मागने लगे, अब विद्वान् लोग समझलेवें कि धर्म के प्रतिकूल कार्य स्वामीजी ने किया या मुँशी जी ने ? परमात्मा का धन्यवादहै कि स्वामी दयानन्द सरस्वतीने जितने दोष मुन्शी इन्द्रमणि पर लगाये थे वे सब स्वामी जी को ही सिद्ध होते हैं, अब स्वामी जी के लेख का यह उत्तर सम्पूर्ण करके आगे सपादक 'देशहितैषी' के लेखका उत्तरलिखा जाता है, यद्यपि मिथ्यावादी का कलाक झूठ बोलना ही अटल है, परतु कभी कभी उसके मुखसे भी बिना विचारे सत्य बात निकलही जाती है जिससे उसका असत्य वादी होना स्वत सिद्ध हो जाता है, देखो उसने लिखा है कि जितना रुपया मुन्शी इन्द्रमणि के झगड़े के विषय में आपके पास आया। इससे स्पष्ट सिद्ध है कि उस सर्वथा द्रव्य का अधिकारी मुन्शी इन्द्रमणि है क्योंकि वह रुपया उनकी ही सहायता के लिये एकत्रित किया गया था, फिर किस मुह से हिसाब मागा जाता है, स्वामी जी को उचित है कि खुद मुन्शी को हिसाब देवें, क्योंकि उन्होने मुन्शी जी के नाम से रुपया जमा किया है, और यदि यह मान लिया जाय कि स्वामीजीने अपना बनावटी कल्पित हिसाब किसी समाचार पत्र में मुद्रितभी करा दिया तो उससे वह छुटकारा नहीं पा सकते क्योंकि आश्चर्य नहीं कि वह अखबार सम्पूर्ण चदा देने वालों की दृष्टि में भी न पडा हो, उसके लेख से वे भेदी न हुये, बहुधा पत्र ऐसे हैं कि जिनका बहुधा मनुष्य नाम तक नहीं जानते, बस जब कि चदा देने वालो को खबर तक न हो तो वे क्योंकर जान सकते हैं कि स्वामी जी के हिसाब में हमारा रुपया जमा है या नहीं। इसलिए स्वामी जी सत्यवक्ता हुआ चाहे तो मुन्शी इन्द्रमणि को हिसाब देवे कि उनके पास बहुधा चदा देने वालोंके पत्र मौजूदहै, जिससे वह स्वामी जी के सच झूठ को जान सकते हैं, जब तक स्वामी जी यथार्थ हिसाब

अढाई सेर अगर तगर और दश मन काष्ट लेकर वेदानुकूल जैसे कि संस्कारविधि में लिखा है वेदी बना कर तदुक्त वेद मन्त्रों से होमकर के भस्म करे, इससे भिन्न कुछ भी वेद विरुद्ध क्रिया न करे और जो सभाजन उपस्थित न हों तो जो कोई समय पर उपस्थित हो वही पूर्वोक्त क्रिया करदे और जितना धन उसमें लगे उतना सभा से ले ले और सभा उसको दे दे ।

(६) अपनी विद्यमानता मे मैं और मेरेपश्चात यहसभा चाहे जिस सभासद् को पृथक् करके उसका प्रतिनिधि किसी अन्य योग सामाजिक आर्य पुरुष को नियत कर सकती है परंतु कोई सभासद् सभा से तब तक पृथक् न कियाजाय जब तक उसके कार्य में अन्यथा व्यवहार न पाया जाय ।

(७) मेरे सदृश यह सभा सदैव स्वीकारपत्रकी व्याख्या व उसके नियम और प्रतिज्ञाओं के पालन व किसी सभासद् के पृथक् करने और उसके स्थान में अन्य सभासद् के नियत करने व मेरे विपत्ति और आपत्काल के निवारण करने के उपाय और यत्न में वह उद्योग करे जो समस्त सभासदों की सम्मति से निश्चय और निर्णय पाया व पावे, और जो सम्मति में परस्पर विरोध हो तो बहु पक्षानुसार प्रबंध करे, और सभापति की सम्मति को सदैव द्विगुण जाने ।

(८) किसी समय भी यह सभा तीन से अधिक सभासदोंको अपराधकी परीक्षा कर पृथक् न कर सके जब तक पहिले तीन के प्रतिनिधि नियत न करले ।

(९) यदि सभा में से कोई पुरुष मर जाय व पूर्वोक्त नियमों और वेदोक्त नियमों और वेदोक्त धर्मों को त्याग कर विरुद्ध चलने लगे तो इस सभा के सभापति को उचित है कि सब सभासदों की सम्मति से पृथक् करके उसके स्थान में किसी अन्य योग्य वेदोक्त आर्य पुरुष को नियत कर दे परंतु जब तक नित्य कार्य के अनंतर नवीन कार्य का आरम्भ न हो ।

(१०) इस सभा को सर्वथा प्रबंध करने और नवीन युक्ति निकालने का अधिकार है पर पूरा पूरा निश्चय और विश्वास न हो तो पत्र द्वारा समय नियत करके संपूर्ण आर्यसमाजों मे सम्मति तो ले और बहु पक्षानुसार उचित प्रबंध करे ।

(११) प्रबंध न्यूनाधिक करना व स्वीकार व अस्वीकार करना व किसी सभासद् को पृथक् व नियत करना व आय व्यय और संख्या की जांच परताल

सभासद् को पृथक् २ नियत करना व आय व्यय और सचय की जांच परताल करना आदि लाभ हानि सब सभासदों को वार्षिक व षट् मासिक पत्र द्वारा सभा पति छपवा कर विदित करे।

(१२) इस स्वीकारपत्र संबधी कोई झगडा टटा सामयिक राज्याधिकारियों की कचहरी मे निवेदन न किया जाय यहसभा अपने आप न्याय व्यवस्था कर ले परन्तु जो अपनी सामर्थ्य से बाहर हो तो राज्यमह मे निवेदन करके अपना कार्य सिद्ध कर ले।

(१३) यदि मैं अपने जीते जी किसी योग्य आर्यजन को पारितोषिक अर्थात् पेन्शन देना चाहूँ और उसकी लिखित पढित कराके रजिष्ट्री करा दू तो सभा को उचित है कि उसको माने और दे।

(१४) किसी विशेष लाभ उन्नति परोपकार और सर्व हितकारी कार्य्य के वश मुझे और मेरे पीछे सभा को पूर्वोक्त नियमो के न्यूनाधिक करने का सर्वथा सदैव अधिकार है। (हस्ताक्षर दयानन्द सरस्वती के)

तत्पश्चात् अगले दिन महाराणा जी ने द्वादश शत कलदार रौप्य मुद्रा और एक सन्मान पत्र स्वामी जी को भेट किया और स्वामी जी के शिष्य रामानन्द को एक शत मुद्रा और एक दुशाला और फीरोजपुर के अनाथालय को ५००) और आनाथो को २००) दिया।

श्री महाराणा जी उदयपुर के दिए हुये सन्मान पत्र की नकल।

श्रीमदेकलिङ्गेश्वरोजयति।

स्वस्ति श्री सर्वोपकारार्थं कारुणिक परमहस परिव्राजकाचार्य्यवर्य श्री ५ श्रीमद्दयानन्द सरस्वती यति वर्येषु। इत महाराणा सज्जनसिहस्य नतिनय समुच्चतुरुदतस्तु। आपका अठै सात मास का निवासस् चित्त अत्यन्त आनन्द में रहो। क्योंकि आपकी शिक्षा को प्रकार श्रेष्ठ और उन्नति दायक है, और आपका सयोगस् के ही न्यायधर्मादि शारीरक कार्यों मे निस्सन्देह लाभ पाया होया कि यहा का सभ्य जना सहित दृढाशा हुई कारण कि शिक्षा और उपदेश या श्रेष्ठ पुरुषा का दृढ होवे है, जो स्वकीय आचरण भी प्रतिदृश्य नहीं राखे सोयो मे यथार्थ मित्यो अब म्हे आपका वियोगको सयोगतो नहीं पावा हां परन्तु आपको

शरीर अनेक मनुष्यों के उपकारक है जीसू अवरोध करणों अनुचित है तथापि पुनरागमन सू आपभी न्याका चित्त ने शीघ्र अनुमोदित करोगा इत्यलम् । सम्वत् १९३९ फाल्गुण कृ० ५ बुधवार ।

(हस्ताक्षर महाराणा सज्जन सिंहस्य)

सायंकाल के समय पौनस तयार हुआ १ मार्च सन् १८८३ ई० बृहस्पति वार को स्वामी जी उदयपुर से शाहपुरा को चल पड़े (क्योंकि शाहपुराधीश का बहुत दिनों से निमन्त्रण था) तीसरे दिन नीम्बाहेड़ा के स्टेशन पर पहुच कर रेल में सवार हो ३ मार्च शनिवार के दिन चित्तौड में पहुँच राजउदयपुर के नियत किये मकान में उतरे और तीन रात्रि यहा पूर्ण कर ७ मार्च को शाहपुरा में पहुच और ज्येष्ठ कृष्णा ४ सम्वत् १९४० तक वहा विराजे इस अवसर पर स्वामीजी को एक नवीन वेदांती का निम्न लिखित पत्र मिला ।

ओं रा ब्रह्म—श्रीमद्दयऽऽनन्द स्वामी की सेवा में प्रार्थना श्रीमद्भारतीय प्रजा के अतीव हितकारी हैं, अतएव श्रीमान् को परमेश्वर चिरायु करे, श्रीमान १९९९ मतन को खंडित करते हैं सो परस्पर पक्षपातीय होने से खंडनीय हैं, उक्त मातानुसार श्रीमत्स्थापित मत का भी खंडन होने दे । श्रीमानने यह निर्णय किया है कि मिथ्याभिमान स्वार्थ साधन में तत्पर अन्याय का कारण पापमें प्रवृत्ति चोरी जारी अनृत भाषण पक्षपात किसी का नुकसान इत्यादि निषिद्ध कर्मों को छोड़ना और इनसे विपरीत सद्धर्मानुष्ठान करणों इस प्रकार श्रीमत्के मुखारविन्दु से समस्त श्रवण किया है परन्तु शोक की वार्ता यह है कि दयानन्द दिग्विजयार्कीय द्वितीय खंड समाजिक प्रकरण प्रमाणाष्टक के सातवें अष्टकमें पृष्ठ १६९ पंक्ति २ वा ६ विषे जलसा चितौड़ मे (महाराणा श्रीउदयपुराधीश श्रीमत् दयानन्द की सेवा में दो बार उपस्थित होते थे यद्यपि लाट साहब के आने से महाराणा साहब को अवकाश कम मिलता था) इतना ही लिखने से महाराणा साहब का दो वक्त पधारना सिद्ध होजाता परन्तु आप नृगराज के गोदान विषय में श्लोक फरमाते हैं कि—

"यावन्त्यः सिकताभूमे. र्यावन्त्योदिवितारकाः ।
यावन्त्यो वर्षधाराश्च तावतीर्अर्बुदंस्मरन् ॥१॥ इति"

तात्पर्य्यहै झूठ बोलने वाले को तृप्ति नहीं होती यह आप का फरमाना यथार्थ है (तथापि उक्त नियम विषय में कसर नहीं पड़ने दी) महाराणा साहबने इति शेष यह क्या आर्य पुरुषों का समाज है, नहीं झूठ दंभादिक दोषनते रहित का नाम आर्य्य है जाको तो लोभी झूठे दांभिकों का समाज कहना चाहिये। इस प्रकार १ जगह झूठ के लिखने से स्थाली पुलाक न्यायतें सर्वत्र झूठ की संभावना होवे है, अब विचार करना चाहिये कि श्रीमान् के प्रतिष्ठित आर्य्य गोपाल शास्त्री ने अनृत क्यों लिखा है। क्या श्रीमान् उनको अधर्म छुड़वाने का सदुपदेश नहीं देते वा स्वयमेव आप के आर्यलोग प्रथकर्ता तो अधर्म्म आचरण करें और अन्यों के वाई धर्म रौचिक वाक्य कहकर निजमत में लेना और श्रीमान् न्याय शील धर्माधर्म्म के निर्णय में कथन भी करते हैं। पक्षपात रहित न्यायाचरण धर्म। और पक्षपात सहित न्यायाचरण धर्म। अतएव हम को आशा है कि द० द्वि० स० सा० प्र० प्र० पृ० के सातवें अष्टक पृष्ठ १६९ पंक्ति २ वा० ६ विषै पक्षपात रहित सत्यासत्य विचार करेंगे। इति। चैत्र वदि १३ गुरु. सं० १९३८ आप का कृपाभिलाषी साधु अमृतराम नवीन वेदांती। इदानीम निवासी शहर बून्दी ठिकाना शुक्लेश्वर महादेव, कृपा पत्र वेग से, चैत्र शुक्ला १० तक देना।

इसके उत्तर में स्वामीजीने गोपालराव को यह लिखा।

पंडित गोपाल राव हरिजी आनन्दित रहो।

आज एक साधु का पत्र मेरे पास आया वह आपके पास भेजता हूं, साधु का लेख सत्य है, परन्तु आपने चीतौडा सम्बन्धी इतिहास में न जाने कहा से क्या सुनसुनाकर लिख दिया उस काल उस स्थान में मेरा उदयपुराधीश से केवल तीन ही वार समागम हुआ आपने प्रति दिन दोवार होता रहा लिखा है। आप जानते हैं कि मुझे ऐसे कामों के परिशोधन का अवकाश नहीं यद्यपि आप सत्य प्रिय और शुद्ध भाव भावित ही हैं और उसी हित चित से उपकारक काम कर रहे हैं परन्तु जेव आपको मेरा इतिहास ठीक ठीक विदित नहीं तो उसके लिखने में कभी साहस मतकरो। क्योंकि थोड़ासा भी असत्य होजाने से सम्पूर्ण निर्दोष कृत्य विगड जाता है ऐसा निश्चयरक्खो और इस पत्र का उत्तर शीघ्र भेजो। वैशाख शुक्ला० २ सम्वत् १९४० स्थान शाहपुरा। [दयानन्द सरस्वती]

इधर स्वामी जी ने अमृतराम को लिख दिया कि यह भूल गोपालराव की है हमारी नहीं है और आज हमने उसको लिखभी दियाहै तुमको वह उत्तर देगा ।

तारीख २८ अप्रैल सन् १८८३ ई० मिती वैशाख कृ० ७ सम्वत् १९४० को ऋग्वेदभाष्य अंक ४८ । ४९ वैदिक यन्त्रालय इलाहाबाद से छप कर प्रकाशित हुआ ।

महाराजा जोधपुर के मनुष्य बुलाने को आए तब तारीख २६ मई सन् १८८३ ई० को शाहपुरा से चल कर २७ मई को अजमेर नगर पधारे । और जो सम्मान पत्र महाराजा शाहपुरा ने स्वामी जी को भेट किया उसकी नकल निम्न लिखित है ।

स्वस्ति श्री सर्वोपकारणार्थं कारुणिक परम हंस परिव्राजकाचार्य श्रीमद्दयानन्द सरस्वती जी महाराज के चरणारविंदों में महाराजाधिराज शाहपुरेश की बारम्बार नमस्ते अस्तु । वैदिक धर्म उपदेशक मंडली में मेरी ओर से एक उपदेशक रहे जिसके व्यय के वास्ते एक मुद्रा नित्यप्रति अर्थात् मासिक ३०) रुपया यहां से निरन्तर आज की तिथि से प्राप्त होते रहेंगे । सो वैदिक धर्म की महिमा सुना कर पाखण्डादि खण्डन करते रहें । अपरंच यहां आपका विराजना सार्द्धद्वय मास पर्यंत हुआ तथापि आपके सत्य धर्मोपदेश के श्रवण से मेरी आत्मा तृप्त न हुई आशा थी कि आप श्रीमात अत्रस्थित होते परन्तु जोधपुराधीशों की ओर से दर्शनों की और वेदोक्त धर्म उपदेश ग्रहण की पुन सत्याचरण असत्य का त्याग आपके मुखारविंद से श्रवण करने की अभिलाषा देख के आपने यहां पधारना स्वीकार किया और भवच्छरीर भी करोडो मनुष्योंके उपकारार्थ प्रकट हुआ है, यह समझ के मेरी भी सम्मति यही हुई कि आपका पधारना ही उत्तम है, यही समझ के यहां विराजने की प्रार्थना नहीं की आशा है कि कृतकृत्य करने के निमित्त पुनरागमन करेंगे । मिती ज्येष्ठ कृष्ण० ४ सम्वत् १९४० ।

[हस्ताक्षर महाराजा नाहरसिंहस्य]

स्वामी जी अजमेर शहर में एक दिन ठहर कर सर्व आर्यसमाजियों से मिले फिर रेल में सवार हो पाली गए और पाली से राजा साहब जोधपुराधीश की भेजी हुई सवारियों में बैठ कर जोधपुर पधारे, भाई फैजउल्ला खां की कोठी

पर डेरा हुआ, राजा साहब ने ५ मुहर २५) रुपए नकद भेट किए और सेव करने को अनेक चाकर नियत कर दिए।

इसी अवसर पर मुरादाबाद आर्यसमाज से एक विज्ञापन सर्व समाजों में भेजा गया जिसकी नकल यह है।

॥ विज्ञापन ॥

महाशय! नमस्ते—विदित हो कि श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज और आर्य्यसमाज के नियम विरुद्ध आचरण करने के कारण मुन्शी इन्द्रमणि जी प्रधान और लाला जगन्नाथदास जी पुस्तकाध्यक्ष अपने अपने पद और सभासदी इस आर्य्यसमाज से तारीख २९ मई सन् १८८३ ई० को अलग किये गए और मुन्शी दुर्गाचरण जी प्रधान नियत हुए आगे को खत वगैरह मुन्शी क्षेमकरणदास मन्त्री के नाम, ठिकाना—मकान लाला श्यामसुन्दर जी रईस मंडी पास मुरादाबाद भेजे जावें। तारीख ३० मई सन् १८८३ ई०।

[हस्ताक्षर क्षेमकरणदास मन्त्री आर्यसमाज मुरादाबाद *]

इन्हीं दिनों में एक विज्ञापन उर्दू अक्षरों में नारायणदास सुदर्शन यन्त्राध्यक्ष मुरादाबाद ने और एक लेख तारीख ३१ मई सन् १८८३ ई० के आर्यदर्पण शाहजहांपुर में लाला जगन्नाथदास मुरादाबाद निवासी ने मुद्रित कराया नकल दोनों की इस प्रकार है।

इत्तिला—गुप्त न रहे कि मुन्शी इन्द्रमणि और स्वामी दयानन्द सरस्वती के मध्य बहुधा विषयों में धर्म की बातों में प्रतिकूलता चली आती थी और सदैव वादानुवाद होता रहताथा और स्वामीजी एक दो विषयमें नित्य मुन्शीजी के वाक्य ग्रहण करते रहे हैं, जैसे प्रथम स्वामीजी जीव और प्रकृति व जगत्को आदि मानते थे और उसीके अनुकूल सत्यार्थप्रकाश आदिमें लिख भी चुके थे परंतु जिस समय मुंशी इंद्रमणिने उनको समझाया तबसे उन्होंने जीव आदिका अनादि होना स्वीकार करके अपनी पहिली लिखावट का खंडन करना आरंभ करदिया, इस प्रकार के अनेक विषयहैं जिनमें मुंशीजी और स्वामीजीकी एकता होती चली जातीथी परंतु अब सासारिकविषयोंमें दोनों महाशयों का विवाद होकर फूट पड़गई है, और आगे

* यह विज्ञापन सब समाजों में भेजा गया था।

को यह आशाभी नहीं है कि उक्त विषयमें दोनों महाशयोंकी एकता हो, इस लिये ता० १५-५-१८८३ ई० से शुद्धदर्शन यन्त्रालयसे एक मासिक पत्र नागरी और उर्दू दोनों भाषाओं में मीश २० छब्बीश २६ कागज पर धार्मिक विषयों के निर्णय मे प्रचलित होगा। और फलेवर २४ पृष्ठ से कम न होगा, चौथे या पांचवें पत्र से स्वामी दयानन्द सरस्वती के साथ उन विषयों में वाद स्थापन होगा जिन की मुन्शी जी और स्वामीजी में प्रतिकूलता है, और स्वामीजी की सम्पूर्ण पुस्तकों को न्याय-दृष्टि से देखकर यथार्थ आलोचना की जायगी, आर्य्यों को उचित है कि परमात्मा का धन्यवाद करें कि उन के लिये प्रश्नोत्तर करने का अवसर हाथ आया अब स्वामीजी को चाहियेकि इस पत्र की आलोचना पर हर्ष करें या उत्तर लिखें, और उत्तर लिखने में कपड़े की ओट शिकार खेलना छोड़दें। अपना लेख दूसरों के नाम से छपाना बहुत बुरा है, प्रकट में अपना नाम मुद्रित कराईये ताकि लोगों की दृष्टि में उस लेख का आदर हो, इस बादानुवाद से प्रयोजन तो इतना ही है कि सत्य की जड हरी हो और असत्यकी जड कटे ॥ इति ॥

(प्रकट कर्ता नारायणदास सुदर्शनयन्त्रालयाध्यक्ष)

॥ आर्य्य दर्पण में जगन्नाथ दास का लेख ॥

जो कि आर्य्य प्रश्नोत्तरी में प्रश्न ९ के उत्तर मे लिखा है कि एक परब्रह्म पुरुषोतम सच्चिदानन्द ही की उपासना करनी चाहिये, इस पर स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने तर्क किया है कि पुरुषोतम शब्द वेद का नहीं है, इसलिये निवेदन यह है कि जब स्वामीजी ने पुरुषोतम शब्द वेद का न होने से मुकरर तर्क किया है तो लाजिम आया कि स्वामीजी अपने पुस्तकों में ऐसे शब्द भूलकर भी न लिखें जो वेदों से भिन्न हों, इसलिये उन से प्रश्न करता हू कि हे महाराज आपने जो "सत्यार्थप्रकाश" और "आर्य्याभिविनय" आदि अपनी पुस्तकों में परमेश्वर, परमात्मा अघमोद्धारक, दयालु, दयानिधि, पतितपावन आदि शब्द लिखे हैं वह वेद में कहां हैं, पंच महा यज्ञविधि जो खास उपासना की पुस्तक है, उस में जो आपने इंद्रिय स्पर्श और मार्जन के मंत्र लिखे हैं वह किस वेद में हैं मन से ईश्वर की परिक्रम करना वेद मे लिखा है या आप ही की आज्ञा है, वलिवैश्वदेव विधि में जो जो मंत्र आपने लिखे हैं वह किस वेद के हैं, आर्य्योद्देश्यरत्नमाला में जो

आपने आठ प्रमाण लिखे हैं वह वेद ही से लिखे हैं या पुराण वालो से विद्याध्ययन की है, "सत्यार्थप्रकाश" पृष्ठ ३०२ व ३०३ में मास भक्षण की आज्ञा दी है, और गोमेध यज्ञ में वृषभ और वन्ध्या गौ के हनन की आज्ञा लिखी है, इसी प्रकार सस्कार विधि में मास खाना लिखा यह वेद में कहा है।

विदित होकि इस विषय में हमारा और स्वामीजी का बहुत बडा विरोध है, हमारा कथन यह है कि किसी यज्ञ में किसी पशु का मारना और मास खाना वेद की आज्ञा प्रमाण और उचित नहीं है, यह कितनेक प्रश्न स्वामीजी और उन के अनुयाईयों की सेवा में पुन पुन भेजकर निवेदन करता हू कि इनका यथार्थ उत्तर प्रदान कर नहीं तो अपनी भूल स्वीकार करें।

(राकिम जगन्नाथ दास)

जोधपुर में नौकर कराने के लिये स्वामीजी ने एक पत्र भाई जवाहिरसिंह सेक्रेटरी आर्य्यसमाज लाहौर को लिखा जिस की नकल इस प्रकार है।

भाई जवाहिरसिंह जी आनन्दित रहो।

आप का पत्र पाया विशेष आनन्द हुआ, आप रियासत जोधपुर में अवश्य आओ मुझको निश्चय है आप के आने से यहाँ बडा आनन्द और उन्नति होगी इत्यादि० इत्यादि० [हस्ताक्षर दयानन्द सरस्वति जोधपुर]

और भाई जवाहिरसिंह जोधपुर में आनकर एक चाकरी पर लगाये गये तब स्वामीजी ने उनको उपदेश रूप एक पत्र और लिखा जिस की नकल यह है।

प्रियवर भाई जवाहिरसिंह जी * आनन्दित रहो।

आप जोधपुर आये बडी खुशी हुई,।

निश्चय है कि आप अपने काम पर तत्पर रहेंगे और श्रीमान् महाराजाधिराज को अति आनन्दित करेंगे और अपने पुरुषार्थ स्वभाविक सद्गुणों और उत्तम कामों से अपनी कीर्त्ति को बढ़ावेंगे,, इत्यादि० ज्येष्ट कृष्णा १० सम्वत् १९३०

तारीख ३० जून सन् १८८३ ई० मिति आषाढ कृष्णा १० को वैदिक यन्त्रालय इलाहाबाद से ऋग्वेद भाष्य अक ५० ।५१ छपकर प्रकाशित हुआ। *

* यह वही जवाहिरसिंह हैं जो अब स्वामी दयानन्द के पूरे शत्रु होगये हैं।

* इससे अगला अक स्वामीजी के मरे पीछे प्रकाशित हुआ था।

आषाढ शुक्ला० ८ सम्वत् १९४० के भारत मित्र पत्र में एक लेख स्वामी दयानन्द सरस्वती के प्रतिकूल छपा था जिस का उत्तर स्वामीजी ने इस प्रकार देश हितैषी मे छपाया, ।

श्रीयुत देशहितैषी सम्पादक समीपेषु । महाशय

भारत मित्र सम्वत् १९४० आषाढ सुदी० ८ गुरुवार के छपे हुए पत्र में किसी ने वेद पर आक्षेप पत्र छपवाया है उस लेख का अभिप्राय यही विदित होता है कि वेद ईश्वर की वाणी और अभ्रांत नहीं है । परतु इस प्रश्न के करने वाले ने प्रश्न मात्र ही किया है, अपनी प्रतिज्ञाका सत्य करने के लिये कोई विशेष हेतु नहीं लिखा जो किसी वेद वचन पर भ्रात पन दिखलाता तो उसका उत्तर उसी समय दिया जाता, जैसे कोई कहे कि यह एक हजार रुपयों की थैली सच्ची नहीं दूसरे ने उससे पूछा क्या मैं तुम्हारे कहने मात्र ही से थैली को झूठ मान सकता हूँ जबतक तुम झूठा रुपया इसमें से १ भी निकाल के सिद्ध नहीं कर देते तब तक थैली को झूठ नहीं मानूगा । वैसा ही मिस्टर ए० ओ० ह्यूम साहब और जिसने आपके पत्र में छपायाहै इन दोनो महाशयोका लेख है यहां उनको योग्य था और है कि किसी एक व अनेक मन्त्रों को अपने अभिप्राय के अर्थ सहित वेद अध्याय मन्त्र सख्या पूर्वक लिख कर पश्चात कहते कि वेद ईश्वरकी वाणी और अभ्रात नहीं है तो प्रत्युत्तर के योग प्रश्न होता अब भी यदि उत्तर जानने की इच्छा हो तो इसी प्रकार करें नहीं तो कुछ भी नहीं है, किन्तु इसमें इतनी बात तो समाधान देने के किसी प्रकार योग्य है सो यह कि वेदों मे मत भेद क्यो है, अब देखिये यह भी इनकी गोल माल बात है क्योंकि वेदो मे किस ठिकाने और किन मन्त्रों में किस प्रकार के मत भेद हैं, हाँ ! विद्याभेद से कथनका भेद होना तो उचित नहीं है, जो व्याकरण निरुक्त, छन्द, ज्योतिष, वैद्यक, राजविद्या, गान, शिल्प और पृथ्वी से लेके परमेश्वर पर्यंत की अनेक विद्याओं की मूल विद्या वेदो में है इनके सकेत शब्दार्थ और सबन्ध भिन्न २ हैं जैसे व्याकरण विद्या से ज्योतिष विद्यादि के सकेत परिभाषा और पदार्थ विज्ञापन पृथक् २ होते हैं, वैसे इन सब विद्याओं के वाचक अर्थात् प्रकाश मत्र भी पृथक् २ अर्थ के प्रतिपादक हैं यदि इन्हीं को भेद कहते हैं तो प्रश्न कर्ताका कथन असगत है और जो दूसरे प्रकारके मतभेद मानते हैं तो उनका कथन

सर्वथा अशुद्ध है इसलिए प्रश्नकर्ताओं को उचित है कि पूर्वोक्त प्रकार से चारो वेदों में से कोई एक मंत्र भी भ्रांत प्रतीत होवे वह आपके पत्र मे मिस्टर ए ओ. ह्यूम साहब छपवावें उनका उत्तर भी आप ही के पत्र मे उचित समय में छपवा दिया जायगा और उनको वेद के निर्भ्रांत होने के जानने की यदी जिज्ञासा हो तो मेरी बनाई ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका को देख लेवें यदि उनके पास न हो तो वैदिक यन्त्रालय प्रयागसे मगाकर देखें और जो उनको आर्यभाषाका पूरा ज्ञान न हो तो किसी सत्यवक्ता दुभाषिये पुरुष से सुने इस पर जो उनको शका रहजाय तो मुझसे समझ लिवे जितनी शका हों उन सब का यथावत् समाधान कर लेवें क्योंकि पत्रो से शंका समाधान होने में विलम्ब होता है और अधिक अवकाश की भी अपेक्षा है, और मुझको वेदभाष्य के बनाने के काम से अवकाश न मिलने के कारण विशेष प्रश्नोत्तर करने का समय नहीं है और जो उन्होंने यह लिखा है कि स्वामीजी ईश्वर व ईश्वरकी प्रेरणा युक्त हों तो उनका भाष्य निर्भ्रम होसके० मैं ईश्वर नहीं किन्तु ईश्वर का उपासक हूँ परतु वेद मनुष्यो के हितार्थ परमात्मा ने प्रकाशित किये हैं इस अभिप्राय से कि यहाँ तक मनुष्यों की विद्या और बुद्धि पहुच सकेगी और इतने तक कार्य मनुष्यकर सकेंगे, इसलिये यावत् मेरी बुद्धि और विद्याहै तावत् निष्पक्षपात होकर वेदों का अर्थ प्रकाशित करताहूँ, और वह अर्थ सब सज्जनोके दृष्टिगोचर हुआ है, होता है और होगाभी, यदि कहीं भ्रांत हो तो वक्त साहब प्रकाशित करें, बड़े शोक की बात है कि आज पर्यंत एक भी दोष वेदभाष्य में से कोई भी नहीं निकाल सकता है फिरभी इसका भ्रम दूर नहीं हुआ, ऐसी निर्मूल शका कोई भी किया करे इससे कुछ भी हानि नहीं हो सकती और सत्यार्थ होने ही से वेदों का निर्भ्रांतत्व यथावत् सिद्ध है, यदि इस मेरे बनाए भाष्यमे मिस्टर ए ओ ह्यूम साहब को भ्रम हो तो इसमें भ्रांतत्व किसी मत के भाष्य द्वारा आपके पत्र मे छपवा देवें मैं उत्तर भी आप ही के पत्र द्वारा दूगा और जो थियोसोफिस्ट के अध्यक्ष ऐसी बातें करें इसमे क्या आश्चर्य्य है क्योंकि अनीश्वरवादी बौद्धमतावलम्बी होकर भूत प्रेत और चुटकलो के मानने वाले हैं, बड़े शोक की बात है कि सर्वथा विद्यासिद्ध परमात्मा को न मान कर भूत प्रेत मृतकों मे फस कर और औरो मनुष्यों को फसा अपने को सुधारने वाले मानना यह कितनी बड़ी भ्रम

चित बात है इनको नास्तिक मत जो कि ईश्वर को न मानना वही प्रिय लगता है परन्तु इसमें इतनी ही न्यूनता है कि भूत प्रेतों ने इनको घेर लिया सच है जो सत्य ईश्वर को छोड़ेंगे वे मिथ्या भ्रमजाल भूत प्रेतो और बन्ध्यापुत्र वकुतुर्वी-लाल आदि क्यों न फसेंगे, बहुत से समाचारों में छपवाते हैं कि इतने सौ इतने हजार मनुष्यों को मिस्टर एच ए० कर्नल अल्काट साहिबने रोग रहित किया यदि यह बात होती मुझको क्यों नहीं दिखलाते और मनवाते और मेरे सामने कि जिस-को में कहू उसको भी निरोग करदें तो मैं थियोसाफिस्टों के अध्यक्ष को धन्यवाद दू, इसमे मुझको निश्चय है कि जैसे एक थियासाफिस्ट दभ के मारे, लाहौर में अगुली पटवा के अंग भग होगया कहीं ऐसी गति मेरे सामने इनकी न हो जावे, और करामात कुछ भी काम न आवेगी मैं प्रसिद्धी से कहता हूँ कि यदि इनमे कुछ भी अलौकिक शक्ति व योग विद्या हो तो मुझको दिखलावें । मैंने जहांतक इनकी लीला सिद्ध और योग्य विषय देखी है वह मानने के योग्य नहीं थी अब नई-विद्या कहीं से सीख आये ? मुझको तो यह विषय निकम्मा आडम्बर रूप दीखता है ॥ अलमिति विस्तरेण बुद्धिमद्वर्य्येषु । मिती श्रावण बदी ४ सम्वत् १९४० वि० स्थान जोधपुर ।

(दयानन्द सरस्वती)

चार महीने तक स्वामी जी जोधपुर में विराजमान रहे, अचानक आश्विन कृष्णा एकादशी को स्वामी जी को श्लेष्मा (जुकाम) की व्याधि उत्पन्न हुई, उसके चौथे दिन शाहपुरा के निवासी रसोईदार से दुग्ध-पीकर सो गये, परन्तु पाचन न होकर रात्रि भर में तीन बार वमन हुआ, फिर प्रात समय कुछ दिन चढे (सदैव के नियम विरुद्ध) सूते उठे तो एक वमन और हुआ * फिर तो जल पी पी कर दो तीन वमन स्वत कर डाले और शीघ्र अग्नि कुँड में धूप डलवा कर कोठी में सुगन्ध फैलाई पश्चात् उदर शूल उत्पन्न हुआ तब डाक्टर सूरजमल बुलाये गये, उन्होंने वमन बन्द करने की औषधि देकर पूछा अब क्या हाल है; तब बोले उदर शूल हो रहा है प्यास बन्द की दवाई मिलनी चाहिये । तदनुसार दवा दी गई परन्तु पेट का दर्द अधिक होता चला गया तब लाचार ३० तारीख

* सदैव तो कुछ रात रहते ही सूने उठ जगली वायु लेने चले जाते थे ।

सितम्बर को चार बजे राजा साहिब प्रतापसिंह जी के नौकरों ने बड़े डाक्टर अली मर्दाखाँ को बुलाया उन्होंने स्वामी जी के पेट पर पट्टी बाधी, प्रथम तारीख अक्टूबर को प्रात. समय डाक्टर साहिब ने पुन आनकर गिलास लगाये। २ अक्टूबर को स्वामी जी ने डाक्टर साहिब से जुलाब देने को कहा उसने ३ अक्टूबर को गोली सिलाई जिससे ९ बजे तक तो दस्त नहीं आये परन्तु १०बजे से दस्त आरम्भ होकर रात्रि दिन में ३० से अधिक दस्त होगये। ४ अक्टूबर को प्रात काल फिर डाक्टर लोग आये स्वामीजी ने कहा दस्त बहुत हुये जी घबराता है, इसरोज बिना जुलाब के ही अनेक दस्त हुये और सायकाल को एक दस्त ऐसा कठिन हुआ कि स्वामी जी को मूर्छा हो गई तत्पश्चात् तो दस्त के साथ ही मूर्छा होने लगी थी।

आश्विन शुक्ला ३ सम्वत् १९४० को वैदिक यन्त्रालय प्रयाग से स्वामी जी कृत निघट पुस्तक छपकर निकला *।

६ अक्टूबर को स्वामी जी ने डाक्टर से कहा अब दस्त बन्द होने चाहिए क्योंकि मूर्छा बराबर होती है, इस उपरान्त मुख मे छाले और सम्पूर्ण शरीर मे फफोले पड़ गए हिचकी जमाई जारी हुई निकटवर्ती मनुष्यों को शका हुई कि यह कैसाजुलाबहै, तारीख ७–८–९–१०–११ अक्टूबर इसी प्रकार व्यतीतहुई, तब बारह अक्टूबर को अजमेर आर्यसमाज के एक सभासद् नें यह समाचार अजमेर मे फैलाए तब तो अजमेर समाजने तारों द्वारा मेरठ फर्रुखाबाद लाहौर उदयपुरादिक स्थानों में कोलाहल मचा दिया और अनेक मनुष्यों ने स्वामी जी के निकट पहुच प्रार्थना की कि यहा रहना उचित नहीं आबू चलना चाहिये तब स्वामी जी १६ अक्टूबर को आबू चलने पर उद्यमी हुए, यद्यपि जोधपुर वालों ने चाहा कि ऐसे समय आपका जाना हमारी अपकीर्ति और निन्दा का कारण है परन्तु जब देखा कि इनका यहा ठहरना अब कठिन है तो राजा साहब ने २०००) रुपया और एक

* स्वामी जी कृत "स्वामी नारायण मत खंडन" "वेदान्ति ध्वांति निवारण" यह दो पुस्तक यथा योग्य स्थान पर लिखे नहीं गए, कारण यह है कि इन पर बनाये जाने का समय छपा नहीं है, परन्तु यह दोनों पुस्तक सम्वत् १९३२ की बनी हुई मालूम होती हैं।

दुशाला भेट किया अपनी पीनस में सवार कराकर विदा किया और कहा कि आबू में हमारी कोठी पर ही ठहरना तथा रोग शांत होने पर समाचार देना, डाक्टर सूर्यमल और बहुत से मनुष्य साथ कर दिये, मार्ग में स्वामीजी को हिचकी वमन दस्त बराबर जारी रहे और इसी दशा में यह २१ अक्टूबर को सायंकाल आबू में आये यहाँ एक लक्ष्मणदास नामी डाक्टर मिले जिनकी दवा से दस्त वमन थमे और आशा हुई कि अब रोग हट जायगा परन्तु डाक्टर साहब को उनके अफसर ने ठहरने नहीं दिया, लाचार वे चार दिन की दवा बना कर दे गये २३ अक्टूबर को जो समाजी मनुष्य वहां उपस्थित थे उन्होंने स्वामीजी की इच्छानुसार आये हुये पत्र तार आदि का उत्तर लिख संशय का संशय मिटाया २६ तारीख को समाजी लोग स्वामी जी को अजमेर में लाए और डाक्टर लक्ष्मणदास का इलाज कराने लगे तारीख २३ से लेकर तारीख २९ तक की दशा कुछ बुरी न थी परन्तु २९ तारीख को अर्द्ध रात्रि के समय रोग ऐसा प्रबल हुआ कि डाक्टर के भी छक्के छूट गये तब इधर उधर से अनेक डाक्टर बुलाये गये देश देशान्तर से तार द्वारा बल पूछे गये परन्तु कुछ गुणकारी नहीं हुये और ता० ३० अक्टूबर सन् १८८३ ई० मिती कार्तिक कृष्णा ३० सम्वत् १९४० को सूर्योस्त के समय स्वामी जी परलोक सिधारे ।

नभ[A] विधिमुख[B] निधि[C] इन्दु[D] सर[E] दीपमालदिनश्याम ।
दयानन्द अजमेर में त्यागो तन अभिराम ॥ १ ॥

अगले दिन अजमेरके आर्यसमाजी मनुष्यों ने विमान में रख अजमेरनगर से दक्षिणकोण में एक पहाड़ी के नीचे मूलसर श्मसान में दो मन चन्दन १० मन आम्रकाष्ठ, ४ मन घृत, ५ सेर कपूर, अढाईसेर बालछड़, आधसेर केशर, २ तोला कस्तूरी आदि से दग्धकर चिता के निकट चौकी पहरे लगा दिये ।

दूसरे दिन अजमेर समाज ने स्वामी जी का हिसाब बस्त पुस्तकादि पदार्थ और जो कुछ वेदभाष्य छपने के लिए तैयार था पण्डा मोहनलाल विष्णुलाल को एक सूचीपत्र के अनुसार [जो स्वामी जी की पुस्तकों में मिला था] सम्भाल दिया और उपस्थित मनुष्यों ने इस कैफियत पर हस्ताक्षर कर दिये । वदयपुराधीश

A नभ० B विधिमुख ० C निधि ९ D इन्दु १ E सर सम्वत् कार्तिक कृष्णा ३०

जब पंड्या मोहनलाल विष्णुलाल को स्वामी जी के पास भेजा। यह कह दिया था कि यदि महाराज का शरीर छूटजाय तो किसी प्रकार से वह चार पाच दिवस रक्खाजाय कि हमउनका अंतिम दर्शन करलें परन्तु उपस्थित मनुष्योंने डाक्टरके चीड़ फाड़ का भय मान यह बात स्वीकार नहीं की और शव शीघ्रता पूर्वक दग्ध किया गया॥ इति दयानन्द चरित्र अलम्॥

स्वामी जी की विद्यमानता मे निम्न लिखित ७९ आर्यसमाज स्थापित हो चुकी थी। पूना (१) बम्बई (२) लाहौर (३) अमृतसर (४) फीरोजपुर (५) रावलपिंडी (६) रुड़की (७) देहरादून (८) सहारनपुर (९) मुज्फ्फरनगर हटा (१०) नुकड़ (११) बैहट (१२) मुजफ्फरनगर (१३) शाखा समाज रुड़की (१४) कस्बा तीतरौन (१५) मुजफ्फरनगर (१६) मेरठ (१७) बुराद-शहर (१८) चान्दूक जिला बुलन्दशहर (१९) नैनीताल (२०) बिजनौर (२१) नजीबाबाद (२२) मुरादाबाद (२३) बरेली (२४) शाहजहांपुर (२५) बदायूँ (२६) चन्दौसी (२७) पीलीभीत (२८) मथुरा (२९) आगरा (३०) मैनपुरी (३१) पटा (३२) फर्रुखाबाद (३३) धौलेपुर जिला फर्रुखाबाद (३४) फतेहगढ़ केम्प (३५) कायमगंज (३६) कानपुर (३७) पुराना कान पुर (३८) इलाहाबाद (३९) बनारस (४०) मिर्जापुर (४१) आजमगढ़ (४२) गाजीपुर (४३) लखनऊ (४४) हरदोई (४५) सीतापुर (४६) फैजा-बाद (४७) दानापुर (४८) बाकीपुर (४९) बिलासपुर (५०) डिंगूगढ़ (५१) करनाल (५२) हिसार (५३) रोहतक (५४) लुधियाना (५५) शिमला (५६) कालका (५७) गुरदासपुर (५८) सियालकोट (५९) जाला न्धर (६०) होशियारपुर (६१) गुजरानवाला (६२) फेनम (६३) शाह पुरा (६४) गुजरात (६५) पेशावर (६६) मीरी (६७) कसौली (६८) किराची [६९] सक्खर [७०] शिकारपुर [७१] जयपुर [७२] पालटा [७३] अजमेर [७४] थाना [७५] भावलपुर [७६] रामगढ़ [७७] छावनी मुगार [७८] मुल्तान [७९]।

स्वामी जी की मृत्यु के पश्चात् महीं महेन्द्रार्य्य कुल दिवाकर महाराणा जी उदयपुर ने दिसम्बर सन् १८८३ ई०-मास पौष सम्वत् १९४० मे एक छपा हुआ

विज्ञापन इस अभिप्राय से सम्पूर्ण आर्यसमाजों मे पठाया कि अपने अपने प्रतिनिधि नियत होकर तारीख २७ दिसम्बर सन् १८८३ ई० तक अजमेर मे आजावें कि स्वामी जी की आज्ञानुसार एक परोपकारिणी सभाका अधिवेशन किया जाय।

इस विज्ञापन के पहुचने पर महाराणा जी उदयपुर [१] ला० मूलराज जी एम० ए० [२] कवि शामलदास जी [३] पण्डित मोहनलाल विष्णुलाल जी पड्या [४] गसूदा के महाराज [५] महाराज नाहरसिंह जी के प्रतिनिधि आदि सम्पूर्ण सभासद् और अनेक प्रतिनिधिगण पधारे परन्तु ला० रामशरणदास रईस मेरठ नहीं आए क्योंकि इनका भी शरीर इसी वर्ष स्वामी जी से दो तीन मास पूर्व पहिले पूरा हो चुका था।

२८ दिसम्बर सन् १८८३ ई० को सभा का कार्य आरम्भ हुआ।

[१] मन्त्री ने सभा का कार्यारम्भ किया और इस सभाके स्थापित होने का यथार्थ कारण सब पर विदित कराया।

[२] श्रीयुत् स्वामी दयानन्द सरस्वती का स्वीकारपत्र पढा गया और जिन सभासदों ने सम्मति स्वरूप अपने हस्ताक्षर उक्त स्वीकारपत्र पर आगे नहीं किये थे उन्होंने इस समय यह कह के प्रकट किया कि उक्त स्वामीजी ने जो धर्म कार्यका भार हम लोगों पर रक्खा है उसे हम स्वीकार करते हैं, पर जो सभासद् विद्यमान् नहीं हैं उनके पास स्वीकारपत्रकी प्रति प्रमाण करने को भेजी जायगी।

[३] कविराज शामलदासजी ने प्रस्ताव किया और राजरणा फतहसिंह जी ने अनुमोदन किया कि मेरठ निवासी लाला रामशरणदासके मरनेसे जो सभा सद् पद खाली हुआ है उस पर जोधपुर के महाराज प्रतापसिंह जी० सी० एस० आई० नियत किये जावें सब की सम्मति से प्रस्ताव स्वीकार हुआ।

[४] रावबहादुर पण्डित सुदरलालने प्रस्ताव किया और पण्डित मोहनलाल विष्णुलाल पड्याने अनुमोदन किया कि स्वर्गवासी ला० रामशरणदासजी के स्थान पर मान्यवर रावबहादुर पडित गोपालराव हरि देशमुख परोपकारिणी सभा के मन्त्री नियत किये जावें सब की सम्मति से प्रस्ताव स्वीकार हुआ।

[५] एक पत्र इस विषय पर पढा गया कि स्वर्गवासी स्वामीजी ऋग् और यजुर्वेद भाष्य का कौन सा भाग समाप्त और असमाप्त छोड गये हैं इससे

हुआ, कि सप्तम यजुर्वेद का भाष्य तो स्वामीजी पूर्ण कर गये हैं परन्तु एक भाग मात्र उसका अब तक मुद्रित हुआ है, और ऋग्वेदका सप्तम मण्डल तक भाष्य बना है, सब की सम्मति से यह स्वीकृत हुआ कि पण्डित भीमसैन तथा जवालादत्त प्रूफ के शोधने और संस्कृत भाष्य का हिन्दी में अनुवाद करने के कार्य्य पर नियत किये जाय। और गति व्यक्ति को ४५ पैंतालीस मुद्रा मासिक वेतन मिले वैदिक यन्त्रालय जितना शीघ्र बनसके अजमेर में लाया जाय और वह इन सभासदों की सम्हाल में रहै। मसूदे के ठाकुर राव बहादुरसिंह जी। रावबहादुर पण्डित सुन्दरलाल जी। कविराज श्यामयदास जी। पण्डित मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या और आर्य्यसमाज अजमेर के प्रधान।

[६] जो द्रव्य स्वामीजी छोड़ गये है उस की यादि पण्डित मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्याने पढ़ सुनाई इससे प्रकट हुआ कि ४३००) नकद और ११०००) को शोध किये जाने के लायक लहना। रुपये ४०००) के मूल्य का यंत्रालय और विक्रयार्थ पुस्तकें ४८०००) की हैं।

[७] सब की सम्मति से स्वीकार हुआ कि पण्डित मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या सब पुस्तकें कागज और हिसाब आदि को सम्हालतें और शोध कर पीछे एक याद प्रस्तुत करे कि स्वामीजी का क्या लेना देना है। स्वामीजी के द्रव्य का जमा रखना तथा स्वीकार पत्र लिखित कार्य्यों के निमित्त द्रव्य एकत्र करना निम्न लिखित सभासदों के आधीन है। राव जी श्री बहादुरसिंह जी मसूदा। राज राणा फतहसिंह जी देलवाड़ा। कविराज श्यामलदास जी उदयपुर पण्डित मोहनलाल जी विष्णुलाल पण्ड्या उदयपुर। लाला साईं दास जी लाहौर। रावबहादुर गोपाल राव हरि देश बम्बई। राजा जय कृष्णदास सी० एस० आई० बिजनोर। बाबू दुर्गा प्रसाद जी फर्रुखाबाद। यह सभा विभाग श्रीमन्महाराजाधिराज मेवाड़ाधिपति तथा जोधपुर के महाराज प्रतापसिंह जी० सी० एस० आई० के आज्ञानुसार काम करेगी।

[८] राय बहादुर पण्डित महादेव गोविन्द रान्टे ने प्रस्ताव किया और राव बहादुर पण्डित सुन्दर लालजीने अनुमोदन किया कि सर्व आर्य्यसमाजों का परस्पर तथा परोपकारिणी सभा से भी व्यवहार बनाने के हेतु आर्य्यसमाजों के प्रतिनिधियों

की एक सभा निर्माण करनी चाहिये। जब तक यह सभा नहीं बनती तब तक आर्य्यसमाजों के जो २ प्रतिनिधि परोपकारिणी सभा में सभासद् हैं वेही आर्य्यसमाजों के प्रतिनिधि माने जायगे। जब प्रतिनिधि सभा स्थापित होजायगी तब परोपकारिणी सभा मे जो २ सभासद् पद खाली होंगे वह इस प्रतिनिधि सभा के योग्य सभासदों से इस प्रकार पूर्ण किये जायगे कि परोपकारिणी सभा के सभासदों में आधे प्रतिनिधि सभा के लोग होंगे। सब की सम्मति से प्रस्ताव स्वीकार हुआ।

[९] पंडित श्याम जी कृष्ण वर्म्मा० पी० ए० [आक्सफोर्ड] ने प्रस्ताव किया और लाला साईदासने अनुमोदन किया कि सभा के इस वृत्तान्त की एक एक प्रति सब आर्य्यसमाजों को भेजी जाने और उन से प्रार्थना की जायकि प्रतिनिधि सभा के लिये सभासद नियत करने से तथा और कोई नवीन कार्य्य हो उससे परोपकारिणी सभा को यथा शक्ति शीघ्र ज्ञात करावें। तारीख २८ दिसम्बर सन् १८८३ ई० [हस्ताक्षर, मूलराज एम० ए० उपसभापति के]

तत्पश्चात् स्वामीजी कृत पुस्तक, सधि विषय नामक कारकीय, सामासिक तद्धित, पाचों एकत्रित होकर "अष्टाध्यायी मूल" छपकर ज्येष्ट शुक्ला ६ सम्वत् १९४१ को वैदिक यंत्रालय प्रयाग से निकली और सत्यार्थप्रकाशांतर्गत स्वमतव्य प्रकाश, सन् १८८७ ई० में छपा, परन्तु स्वामीजी कृत गौतम अहिल्या की कथा" हमको अनेक यत्न करने पर भी हाथ नहीं लगी इसलिए उसकी आलोचना करनेमे वञ्चित हरकर स्वामीजी कृत केवल अन्य ३८ पुस्तकों पर निज बुद्धि अनुसार यथा योग सक्षेप रूप प्रथम भाग में लिखा गया दूसरे भाग में विस्तार सहित लिखा जायगा [ह० जीयालाल]

नामावली उन पुस्तक और समाचार पत्रों की जिन से इस "दयानन्द छल कपट दर्पण" के लिखने में सहायता मिली

[१] स्वामी दयानद सरस्वती कृत निम्न लिखित [१] आर्य्यसमाजों के नियम [२] सस्कार विधि [३] प्रथम बार का सत्यार्थप्रकाश [४] दूसरीबार का [५] तीसरी बार का [६] वेद भाष्य भूमिका [७] ऋग्वेद भाष्य [८]

यजुर्वेद भाष्य [९] मेला चांदापुर [१०] आर्योद्देश्य रत्नमाला [११] गोकरुणानिधि [१२] स्वामी नारायण मतखंडन [१३] वेदविरुद्ध मतखंडन [१४] भ्रमोच्छेदन [१५] शास्त्रार्थ काशी [१६] आर्य्याभिविनय [१७] वेदान्तिध्वान्ति निवारण [१८] पंच महा यज्ञ विधि [१९] भ्रान्ति निवारण [२०] सत्यासत्य विवेक (२१) व्यवहार भानु (२२) वाक्य प्रबोध (२३) वर्णोच्चारण (२४) सन्धि विषय (२५) नामिक (२६) कारमीय (२७) सामसिक (२८) स्त्रेणतद्धित (२९) अव्ययार्थ (३०) आख्यातिक (३१) सौवर (३२) पारिभाषिक (३३) धातुपाठ (३४) गणपाठ (३५) उणादिकोष (३६) निघण्टु (३७) अष्टाध्यायी मूल (३८) स्वमन्तव्य प्रकाश (३९) वेदाङ्गप्रकाश (४०) अनुभ्रमोच्छेदन।

(२) स्वामी जी के शिष्य पण्डित गोपाल शास्त्री फर्रुखाबाद निवासी कृत (४१) दयानन्द दिग्विजय प्रथम भाग (४२) तथा दूसरा भाग (४३) तथा तीसरा भाग।

(३) परम पूज्य जगत विख्यात कुलाम्नाय गुरु महाराज श्रीमान पण्डित शिवचन्द्र जी देहलवीकृत (४४) भ्रमान्धकार मार्तण्ड (४५) प्रश्नमालिका (४६) मूर्तिपूजा मण्डन (४७) पोपलीलाखंडन (४८) धर्मदासकृत धर्मप्रबोधनी प्रथम भाग (४९) पूज्य महाराज श्रीकृत दूसरा भाग।

(४) राजा शिवप्रसाद सी० एस० आई० रईस बनारस कृत (५०) इतिहास तिमिर नाशक तृतीय भाग (५१) प्रथम निवेदन (५२) द्वितीय अंतिम निवेदन (५३) जैन बौद्ध की भिन्नता।

(५) श्रीमान् सम्वेगी साधु आत्माराम आनन्द विजय जी कृत (५४) जैनतत्वादर्श (५५) अज्ञानतिमिर भास्कर (५६) जैनविषयक प्रश्नोत्तर (५७) सम्यक्त्वदीपिका समीर।

(६) लाला ठाकुरदास श्रावक भाभड़ा गुजरानवाल निवासी कृत (५८) दयानन्द मुख चपेटिका।

(७) श्रीयुत बाबू हरिश्चन्द्र भारतेन्दु रईस बनारस कृत (५९) दूषण मालिका (६०) चरितावली (६१) वाल्मीकीय रामायण का संवाद।

(८) पडित सत्यानन्द अग्नि होत्रि कृत (६२) दयानन्दी वेदोंमें जिना कारी की तालीम (६३) पडित दयानन्द और उनका नया पन्थ (६४) जाति की असलियत (६५) इमारा अपील (६६) दयानन्दका संन्यास (६७) दयानन्दी कनयुगी मजहब (६८) रहतनामिख।

(९) लाला जगन्नाथ भारती कृत (६९) पीपलीला (७०) धर्मोधरीक्षा (७१) स्वामी जी का कुछ जीवन चरित्र।

(१०) अन्यान्य और पुस्तकें (७२) दयानदपरीक्षा प्रथमभाग। (७३ दूसरा भाग (७४) स्वामी दयानदपराजय (७५) जगन्नाथका इस्तमास [७६ सवानह उमरी दयानन्द भाई जवाहरसिंहकृत (७७) ला० दलपतरायकृत (७८ मुन्शी कन्हैयालाल अलखधारी कृत (७९) तवारीख हिन्द (८०) रद्द बुतलान (८१) अश्रमाल आर्या (८२) दयानन्द लीला (८३) विधवा नाटक (८४) स्वामी जी की दिनचर्या (८५) असरार अल्लमथ (८६) मथी फोकिया (८७) सत्यमत आश्रय (८८) आर्यतत्वप्रकाश प्रथम व्याख्यान (८९) दूसरा (९०) तीसरा (९१) चौथा (९२) पाँचवा (९३) छठा (९४) अबोध निवारण (९५) मगवदेव पराजय (९६) मूर्तिप्रकाश (९७) महाभारत (९८) भगवद्गीता (९९) मद्रास हाईकोर्ट रिपोर्ट (१००) नियोग खंडन (१०१) निगम प्रकाश (१०२) आगमप्रकाश (१०३) मनुस्मृति (१०४) लोकरावण (१०५) सर्वदर्शन सग्रह (१०६) मूर्तिभूषण (१०७) सत्यार्थप्रकाश समीक्षा (१०८) वेदद्वार प्रकाश (१०९) दयानन्द मत मूलोच्छेद (११०) अप्रतिम प्रतिमा (१११) अभेदास्त्रद चन्द्रमाँ (११२) दयानन्द मत खडन (११३) दयानन्द मत मर्दन (११४) वेदार्थ प्रकाश (११५) अचापिका दयानन्द (११६) महा मोहविद्रावण (११७) दयानन्द पराभूत (११८) दयानन्द कटुकधार (११९) सद्धर्मदूषणोद्धार (१२०) सत्यार्थभास्कर (१२१) आर्यसमाजरहस्य (१२२) शकर दिग्विजय मूल (१२३) विवेकसार (१२४) रत्नसार (१२५) शास्त्रार्थ फीरोजाबाद (१२६) शास्त्रार्थ सहारनपुर (१२७) आर्यसमाज मेरठ का सूची पत्र (१२८) जालन्धर पुस्तकालय का सूचीपत्र (१२९) अजमेरका (१३०) लाहौर का (१३१) फर्रुखाबाद का (१३२) इलाहाबाद का, जिन समाचारपत्रों

से लेख लिया उनकी नामावली (१३३) मित्रविलास (१३४) उचितवक्ता (१३५) सार सुधानिधि (१३६) क्षत्रिय पत्रिका (१३७) धर्म्म जीवन (१३८) भारतेन्दु (१३९) आर्यावर्त (१४०) आर्यगजट (१४१) आर्यपत्रिका (१४२) आर्य समाचार (१४३) आर्य सिद्धान्त (१४४) आर्यदर्पण (१४५) आफताब पजाब (१४६) देशहितैषी (१४७) भारतमित्र (१४८) अखबार आम (१४९) भारतदशाप्रवर्तक (१५०) शमशेरबहादुर (१५१) ज्ञान प्रदायिनी।

आर्यसमाजो की शीघ्रोन्नति का क्या कारण है ?

इस हमारे आर्य्यावर्त देशमे सरकारी मदरसोके प्रचारसे पहिले यह मर्यादा थी कि ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र, मुसलमान सब अपने अपने बालकों को जब विद्या पढने के लिये गुरु के पास भेजते थे तो वे बालक अपने अपने विद्यादाताओं के पास जाते ही प्रथम निज जाति भेदानुसार, नमस्कार, दण्डवत, प्रणाम, सलाम बन्दगी का उच्चारण करते थे, तत्पश्चात् उन गुरुजी की आज्ञानुसार (जिनका नाम ऋषि, आचार्य्य, उपाध्याय, पडित, मिश्र, व मौलवी प्रसिद्ध होता था) एक नियत स्थानपर बैठकर विद्याध्ययन करते थे, तब प्रथम ही आरम्भ के समय ब्राह्मण, क्षत्री, वा, वैश्य के पुत्र को श्री गणेशायनम । परमात्मायनम । ॐनम । शिवायनम इत्यादि, और जैनी के बालक को ॐनम सिद्धेभ्य । गोविन्दायनम मुसलमान के बालकों को मौलवी लोग बिसमिल्लाह रहमानुलरहीम । उच्चारण कराया करते थे । और विद्या गुरु उस समय के बहुधा विचारे निर्धन पुरुष होते थे जो अपने सामान्य स्थानपरही विद्यार्थियो को पढाया करते थे, अब के मुदरिसो की तरह चटक मटक मे रहने और स्वच्छ सुन्दर स्थान पर विद्या पढाने की उनको सामर्थ नहीं थी, जैसा कपडा घर के घर पर हुआ वैसाही पहन कर टूट फूटे स्थानपर बैठे रहते थे, और जो बालक उन के पास पढने को आता उसको [चाहे कैसे ही धनाढ्यका पुत्र क्यो न हो] अपने से नीची बैठक पर बिठाते थे, हां जो बालक किसी निर्धन का होता उस के और धनाढ्य के बालक में अंतर अवश्य करते थे, इसका यह प्रभाव होता था कि बालक को प्रथम दिन से ही अपने धर्म

कुलाम्नाय के ज्ञान का लाभ होकर यह भी मालूम हो जाता था कि विद्या धन होने से गुरु जी की निर्धनता भी किसी कार्य्य में विघ्नकारी नहीं, इससे वि हुआकि विद्याधन भी एक परम धन है, और जब उनको नित नित अपने इष्टदे का नाम स्मरण करना पड़ता था तो उसका भी यही फल होता था कि शनै शनै उनको निज धर्म्म पर पूरा पूरा विश्वास उत्पन्न हो जाता था, परंतु जब से सरका अंग्रेजी ने मदर्से प्रचलित किये हैं, उनके मास्टर लोगों में जाति भेद का तो हु विचार ही नहीं किंतु स्थान शाला भी अति रमणीक होती है, पुस्तक जो पढ़ा जाती है उनकी आदि में ॐ, वा, श्री गणेशायनम. वा परमात्मायनम ॐनम सिद्धं भ्य वा बिसमिल्लाह रहमानुन रहीम आदि कुछ भी नहीं होता, फिर विद्वान विचा करें ऐसे बालकों को कुलाम्नाय धर्म्म की क्योंकर खबर होसक्ती है, बस जो बालक इस प्रकार विद्या पढ़ते हैं वे साधारण परीक्षा मेंही उत्तीर्ण होकर जब अंग्रेजों के चाल चलन को देखते हैं तो बहुधा उनका मस्तक सांसारिक ऊपरी सम्बन्धों से शुद्ध होकर पृथक् होने लगता है और प्राचीन कुलमर्य्यादा को वे घृणित दृष्टि से देखते हैं, धर्म्मोपदेश उनका न तो माता पिता की ओर से मिलता है और न सर कारी पाठशाला कहिये मदर्से में। और यदि घर में वे कभी कुछ सुनते भी हैं तो केवल इतना ही सुनते हैं कि चोटी रखना यज्ञोपवीत धारण करना हिंदू मात्र का परम धर्म है चौके में बैठकर रसोई खाना चाहिये, किसी मुसलमान या ईसाई का स्पर्श किया भोजन नहीं खाना चाहिए, उनके हाथ का पानी पीने से धर्म्म नष्ट हो जाता है इसके व्यतिरिक्त कभी भी उनके कान में कुछ नहीं पड़ता कि पूर्वोक्त रुकावटों का कारण भी कुछ है या नहीं, और विद्यापढ़ने के समय वह देखते हैं कि चारों ओर से स्वतंत्रता की ही भनक कानों में पड़ती है, और मनुष्य पूर्वोक्त रुकावटों से छूट कर स्वतंत्र होते चले जारहे हैं, और यह स्वतंत्रता उन को साक्षा रिक विशेष लाभ उत्पन्न कर रही है, बस ऐसी स्वतंत्रता को देखकर मन विचरा और भाविक स्वतन्त्रता का अभिलाषी होता है, इस समय तक इन में कोई आत्मिक पदार्थ भी कोई ध्यान देने वा विचारने लायक वस्तु है, बस ऐसे समय उनको एक नये समाज की आवश्यकता होती है, न कि धर्म्म की। पुरानी मर्य्यादा वा सभा समाजों को वे घृणा दृष्टि से देखते हैं, परंतु इतनी बुद्धि सैद्धर्य्य बल वा सामर्थ

नहीं होती कि यह प्रचलित सम्पूर्ण मर्यादाओं से निकल कर स्वतन्त्र हो जाय। आर्य्यसमाज केवल ऐसे ही मनुष्यों के लिए बनाई गई है, और यदि उसके संगठन के गुप्त अभिप्राय को देखा जाय तो इन में बहुधा देशोपकार के प्रेमी दृष्टि पड़ते हैं, व्यवहार के समय आर्य्यसमाज के सभाराजगण जाति भेद के बुरा बतलाने में इतना अलापते हैं कि सभा का स्थान भी गूंजने लगता है, विधवा विवाह ब्राह्मणों की दक्षिणा, विवाहों में व्यर्थ व्यय इत्यादिक विषयों पर अपना इतना आदर बता दिखाते हैं कि माताओं की भी छाती धड़कने लगती है, परन्तु जब तदनुसार बर्ताव करने का समय निकट आता है, तो इक बड़ा महाशय ही सब से पीछे हटे दृष्टि आते हैं, सहस्रों बालविधवा आर्य्यसमाजियों के घरों में बैठी हैं, नित्य प्रति नवीन बाल विवाह होते हैं सहस्रों रुपए विवाहों में व्यय किए जाते हैं, परन्तु उस समय बड़ा महाशय निश्चिन्ती से हाथ चुप बैठे रहते हैं, इतनी सामर्थ नहीं रखते कि निज वचनानुसार स्वत ही कुछ कर दिखावें इस कर्तव्य से आर्य्य समाजने देश का आत्मिक विनाश ही नहीं किया किंतु उसकी स्वतन्त्रता को भी रोक दिया है, और महात्माओं की ईश्वरी शक्ति के मार्ग रोकने वाले बन गए हैं, यदि विचार दृष्टि से देखा जाय तो आर्य्यसमाज के सभासद् सांसारिक प्रचलित मर्यादा * पर ही चल रहे हैं, परन्तु उनकी इतनी सामर्थ नहीं कि अपने गुप्त भेद का प्रकट रूप से प्रचार कर सकें, अधिक नहीं तो केवल छूत छात ही पर स्वतन्त्रता फैलावें। मैंने आर्य समाज के सभासदों को कहते सुना कि छूत छात कोई वस्तु नहीं है, जाति भेद, कर्मानुसार है, अर्थात जो मनुष्य जैसा काम करता है उसी नाम से पुकारा जाता है। यह लोग उसी आडम्बर बनाये रखते हैं और अपने आपको त्यागी समझते हैं, किन्तु इनमें कोई कोई ऐसे हैं जो अभी होटल से भोजन गटककर बाहर आते हैं, तो शपथ करने पर उसका ओर नट जाने पर तैयार रहते हैं। एक दूसरा कारण यह भी मनुष्यों के आर्यसमाज में भरती होजाने का है कि हिंदू लोगों का वेदों पर बहुत बड़ा विश्वास है, और अधिक काम चला आता है, यदि इस समय देखा जावे तो सहस्र मनुष्यों में से कठिनता पूर्वक एक ऐसा निकलेगा जिसने चारों वेदों को पढ़ना तो क्या चारों पुस्तकों को आंखों से देखा भी न, अपनी निपटरी को

* जिस को वे अपने व्याख्यानों में बुरा बताते हैं।

धोका देने के लिये और विवाहादि शुभ कार्यों मे उनके साथी बने रहने के लिये इतना कह देना ही बहुत समझते हैं, कि हमारे धर्म ग्रन्थ वेद हैं और उन पर ही हमारा विश्वास है, इतना कहने पर बिरादरी के लोग चुप हो जाते हैं, परन्तु जब उन लोगो से पूछा जाय कि भाई वेद क्या वस्तु है ? उसमें क्या लिखा है ? क्या तुमने उस पुस्तकको कभी देखा भी है ? तो इसके अतिरिक्त और कुछ उत्तर नहीं देते कि हमारे पुरुषा भी इनको ही माना करते थे हमने सुना है कि वेद सब सत्य विद्याओं के पुस्तक हैं और बहुधा मायाचारी यह कहने को भी उद्यमी होते हैं कि हमको इससे क्या प्रयोजन कि वेदों में क्या लिखा है, हमको तो सत्य प्रिय है, कहीं से मिले समाज में केवल देशोपकार सत्य शीलता के लिये मिले हैं। यदि आर्यसमाजी गण अपना काम देशोपकार करना सत्य शील फैलाना आत्मिक गुण की व्याख्या आदि यही मुख्य रखते तो किसी को उन पर तर्क करने का अवसर नहीं मिलता, परन्तु खेद है कि इस समाज की उन्नति से आत्मद्रव्यका कोष बिना रक्षा के लुटा जाता है, हमारे नवीन उत्साही युवा पुरुषो को [जिन पर हमारे देश के सुधार की आशा निर्भर है] सत्य सतोषादि शुभ गुणोंसे हटाकर सामर्थ्यवानों को असमर्थ बनाया जाता है, और वे लोग जाति भेद को दृढ़ समझ कर भी उससे छुटकारा पानेको असमर्थ होते हैं, बसऐसे मनुष्यों के लिये आर्यसमाज का होना उनके परम सौभाग्य का फल है, यदि यह आर्यसमाज न होती तो वे मनुष्य शीघ्रता पूर्वक उन लोगोंसे जा मिलते जिनके लिये पादरी लोग लाखों रुपये बरबाद करके भी सफलता प्राप्त नहीं करते। बस तात्पर्य इस लिखने का यही है कि आर्यसमाजों ने हमारे सहस्रो पढे लिखे सुख जनों को ईसाई होने से बचाया इस लिये हम उसके प्रचारक का धन्यवाद करते हैं, और जो माता पिता अपने बालकों को आत्मिक अभ्यास कुलाम्नाय धर्म से वञ्चित रख कर प्रथम दिवस से ही सरकारी मदरसों में यावनी भाषा पढाते हैं वे अपने सत्य सनातनधर्म का नाश कर अत को उसका हानिकारक फल प्राप्त करते हैं।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने क्या क्या किया ?

॥ छप्पैछन्द ॥

वैदिकधर्म निवार पाप पाखंड बढायो।
निन्दे मूर्ति पुराण अर्थ पलटो मनभायो॥
विधवाविवाह कराय पुरातन रीति नशाई।
वर्ण भेद निर्वार नमस्ते करो कराई॥
तेली चमार कोरी सुई* लघु जातन आरज करो।
धर्म्म कर्म्म सति पुण्य की मूल काढि अब सचरो॥

स्वामी जी निज रचित पुस्तकों में जो कुछ लिख गये उसका भावार्थ यही है कि शंकराचार्य से आदि ले के सर्व सम्प्रदायिक आचार्यों का धर्म मिथ्या है, कबीर, दादू, रामस्नेही, गुरु नानक, मुहम्मद, ईशा, मूसा इत्यादि पैगम्बर सब का मत मिथ्या है, सब के ग्रन्थ मिथ्या है, तीर्थयात्रा नहीं करना, गंगा, यमुना, पुष्कर गया, काशी, प्रयाग इत्यादि सब तीर्थ मिथ्या हैं, माता पिता आदि पूर्वजोंका श्राद्ध अर्थात् पिंडदान, तर्पण, पितृदेवता के निमित्त कुछ दान पुण्य, देवताकी पूजा तथा मूर्तिपूजन विवाहादिक में, शीतला देवी, कूल देवी, भैरव, गणपति आदिक देवता की पूजा, एकादशी आदि जितने व्रत उपवास है ये सर्व मिथ्या हैं, सूर्य, चन्द्र, ग्रहण में स्नान दान करना मिथ्या है, मुसलमान, अंग्रेज इत्यादिकों को हिंदू करना अच्छा है, सब जाति वालों का एकत्र भोजन करना अच्छा है, आचार विचार चौका पवित्रता जातिभेद सब मिथ्या है, सब जातिकी लड़कीसे विवाह करो १ स्त्री को ११ पति करो, विधवा पृथ्वीपर रहने नहींपावे, ११ रसम और ४४ सन्तान एक स्त्रीके वास्ते चाहिये, ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यादिक सब जातिकी स्त्रियोंको ग्यारह रसम करना, पति परदेश जावे तब घरकी स्त्रीके वास्ते एक पुरुषको अपने घर रख जावे, वह पुरुष उस स्त्री से पुत्रादिक पैदा करता रहे, जब उस स्त्री का पति आ जावे तब उस दूसरे रसम को घर से निकाल देवे, अपनी स्त्री को और

* भंगी व चुहटा मेहतर।

धोका देने के लिये और विवाहादि शुभ कार्यों मे उनके साथी बने रहने के लिये इतना कह देना ही बहुत समझते हैं, कि हमारे धर्म ग्रन्थ वेद हैं और उन पर ही हमारा विश्वास है, इतना कहने पर बिरादरी के लोग चुप हो जाते हैं, परन्तु जब उन लोगों से पूछा जाय कि भाई वेद क्या वस्तु है ? उसमे क्या लिखा है ? क्या तुमने उस पुस्तकको कभी देखा भी है ? तो इसके अतिरिक्त और कुछ उत्तर नहीं देते कि हमारे पुरुषा भी इनको ही माना करते थे हमने सुना है कि वेद सब सत्य विद्याओं के पुस्तक हैं और बहुधा मायाचारी यह कहने को भी उद्यमी होते हैं कि हमको इससे क्या प्रयोजन कि वेदों मे क्या लिखा है, हमको तो सत्य प्रिय है, कहीं से मिले समाज में केवल देशोपकार सरल शीलता के लिये मिले हैं। यदि आर्यसमाजी गण अपना काम देशोपकार करना सत्य शील फैलाना आत्मिक गुण की व्याख्या आदि यही मुख्य रखते तो किसी को उन पर तर्क करने का अवसर नहीं मिलता, परन्तु खेद है कि इस समाज की उन्नति से आत्मद्रव्यका कोष बिना रक्षा के लुटा जाता है; हमारे नवीन उत्साही युवा पुरुषों को [जिन पर हमारे देश के सुधार की आशा निर्भर है] सत्य संतोषादि शुभ गुणोंसे हटाकर सामर्थ्यवानों को असमर्थ बनाया जाता है, और वे लोग जाति भेद को बुरा समझ कर भी उससे छुटकारा पानेको असमर्थ होते हैं, बसऐसे मनुष्यों के लिये आर्यसमाज का होना उनके परम सौभाग्य का फल है, यदि यह आर्यसमाज न होती तो ये मनुष्य शीघ्रता पूर्वक उन लोगोंसे जा मिलते जिनके लिये पादरी लोग लाखों रुपये बरबाद करके भी सफलता प्राप्त नहीं करते। बस तात्पर्य इस लिखने का यही है कि आर्यसमाजों ने हमारे सहस्रों पढे लिखे सुख जनों को ईसाई होने से बचाया इस लिये हम उसके प्रचारक का धन्यवाद करते हैं, और जो माता पिता अपने बालकों को आत्मिक अभ्यास कुलाम्नाय धर्म से वञ्चित रख कर प्रथम दिवस से ही सरकारी मदरसों में याविनी भाषा पढाते हैं वे अपने सत्य सनातनधर्म का नाश कर अन्त को उसका हानिकारक फल प्राप्त करते हैं।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने क्या क्या किया ?

॥ छप्पैछन्द ॥

वैदिकधर्म निवार पाप पाखंड बढ़ायो।
निन्दे मूर्ति पुराण अर्थ पल्टो मनभायो॥
विधवाविवाह कराय पुरातन रीति नशाई।
वर्ण भेद निर्वार नमस्ते करी कराई॥
तेली चमार कोरी सुईं* लघु जातन आरज करो।
धर्म्म कर्म्म मति पुण्य की मूल काढि अघ संचरो॥

स्वामी जी निज रचित पुस्तकों में जो कुछ लिख गये उसका भावार्थ यही है कि शंकराचार्य से आदि ले के सर्व सम्प्रदायिक आचार्यों का धर्म मिथ्या है, कबीर, दादू, रामस्नेही, गुरु नानक, मुहम्मद, ईशा, मूसा इत्यादि पैगम्बर सब का मत मिथ्या है, सब के ग्रन्थ मिथ्या है, तीर्थयात्रा नहा करना, गंगा, यमुना, पुष्कर गया, काशी, प्रयाग इत्यादि सब तीर्थ मिथ्या है, माता पिता आदि पूर्वजोंका श्राद्ध अर्थात् पिंडदान, तर्पण, पितृदेवता के निमित्त कुछ दान पुण्य, देवताकी पूजा तथा मूर्तिपूजन विवाहादिक में, शीतला देवी, दुर्गा देवी, भैरव, गणपति आदिक देवता की पूजा, एकादशी आदि जितने व्रत उपवास हैं ये सर्व मिथ्या हैं, सूर्य्य, चन्द्र, ग्रहण में स्नान दान करना मिथ्या है, मुसलमान, अंग्रेज इत्यादिकों को हिंदू करना अच्छा है, सब जाति वालों का एकत्र भोजन करना अच्छा है, आचार विचार चौका पवित्रता जातिभेद सब मिथ्या है, सब जातिकी लड़कीसे विवाह करो १ स्त्री को ११ पति करो, विधवा पृथ्वीपर रहने नहींपावे, ११ खसम और ४८ सन्तान एक स्त्रीके वास्ते चाहिये, ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यादिक सब जातिकी स्त्रियोंको ग्यारह खसम करना, पति परदेश जावे तब घरकी स्त्रीके वास्ते एक पुरुषको अपने घर रख जावे, वह पुरुष उस स्त्री में पुत्रादिक पैदा करता रहे, जब उस स्त्री का पति आ जावे तब उस दूसरे खसम को घर से विदा कर देवे, अपनी स्त्री को और

* भंगी व चुहड़ा मेहतर।

लटके नच्चो खो तो लेवो, सब जाति वाले वेद पढ़ते रहो, किन्तु शूद्र और स्त्री भी वेद पढ़े, स्नान, दान, व्रत, तीर्थ आदि कुछ मत करो, दिया हुआ दान उलटा माग लो, पचयज्ञ करो, सन्ध्या सेवन करो अग्नि में होम करो, सो भी स्वा० दयानन्द सरस्वती जैसे कहे वैसे करो, साधु ब्राह्मण गुरु को दान मत करो, सन्यासी को द्रव्य विशेष देते रहो, सन्यासी भी और मत का न होना चाहिये, आर्यसमाज ही के सन्यासी को धन देवे और को नहीं, गौदान, अन्नदान, वस्त्रदान, अन्नदान इत्यादि कुछ भी न करो, जो कुछ देना हो सो आर्यसमाज के वास्ते दो, पति आप ही अपने जीते जागते में अपनी स्त्री को दूसरे पुरुषके साथ मैथुन करानेकी आज्ञा देवे और पुत्रादिक पैदा कराये, स्त्री को घर में रक्खे अपने सामने दूसर पुरुष से अपनी स्त्री को मैथुन कराने से सन्तान पैदा करने में वेद का प्रमाण भी स्वामी दयानन्द सरस्वती ने लिख दिया है, परन्तु वह मिथ्या और मनोकल्पित है, विष्णु, शिव आदि देवताओं की पूजा नहीं करना, पुराण भगवद्गीता भागवत इत्यादि सब ग्रन्थ मिथ्या हैं, स्वामी जी के मतवाले का ग्रन्थ हो उसमें भी उलटा मिथ्या अर्थ करा हो, वह सत्य है, जिस ग्रन्थ में स्वामी जी का मतलब बिगड़ता हो वह ग्रन्थ स्वामी जी नहीं मानते हैं, और जिस ग्रन्थ को स्वामी जी मानते हैं उसी ग्रन्थ में कहीं मूर्तिपूजा तीर्थ श्राद्ध इत्यादि विधि मिल जावे तो कहते हैं इस ग्रन्थमें इतना भाग क्षेपक है इसको हम नहीं मानते, और सत्यार्थप्रकाश में प्रथम तो स्वामी जी लिखते हैं कि वेद में ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, सम्पूर्ण वेद में ब्रह्म का निरूपण है, इस मानते रुद्र, वरुण, अग्नि, शिव इत्यादि पदोंका अर्थ ब्रह्मपरत्व लिखा है, इन्द्र वरुणादिक शब्द ब्रह्म केही नाम हैं, किसी देवता के नाम नहीं ऐसा लिखते लिखते फिर तो वेद में से अनेक तरह से ब्रह्म का निरूपण लिख दिया, यहाँ तक लिखा कि वेद में तार, रेल, जहाज, तोप, बन्दूक इत्यादि सब लिखे हैं, यह स्वामी जी के मत की बातें जितनी हमने लिखी हैं, यदि स्वामी जी कुछ काल और जीते रहते तो वेदमन्त्रों से हुण्डी मनीआर्डर वेल्यूपेबिल पुलजी घर बर्फ की कल केरोसिन तैल इत्यादिक भी सिद्ध कर देते, और यही नहीं कि उक्त स्वामीजी ने केवल ब्राह्मणों ही को बुरा बतलाया, किंतु सत्यार्थप्रकाश द्वादश समुल्लास में जैनी लोगों को भी मनमानी गाली प्रदान की हैं, जैसे जैनियों का मत बहुत पुराना

नहीं है, जैसा वे मानते हैं क्योंकि महाभारत और वाल्मीकीय रामायण में उनका कुछ वर्णन नहीं है, मूर्तिपूजा जैनी लोगों ने अपनी मूर्खता से चलाई है, उनके ग्रन्थों के पुनरुक्त दोष अधिक हैं, इसी लिये वे उनको छिपाये रखते हैं, उनके साधु महा भ्रष्ट मलीन होते हैं, स्नान तक नहीं करते वस्त्र साफ नहीं करते, दीपक तक नहीं जलाते, दूसरे धर्म का कोई विद्वान आवे उसका आदर सत्कार नहीं करते, इनके अनेक मायाजाल हैं, इत्यादिक बहुत कुछ लिख कर यह सिद्ध किया कि जैनबौद्ध एक हैं, परन्तु यह लिखना स्वामी जी का सर्वथा झूठ है, जो महाशय पक्षपात छोड़ कर पुस्तक "स्वामी दयानन्द का कपट दर्पण" को देखेगा वह सब वास्तव को भले प्रकार जान लेगा ॥ अलम् ॥

॥ स्वामी दयानन्द सरस्वती पर हमारा विचार ॥

निर्दोषेनैव संसारे ईश्वरेणान्तरात्मना ।

(१) स्वामी दयानन्द सरस्वती कौन थे ? किस नगर कुल गोत्र में उनका जन्म हुआ ? इस विषय में जो कुछ हमने लिखा वह दूसरों के आधार से है, जो जो प्रमाण मिले उनसे यही सिद्ध होता है कि अवश्य स्वामी जी ब्राह्मण नहीं थे किन्तु कायस्थ ही थे क्योंकि निम्न लिखित दृढ प्रमाणों से पुन पुन यही सिद्ध होता है । देखो ।

[क] स्वामी जी को अपने स्वरूप परम हंस परिव्राजकाचार्य कहलाना अधिक प्रिय था परन्तु हम कहते हैं कि निम्न लिखित कारणों से यह परम हंस नहीं थे ।

(१) परम हंस को धन रखना व छूना तक उचित नहीं वे रखते थे ।

(२) परम हंस को मधुकरी भिक्षा ग्रहण करनी उचित है, स्वामी जी रसोईदार से भोजन बनवा कर खाते थे ।

(३) परम हंस सवारी पर नहीं चढते स्वामी जी चढते थे ।

(४) परम हंस केवल शीत निवारण वस्त्र और नग्न भाव रहते हैं स्वामी

जी रशमी कलावतूनी आदि चोगा कोट शाल दुशाले रखत और जूता भी पहिना करते थे ।

(५) स्वामी जी के शिष्यों में पूर्वोक्त गुण वाला कोईभी परम हंस नहीं था इस लिये स्वामी जी किसी परम हंस के गुरु भी नहीं थे जो परिव्राजकाचार्य समझे जाते ।

[ख] अपने सजातियों के चाल चलन और विरुद्धाचरण की तो सब कोई बुराई कर सकता है, परन्तु यह कहीं भी देखने व सुनने में नहीं आया कि ब्राह्मण कुल का जन्मा प्राणी ब्राह्मणों को ही बुरा कहे, स्वामी जी ब्राह्मणों को पोप पाखंडी भट्टाचार्य आदि नामों से उच्चारण करते थे बस इससे यही सिद्ध होता है कि वे महाराज स्वत जाति के ब्राह्मण नहीं थे ।

[ग] अपने पुत्रों को स्त्री के सदृश बना कर नचाना और उसमें धर्म मानना यह महा मूर्ख व स्वार्थी पुरुषों का काम है, और कापडी लोग मन्दिरों में लडके नचाने तथा राम मण्डल करने में बहुत बडा पुण्य समझते हैं, स्वामीजी ने निज पुस्तक "सत्यार्थप्रकाश" में जहां भारत के सम्पूर्ण मत मतान्तरों को वेद विरुद्ध और बुरा बतलाया है वहां इस विषय को जान बूझकर छोड दिया हां नवीन "सत्यार्थप्रकाश" पृष्ठ ३५२ पंक्ति २२ पर रामलीला और रास मंडल देखने में पुजारी लोगों को बुरा अवश्य कह दिया हम पूछते हैं ? क्या रामलीला में राम लक्ष्मण जानकी जी भी राम मंडल के राधाकृष्ण के सदृश नाचते हैं ? जो रासमंडल और रामलीला को एकसा समझा ? स्वामीजी अपराध क्षमा हो हमको तो इससे यही सिद्ध होता है कि आपने अपनी बाल लीला याद करके यहां रासमंडल की यथार्थ बुराई नहीं की ।

(घ) प्रमाण के होते हुए तदनुसार स्वीकार करना प्रचलित व्यवहार है इस लिये जब तक पूर्वोक्त लेखों के प्रतिकूल कोई प्रबल प्रमाण न हो तो वह स्वीकृत नहीं होसक्ता किसी विषय के प्रमाण सहित विद्यमान होते हुये उसके प्रतिकूल कहना उस समय तक व्यर्थ समझा जाता है जब तक कोई प्रबल और दृढ प्रमाण न दिया जाय । इस लिये पूर्वोक्त अनेक प्रमाणों से यही सिद्ध है कि स्वामीजी ब्राह्मण नहीं थे ।

(२) बहुधा मनुष्यों का यह भी विश्वास है कि स्वामी जी को ईसाइयों की तरफ से सहायता मिलती थी और वे गुप्त पने देश को ईसाई करने पर तत्पर थे। सो यह सर्वथा भूल है स्वामीजी का तो मुख्य उद्देश्य आर्य्य लोगों की उन्नति करने का ही था जो खेद है कि पूरा करने से पहिले ही मर गये, यद्यपि अनेक मनुष्य ऐसा भी समझ रहे हैं कि स्वामीजी को डाक्टर की औषधि ने मारडाला इसके सत्यासत्य को तो परमात्मा जाने पर इतना हम अवश्य कहेंगे कि स्वामी जी ने पूर्ण विद्वान् होकर निज धर्म्म विरोधी के हाथ से दवाई ग्रहण करने में बहुत बड़ी भूल की थी। और देखो न्याय में कहा है। ॥ श्लोक ॥

यज्जीव्यते क्षणमपि प्रथितं मनुष्यै
र्विज्ञानविक्रमयशोभिरभज्यमानम् ॥
तन्नाम जीवितमिह प्रवदन्ति तज्ज्ञाः
काकोपि जीवति चिराय बलिं च भुङ्क्ते ॥१॥

(अर्थ) ज्ञान पराक्रम और यश में कलङ्क न लगते, जगत् में प्रख्यात् होकर जो क्षण भर भी मनुष्य जीते हैं उसका नामजीना है, नहीं तो कौव्वा (कागला) बहुत दिनों तक जीता है, और अपना पेट भी भरता है। तथा। ॥ श्लोक ॥

तज्जन्म तानि कर्माणि तदायुस्तन्मनोवचा।
येनैव सर्वभूतानामुपकारः प्रजायते ॥ १ ॥

(अर्थ) वही जन्म है कि जिससे जीवों का उपकार हो वही कर्म है जिससे सब जीवों का उपकार हो बड़ी आयु है जिससे सब जीवों का उपकार हो वही मन है जिससे सब जीवों का उपकार हो वही वाणी है जिससे सब जीवों का उपकार हो। इससे यह सिद्ध होता है कि उपकारी पुरुषों का ससार में थोड़ासा रहना भी बहुत है।

(३) स्वामीजी की पुस्तक रचना और अन्यान्य लेख देखने से यह सिद्ध होता है कि जन्म काल से लेकर मरण समय तक स्वामीजी का किसी धर्म्म पर भी विश्वास नहीं था, किन्तु वेदों का नाम लेकर भी वे उनके पूरे २ विश्वासी नहीं थे। यह सत्य है, परन्तु जिस अभिप्राय से स्वामी जी ने अपने आप को किसी एक

धर्मका दासनहीं बनाया उसका तात्पर्य इतना ही था कि यदि वे किसी एक धर्मके विश्वासी होकर पक्षपाती हो जाते तो फिर स्वामीजी सर्वप्रिय न होते ।

(४) अग्रसर वा सुधारक सदैव प्राचीन भावुक सभ्यों में निंद्य और परिभव पात्र होते हैं, परन्तु प्रशंसा उसकी होती है जो अपने उद्देश्य से नहीं हटता यह बात स्वामीजी में बहुत अच्छी थी ।

(५) स्वामीजी के दो उद्देश्य मुख्य थे ऐसा उनकी ग्रन्थ रचना और वक्तृताओं के देखने सुनने से सिद्ध है, (प्रथम तो) यही था कि प्रति दिन जो सामयिक राज विधा वा स्वातंत्र्याधिक्य से धर्म्म परतंत्र लोग विधर्मी सहज होते थे और अपने (आर्य्यों के) मूल का उच्छेद करते थे उसको रोकना और उसी का सेचन उन्हीं से कराना ।

हमारे जानते यह उद्देश्य स्वामीजी का उत्तम था और इसमें वे बहुत अंश से कृतकृत्य हुये ।

(दूसरा) उद्देश्य सर्व साधारण सुखकारी जो स्वातंत्र्य वह दिन दिन स्वविद्याहीन होने से हम लोगों का पूरा २ जाता रहा उसको अपने मूल प्रतिपाद्य सर्व सम्मति युक्ति से ऐक्य द्वारा पुनः स्वाधीन वा शिक्षित कराना ।

यह भी उत्तम उद्देश्य था परन्तु इसकी सिद्धि जैसी होनी चाहिये थी न हुई और एक नया पथ प्राचीन द्वार के बदले खड़ा हुआ यह दोष स्वामी दयानन्द सरस्वती का नहीं किंतु उनकी अल्पायु का है ।

(६) स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अंग्रेजी शिक्षित लोगों को जो विद्वेष पाते ही बहुधा क्रियनावा नास्तिक होकर बह जाते थे * उन्हें रोका । धन्य है उस पुरुष को जिसने अपना सर्वस्व सांसारिक स्वार्थ छोड़ कर अनेक विधि लोगों की निन्दा का निशाना बन अतत इस सत्कार्य में अपना देह तक समर्पण किया ।

(७) कुछ अधिक लोगों ने एक महारमणीय स्थान देख (जहां के पक्षी गण अत्यन्त भोले हैं) कुछ मिष्ट जल और चारा डाल चारो तरफ जाल फैला दिया

* इसका तात्पर्य ऊपर आर्य्यसमाजों की अधोगति का क्या कारण है इस लेख में आगया है, ।

तब बिचारे भूखे प्यासे भोले भाले पक्षी गण निर्भय हो वहां चुगने को आये और झुण्ड के झुण्ड नित्य बास बसेरे का तथा और सर्व प्रकार का ध्यान भूल आनन्द पूर्वक किलोल करने लगे, तब अधिक लोगों ने अवसर को उत्तम जान जाल खेंच उनके पकड़ने का विचार किया ही था कि किसी नवीन मनुष्य ने शीघ्रता पूर्वक वहाँ पहुँच कर पक्षियों के झुण्ड में एक पत्थर फेंक मारा जिससे कितने ही तो उसी समय प्राण रहित हो गये, और कितने ही घायल हो कुछ काल पीछे अच्छे हुये, परन्तु पत्थर फेंकने वाले को अत्यन्त ही बुरा समझे, किंतु जब कुछ समय पीछे अधिक लोगों का जाल फैलाना उन पर प्रकट हुआ तो मुक्त कंठ से पत्थर फेंकने वाले को धन्यवाद देने लगे।

इस लिखने का सारांश यह है कि वह रमणीय स्थान तो यह भारत वर्ष है, इसमें पादरी ईसाई लोगों ने सम्पूर्ण प्रजा को एक रंग में रंगने और अपने शुद्ध सनातन धर्म्म से च्युत करने के लिये (मिशनस्कूलों का प्रचार रूपी) जाल फैलाया था और वह समय निकट आगया था कि सबको ईसाई बनावें, बस स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपना उपदेश रूपी पत्थर फेंक सब को उस जाल से बचादिया, यह उस का बहुत बड़ा उपकार भारत वासियों पर हुआ है, और यद्यपि कोई २ मूर्ख पत्थर तले दबकर मरा अथवा घायल हुआ वह केवल वही पुरुष है जो दयानन्द के गूढ आशय को न समझ अपने सत्य सनातनधर्म्म का त्यागी या द्वेषी होगया, परन्तु जो लोग स्वामीजी के मुख से अपने धर्म्म की निन्दा रूपी पत्थर का शब्द सुन सचेत होगये उनको स्वामीजी का शुद्ध अन्तःकरण से धन्यवाद करना उचित है, और इसी आशय को मुख्य रख हम अच्छी तरह कह सकते हैं कि यद्यपि हम स्वामी दयानन्द सरस्वती को कोई ऋषि मुनि देवता वा अवतार नहीं मानते, जैसा कि उनके अनुयायी कहते हैं, तथापि उनके शान्ति होने का खेद चाहे हम निन्दक ही क्यों न समझे जाय, हमें उन अनुयायियों से अधिक है, क्यों कि स्वामीजी के आशय को जैसा हम जानते हैं उनके अनुयायियों ने नहीं जाना, अब हम सर्व आर्य्यसमाजी भाईयों से सविनय प्रार्थना करते हैं कि निश्चय जो मनुष्य अपने में दोष और दूसरे में गुण देखता है वही सर्व प्रिय होता है

यदि हम से इस समेद में कोई अनुचित शब्द लिखा गया हो तो सज्जन क्षमा करेंगे ।

इति ज्योतिषरत्न पंडित जीयालाल जी रचित दयानन्द छल कपट दर्पण प्रथम भाग का उत्तरार्द्ध सम्पूर्णम् ।



तब बिचारे भूखे प्यासे भोले भाले पक्षी गण निर्भय हो वहां चुगने का आये और झुण्ड के झुण्ड निज धाम बसेरे का तथा और सर्व प्रकार का ध्यान भूल आनन्द पूर्वक किलोल करने लगे, तब अधिक लोगों ने अवसर को उत्तम जान जाल खेंच उनके पकड़ने का विचार किया ही था कि किसी नवीन मनुष्य ने शीघ्रता पूर्वक वहाँ पहुँच कर चिड़िया के झुण्ड में एक पत्थर फेंक मारा जिससे कितने ही तो उसी समय प्राण रहित हो गये, और कितने ही घायल हो कुछ काल पीछे अच्छे हुये, परन्तु पत्थर फेंकने वाले को अत्यन्त ही बुरा समझे, किंतु जब कुछ समय पीछे अधिक लोगों का जाल फैलाना उन पर प्रकट हुआ तो मुक्त कंठ से पत्थर फेंकने वाले को धन्यवाद देने लगे।

इस लिखने का सारांश यह है कि यह रमणीय स्थान तो यह भारत वर्ष है, इसमें पादरी ईसाई लोगों ने सम्पूर्ण प्रजा को एक रंग में रंगने और अपने शुद्ध सनातन धर्म्म से च्युत करने के लिये (मिशनरियों का प्रचार रूपी) जाल फैलाया था और वह समय निकट आगया था कि सबको ईसाई बनायें, बस स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपना उपदेश रूपी पत्थर फेंक सब को उस जाल से बचादिया, यह उस का बहुत बड़ा उपकार भारत वासियों पर हुआ है, और यद्यपि कोई २ मूर्ख पत्थर तले दबकर मरा अथवा घायल हुआ वह केवल वही पुरुष है जो दयानन्द के गूढ आशय को न समझ अपने सत्य सनातनधर्म्म का त्यागी वा द्वेषी होगया, परन्तु जो लोग स्वामीजी के मुख से अपने धर्म्म की निन्दा रूपी पत्थर का शब्द सुन सचेत होगये उनको स्वामीजी का शुद्ध अन्तःकरण से धन्यवाद करना उचित है, और इसी आशय को मुख्य रख हम अच्छी तरह कह सकते हैं कि यद्यपि हम स्वामी दयानन्द सरस्वती को कोई ऋषि मुनि देवता वा अवतार नहीं मानते, जैसा कि उनके अनुयायी कहते हैं, तथापि उनके शान्ति होने का खेद चाहे हम निन्दक ही क्यों न समझे जाय, हमें उन अनुयायियों से अधिक है, क्यों कि स्वामीजी के आशय को जैसा हम जानते हैं उनके अनुयायियों ने नहीं जाना, अब हम सर्व आर्य्यसमाजी भाईयों से सविनय प्रार्थना करते हैं कि विचार जो मनुष्य अपने में दोष और दूसरे में गुण देखता है वही सर्व प्रिय होता है

श्रीहरि

सूचीपत्र।

सनातनधर्म के गूढ़ अभिप्रायों को जानने और आर्यसमाजियों को भगा देने के लिये हमने अपने पुस्तकालय का उद्घाटन किया है। इस पुस्तकालय में जो २ पुस्तकें तैयारहैं उनके नाम दाम नीचे लिखे जाते हैं किन्तु डाकव्यय पृथक्होगा।

५) धर्म प्रकाश ६ समुल्लास
४) सनातन धर्म विजय महाकाव्य
३॥) पुराणवर्म पूर्वार्द्ध
२) व्याख्यान दिवाकर ,,
२) विधवा विवाह निर्णय
२) दयानन्द छल कपट दर्पण
२) असली सत्यार्थप्रकाश सन् १८७५
हिन्दु मासिक पत्र वार्षिक मूल्य १॥)
१) अवतार
१) मूर्तिपूजा
॥) धर्म
।=) श्राद्ध निर्णय
।=) वर्णव्यवस्था
।) दयानन्द मत विदारण
=) सत्यार्थप्रकाश की छीछालेदर
-)। शुद्धि निर्णय
-) हिन्दु शब्द मीमांसा
-) नमस्ते मीमांसा
=) देवसभा में वेदों की अपील
-)॥ बनावटी वेद
-)॥ वेद पर आरा
-)॥ तीर्थ
-) रमामहर्षि सम्वाद
-) लीडर गुरु गर्जन
-)। संस्कार विधि समीक्षा
-) हनुमान निर्णय
-) लीडरों की नादिर शाही
-) अनोखा विजय
)॥ स्वामी शिष्य संग्राम
)॥ स्वामी पर कलङ्क
)॥ स्वामी गुरु कि चेला गुरु
)॥ लोहालक्कड़ देखता
)॥ मास विचार
)॥ वेदों का कतल
)॥ दयानन्द की आप्तता
)॥ द्विजत्व में दियासलाई
)॥ दयानन्द लीला
)॥ जालीवेद मत्र
)॥ निराकार की धुडदौड
)॥ दयानन्द की सभ्यता
)॥ वेद पर वज्रपात
)॥ वैदिक धर्म पर कुल्हाड़ा
)॥ दयानन्द की विद्वत्ता
)॥ दयानन्द का कच्चा चिट्ठा
)॥ दयानन्द हृदय
)॥ दयानन्द मत दर्पण
)॥ दयानन्द की बुद्धि
)॥ धर्म संताप
)॥ दयानन्द मत सूची
)॥ नित्य हवन विधि
)॥ कार्तीय तर्पण विधि

पुस्तकें मिलने का पता—

कामताप्रसाद दीक्षित मैनेजर 'हिन्दु'
मु० पो० अमरौधा जि० कानपुर